

इस्लाम के परिप्रेक्ष्य में
हिन्दी सूफी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की
पी० एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

मुहम्मद महबूब उर रहमान खान आफ़रीदी

एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (संस्कृत)

रीडर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

जी० एफ़० पी० जौ० कालेज, शाहजहाँपुर

निर्देशक

डा० नज़ीर मुहम्मद

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी० एच० डी०, डी० लिट०

प्रो. फ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़



T3238



CERTIFICATE FROM THE SUPERVISOR

I certify that the thesis submitted by
Mohammad Mahboob-ur-Rahman Khan Afridi entitled
" Islam Ke Pariprekshya Mein Hindi Sufi Sahitya
Ka Alochanatmak Adhyayan " is the original work
of the candidate and is suitable for submission
to the examiners for the award of Ph.D. degree.

N. Mohd

Nazir Mohd
Professor & Chairman

SUPERVISOR

इस्लाम के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी सूफ़ी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन

विषय-सूची

	<u>पृष्ठ संख्या</u>
प्रस्तावना	1 - 7
<u>प्रथम अध्याय-</u>	
इस्लाम धर्म का उद्भव तथा विकास	8 - 34
<u>द्वितीय अध्याय-</u>	
इस्लामी तसव्वुफ़	35 - 110
<u>तृतीय अध्याय-</u>	
भारतवर्ष में तसव्वुफ़ का प्रवेश, प्रचार तथा प्रसार	111 - 142
<u>चतुर्थ अध्याय-</u>	
हिन्दी सूफ़ी साहित्य	143 - 330
<u>पंचम अध्याय-</u>	
हिन्दी सूफ़ी काव्य में कहा नियत अथवा आध्यात्मिकता	331 - 376
<u>षष्ठ अध्याय-</u>	
हिन्दी सूफ़ी काव्य रूप	377 - 448
<u>सप्तम अध्याय-</u>	
उपसंहार	449 - 467
सहायक ग्रन्थों की सूची-	468 - 486

प्रस्तावना

प्रस्तावना

सृष्टि में प्रथम मानव की अवतारणा के साथ ही धर्म का भी उदय हुआ। धर्म "विश्वास" अथवा "अकीदे" का नाम है। जब मानव ऐसा विश्वास करने लगता है कि मुझे और सृष्टि को निमित्त करनेवाली कोई ऐसी अल्लोहित शक्ति है, जो इन्द्रियों से परे एवं अनिवर्तनीय है, तब वह धर्म को धारण कर लेता है। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ ही विभिन्न जातियों एवं क्रान्तियों के धार्मिक विश्वासों, सिद्धान्तों एवं मान्यताओं की सर्जना होती है। संसार के लगभग सभी धर्म एक "अल्लोहित सत्ता" को स्वीकार करते हैं और उसे वे अपने-अपने संस्कारों के अनुसार "परमात्मा", "ईश्वर", "गोड", "अल्लाह" आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। प्रत्येक धर्म के मूलभूत सिद्धान्त एक ज्ञान हैं। धर्म परस्पर अविरোধी होता है, जो धर्म दूसरे धर्म में बाधित होता है वह कुधर्म होता है।

वास्तव में, धर्म के द्वारा ही इस संसार में एक सुव्यवस्थित, अनुशासित और स्वस्थ समाज की स्थापना संभव है, क्योंकि प्रत्येक धर्म सत्य पर आधारित होता है और यह सर्वोद्दिष्ट है कि शिव और सुन्दर, सत्य के अनुगामी हैं।

प्रत्येक धर्म को प्रकाशित करनेवाला एक धार्मिक ग्रन्थ होता है जिसके आधार पर ही उस धर्म का प्रचार संभव हो सकता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विभिन्न धर्मावलम्बी साधक स्वधर्म के प्रचार के लिए अपने धार्मिक ग्रन्थ को आधार बनाकर धार्मिक साहित्य की रचना करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक धर्म का अपना-अपना एक धार्मिक साहित्य होता है जिसके द्वारा प्रचार कार्य किया जाता है।

“मजल्ल-ए-इस्लाम” का धार्मिक ग्रन्थ “क़ुरआन-शरीफ़” है। “क़ुरआन” को “क़ुरआन-ए-इलाही” (ईश्वरीय वचन) भी कहा जाता है क्योंकि यह पैग़म्बर मुहम्मद साहब पर ज़ुदा की ओर से नाज़िल (उतरा) हुआ था। प्रत्येक मुसलमान के लिए “क़ुरआन शरीफ़” पर विश्वास रक्ता अनिवार्य है। इस्लाम के प्रचारकों ने “क़ुरआन शरीफ़” तथा “हदीसों” (मुहम्मदवचनों) के आधार पर ही विभिन्न भाषाओं में धार्मिक-साहित्यों की रचना की है। इस्लाम में “क़हानी” ज़बाना आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ “रसूल-ए-जुदा” और उनके “सहाबियों” के समय से ही हो गया था, वे लोग पूर्णरूपेण “जुदा” की ओर आकर्षित थे, उनका जीना और मरना केवल ज़ुदा के लिए था। स्वयं मुहम्मद साहब प्रत्येक रात “याद-ए-इलाही” में लीन रहते थे। वे “ग़ार-ए-हिरा” के एकान्त में ज़ुदा की इबादत करते थे। वे दुनिया से अधिक “दीन” की परवाह करते थे।

आगे चलकर उपर्युक्त जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति सूफ़ी कहलाने लगे तथा तसव्वुफ़ का प्रचार होने लगा। क़लान्तर में मुहम्मद साहब द्वारा प्रस्तुत आदर्श और तसव्वुफ़ में काफी अन्तर हो गया और सूफ़ी “याद-ए-इलाही” के में लीन हो गये। दूसरी शताब्दी ख़िरी के अन्त में तसव्वुफ़ का प्रचार इप सामने आता है। यह तसव्वुफ़ अरब, ईरान और ईरान से भारत आया। भारतवर्ष में सूफ़ियों ने इस्लाम के प्रचार में अत्यधिक योगदान दिया।

हिन्दी भाषा के मुसलमान सूफ़ी कवियों ने भारतीय दर्शन एवं संस्कृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए तसव्वुफ़ के आधार पर अनेक प्रेमास्थानक काव्यों की रचना की, जो साहित्यिक दृष्टि से अत्यधिक उच्चकोटि के हैं, किन्तु इन रचनाओं को इस्लामी सिद्धान्तों पर आधारित मानना एक अति घातक भ्रान्ति है।

मैंने प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में इसी भ्रान्ति को दूर करने का प्रयास किया है। हिन्दी के सूफ़ी काव्य में निस्संदेह 'तसव्वुफ़' के तत्त्व उपलब्ध होते हैं किन्तु यह 'तसव्वुफ़' 'शुद्ध' इस्लामी तसव्वुफ़ नहीं है क्योंकि हिन्दी सूफ़ी कवियों द्वारा प्रस्तुत 'तसव्वुफ़' में रहस्यवाद और अद्वैतवाद का मिश्रण हो गया है जिसका इस्लाम और क़ुरआन से दूर का भी वास्ता नहीं है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में इस्लाम धर्म के उद्भव तथा विकास पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। इस प्रकरण के अन्तर्गत फोम्बर मुहम्मद साहब से पूर्व के अरब देश की दशा, फोम्बर मुहम्मद साहब की जीवनी, उन पर सुदा की ओर से क़ुरआन शरीफ़ का नाज़िल होना, उनकी मदीने को ख़िरत, मक्का पर विजय आदि का ऐतिहासिक उल्लेख है। तदुपरान्त यह बताया गया है कि इस्लाम क्या है? साथ ही इस्लाम की शिदाओं को भी वर्णित किया गया है।

द्वितीय अध्याय के 'क' खण्ड में तसव्वुफ़ के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए इस्लामी तसव्वुफ़, अरब में तसव्वुफ़, तसव्वुफ़ की परिभाषा, सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति, तसव्वुफ़ की रचना, तसव्वुफ़ सम्बन्धी विभिन्न आन्दोलन एवं मत आदि पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए तसव्वुफ़ का मूल 'शुद्ध इस्लामी शिदा' को माना गया है। इस अध्याय के 'ख' खण्ड में अरब तथा फारस में तसव्वुफ़ के प्रचार एवं प्रसार का इतिहास बताया गया है तथा सूफ़ियों के आविर्भाव के साथ ही प्रमुख सूफ़ी महात्माओं का परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। साथ ही तसव्वुफ़ के चार युगों, इस्लाम के धर्मशास्त्रियों और सूफ़ियों के संघर्ष का भी उल्लेख किया गया है। 'ग' खण्ड में सूफ़ी सिद्धान्तों- वहदत-उल-क़वद, ख़वस वहदत-उल-शहूद सृष्टि प्रक्रिया आदि तथा सूफ़ी लक्ष्यों- परमात्मा से एकीकरण, हाल, फिरासत, बेका आदि के साथ-साथ सूफ़ी मार्ग की मंज़िलों

शरीयत, तरीक़त, मुबारिक़त और हकीक़त की परिभाषा एवं व्याख्या करते हुए सूफ़ी सिलसिलों का उल्लेख किया गया है।

तृतीय अध्याय सूफ़ियों के भारत में आगम से सम्बन्धित है। इस अध्याय में मुसलमानों द्वारा भारतवर्ष में राज्यस्थापना, इस्लाम धर्म का भारत में सूफ़ियों द्वारा प्रचार आदि के साथ ही साथ प्रसिद्ध सूफ़ी साधकों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। तदनुसार भारत में प्रचलित सूफ़ी सिलसिलों का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय इस शोध-प्रबन्ध के कर्ण-विषय 'हिन्दी सूफ़ी साहित्य' पर आधारित है। इसके अन्तर्गत सूफ़ी निबन्ध, सूफ़ी जीवनवृत्त, सूफ़ी काव्य, भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा, सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य, हिन्दी साहित्य में प्रेमाख्यान, हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों का महत्त्व तथा साहित्य में स्थान आदि का विवरण दिया गया है। फिर लगभग सम्स्त हिन्दी सूफ़ी कवियों के परिचय के साथ उनकी रचनाओं का विशद उल्लेख हुआ है, विशेष रूप से मलिक मुहम्मद जायसी, मोलाना दाऊद, कुतुबन, मंफ़न आदि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। तत्पश्चात् दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी कवियों निज़ामी, बख़्शी, ग़वासी आदि की रचनाओं और विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, तदनन्तर फ़ुटुल सूफ़ी कवियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में हिन्दी सूफ़ी साहित्य के आध्यात्मिक पक्ष पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत सूफ़ी काव्य में दर्शन और रहस्यवाद, सूफ़ी कवियों की रहस्यभावना, अंतर्वादी रहस्यवाद, प्रकृतिमूलक रहस्यवाद, साधनात्मक रहस्यवाद, प्रतीकात्मक रहस्यवाद, सूफ़ी साधना के अन्तर्गत रहस्यभावना, परमसत्ता की प्रेममयी परिकल्पना आदि पर सारगर्भित विवरण प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय में काव्यानुशीलन के अन्तर्गत हिन्दी सूफ़ी काव्य का भावपदा एवं कला पदा के आधार पर विवेचन हुआ है। इसके साथ ही मसनवी पदति, प्रयुक्त हन्द, रस, अलंकार, प्रकृति-चित्रण, भाषा, कथानक इदियां आदि पर आलोचनात्मक विचार प्रकट किये गए हैं।

सप्तम अध्याय उपसंहार रूप में है जिसमें मैंने शोध-प्रबन्ध में वर्णित विवरण के आधार पर अपना निर्णय दिया है कि हिन्दी के सूफ़ी साहित्य में तसव्वुफ़ और भारतीय दर्शन का मिलाबूला रूप तो अवश्य है किन्तु इस साहित्य को "इस्लामी-सिद्धान्तों" पर आधारित मानना एक भारी भुल के साथ-साथ इस्लाम धर्म से अभिज्ञता का अभाव है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध परम आदरणीय गुरुवर डा० नज़ीर मुहम्मद साहब के निदेशन में प्रणीत हुआ है। नज़ीर साहब मेरे निदेशक ही नहीं बल्कि बड़े भाई हैं, उन्होंने इस शोध-प्रबन्ध की तैयारी में मुझे जो सहायता प्रदान की है और जो मार्ग-दर्शन किया है यदि मुझे वह प्राप्त न होता तो यह शोध-प्रबन्ध अपूर्ण ही रह जाता। डा० नज़ीर मुहम्मद साहब का यह उपकार मैं जीवन भर विस्मृत नहीं कर सकता। प्रो० नज़ीर मुहम्मद साहब सूफ़ी शब्दावली में धैरे सच्चे "पीर-जो-मुशिद" हैं। उनकी कृपा-दृष्टि और मार्गदर्शन से ही मैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सका। परम श्रेय "गुरु" प्रो० नज़ीर साहब को कोटि-कोटि प्रणाम।

प्रो० विश्वनाथ शुक्ल के प्रति आभार प्रकट करना भी मैं अपना परम धर्म मानता हूँ। मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि जब मैं २३वर्ष पूर्व हिन्दी एम०ए० उपराट्र की परीक्षा देने जा रहा था तब उन्होंने स्वयं मेरे घर पधार कर

मुझे 'विश' किया था और श्रीमद्भागवतगीता भेंट स्वरूप दी थी जो आज भी मेरे पास सुरक्षित है। प्रो० शुक्ल जी की प्रेरणा और उत्साहवर्धन द्वारा मुझे इस शोध-प्रबन्ध को लिखने में बहुत सफलता प्राप्त हुई है।

अपने भाइयों आदरणीय डा० राम०राम०बारा० के आफूरीदी साहब, श्री नफीसुर रहमान खान साहब और श्री जिया आफूरीदी साहब का भी बहुत शुक्रजार हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिए बराबर प्रेरणा प्रदान की। मैं विशेष रूप से डा० आफूरीदी साहब का कृतज्ञ हूँ क्योंकि उनके 'आखिरी हुक्म' के परिणामस्वरूप ही यह 'शोध-प्रबन्ध' प्रणीत हो सका और अगर वे मुझे पुस्तकालय से अपने नाम पर वांछित ग्रन्थ न ढ़िलवाते तो यह कार्य नीरस रह जाता।

मैं अपनी जीवन-संगिनी श्रीमती हूर आफूरीदी के प्रति भी आभार प्रदर्शित करता हूँ कि उन्होंने इस शोध-प्रबन्ध को अंतिम रूप देने में मुझे प्रेरणा प्रदान की, मेरा उत्साहवर्धन किया तथा समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव दिये। मैं अपने घनिष्ठतम मित्रों डा० महेश चन्द्र बनर्जी तथा श्री निरंजनसिंह चौधरी का भी अत्यधिक आभारी हूँ कि उन्होंने इस कार्य के करने में मेरी हर तरह से सहायता की और वे बराबर मेरा हौसला बढ़ाते रहे।

यदि मैं इस शोध-प्रबन्ध के टंकक श्री चन्द्रमोहन जी के प्रति आभार व्यक्त न करूँ तो मेरी ज़्यादती होगी। श्री चन्द्रमोहन ने अत्यधिक अल्प में समय में 'शोध-प्रबन्ध' टंकित करके मुझे दे दिया जिसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं।

अन्त में, मैं अपनी भाभी जी, पप्पी, गुड़िया, पिंकी आदि भतीजियों और भतीजे मसूद आफरीदी को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरी सहायता के साथ-साथ रातों को चाय बनाकर फ्लाइंग और मुझे शोध-प्रबन्ध लिखने में सहायता रखा ।

यह शोध-प्रबन्ध मैं अपने स्वर्णिम 'माता-पिता' तथा अपने बच्चों शायिदा, आयशा और काशिफ के नाम समर्पित करता हूँ ।

Masood Afreedi
 (मुहम्मद मसूद अफरीदी)

प्रथम अध्याय

इस्लाम धर्म का उद्भव तथा विकास

इस्लाम धर्म का उद्भव तथा विकास

पृष्ठभूमि-

अरब का विस्तृत क्षेत्र एशिया के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। उसके उत्तर में "शाम का रेगिस्तान", पूर्व में "फारस की खाड़ी", दक्षिण में "हिन्द महासागर" तथा पश्चिम में "लाल सागर" है। अरब प्रदेश कई भागों में विभाजित है। इन भागों अथवा प्रान्तों की अलग-अलग अर्थव्यवस्था तथा अन्य विशेषताएँ हैं। अरब का सबसे अधिक प्रसिद्ध क्षेत्र (प्रान्त/देश) "हिजाज़" है, इसमें मक्का, मदीना (प्राचीन नाम "सीरत") तथा "अदा" नगर स्थित है।

"हिजाज़" एक ऊँचड़ा साँझ देश (प्रान्त) है। विशेष रूप से मक्का नगर के आसपास नास्मानी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। विभिन्न युगों में अरब में विभिन्न जातियाँ आबाद रही हैं। अरब के सबसे प्राचीन निवासियों "अल्लानी" नस्ल के थे। वे अत्यधिक सम्य एवं संस्कृत थे, उनकी सम्यता एवं संस्कृति के अवशेष आज भी अरब में विद्यमान हैं। इस जाति का सर्वनाश एक "सामी" कुबीले ने किया जो "यमन" में आबाद हो गया।

अरब में सबसे अन्त में बसने वाले "अल-अ-अस्माहले" कहलाते हैं। अरत अस्माहले अरत अस्माहीम के सुपुत्र थे। अरत अस्माहीम ने "काका"

(कुदा का घर) का निर्माण किया । प्राचीन काल से ही अरब इस "इबादतगाह" (पूजनीय स्थान) का आदर करते चले आ रहे हैं तथा आज "हाना-ए-काबा" मुस्लिम विश्व का अत्यधिक पवित्र तीर्थस्थान है। ख़ज़रत इस्माइल मक्का के समीप रहने लगे तथा आपकी संतान हज़ाज में फैल गई ।

अरब के रहने वाले सदैव दो मार्गों में विभाजित रहे— (क) शहरों अथवा नगरों में निवास करने वाले तथा (ख) रेहड़ा अथवा रेगिस्तान में रहने वाले बंदू — बंदू (हाना-अदोश अथवा बंजारे) अपने परिवारों तथा जानवरों सहित चारे तथा पानी की लोज में हथर-उधर विचरण करते रहते हैं ।

प्राचीन अरब में यहूदी तथा ईसाई अपने-अपने धर्मों का प्रचार करते थे किन्तु अधिकतर अरब कुतों (मूर्तियों) तथा "सितारों" को पूजा करते थे ।

"मक्का" अरबों का एक पवित्र नगर था, वह उन के जातीय जीवन का केन्द्र था तथा "काबा" केन्द्र बिन्दु ख़ज़रत इब्राहीम तथा ख़ज़रत इस्माइल एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे । इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने "हाना-ए-काबा" (कुदा का घर) का निर्माण प्रतीकात्मक रूप में किया था कि जो व्यक्ति केवल "एक कुदा" की मानता हो कि-नहीं व्यवहार करे वह यहाँ जाकर अपनी भक्ति तथा वास्तिकता का परिकल्प दे । किन्तु स्वयं ख़ज़रत इस्माइल की संतान ने एकेश्वरवाद को मुलाकर जौक कुतों का निर्माण किया तथा सम्पूर्ण अरब में "मूर्ति पूजा" होने लगी । यहाँ तक कि "हाना-ए-कुदा" कुतहाना बन गया तथा "काबा"

की पवित्र इबादतगार में तीन सौ साठ बुतों को स्थापित किया गया।
वेबोवैय ये बुत जव्वा मुर्तियाँ उन समस्त देवी-देवताओं का प्रतिनिधित्व
 करते थे जिनकी ज़रूर पूजा करते थे। मूर्ति पूजा के साथ ही साथ ज़रूर
 मानव-बलि भी दिया करते थे। इस प्रकार ज़रूर एक प्रकार से जन्म-विरवासी
 जीवन व्यतीत कर रहे थे, उनकी कोई आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक
 व्यवस्था नहीं थी तथा वे जिहासत या जाहिलियत के दौर से गुज़र रहे
 थे और उन्हें एक सच्चे पथ-प्रदर्शक की ज़रूरत थी।

फेगम्बर मुहम्मद साहब से पूर्व का ज़रूर -

ख़िज़ाज़ के ज़रूरों का सबसे बड़ा कुमोला "ज़ुरेश" था।
 ज़ुरेश फ़हर को नरत से हैं; प्राचीन ज़रबी भाषा में ज़ुरेश साँदागर
 जव्वा व्यापारी को कहते थे। फ़हर इराक़ की तीसरी शताब्दी में हुआ
 था। वह ख़रत इस्माइल की संतान में से था, जतः ज़ुरेश को सर्व्व अपने
 पूर्व्वजों पर गर्व रखा है इसी कारण ज़ुरेशों की गणना संग्रान्त ज़रबी में
 की जाती रही है। ये ज़ुरेश मक्का में भी बड़ी संख्या में बसे हुए थे।

युग परिवर्तन के साथ-साथ मक्का में भी न जाने कितने
 परिवर्तन आये, क्रान्तियाँ हुईं, न जाने कितनी नरतें आईं तथा समाप्त
 हो गईं, न जाने कितनी जातियाँ ने राज्य किये तथा निष्कासित हो गईं।
 यहाँ तक कि एक व्यक्ति ऐसा आया जिसने मक्का पर अपना आधिपत्य
 स्थापित करने के पश्चात् अपने प्रभुत्व को सम्पूर्ण हिजाज़ में स्थापित कर
 दिया। उस व्यक्ति का नाम कुसी था तथा उसके पूर्व्वज फ़हर तथा ख़-
 रत इस्माइल थे।

कुसी ने मक्का में स्वप्रकाश "मनार्" का निर्माण

किया, क्योंकि इससे पूर्व किसी में इतना हास नही था कि "काबा" की धरती पर फका गृह निर्मित करे अथवा ऐसा भवन निर्मित करे जो "हुदा" के घर से ऊंचा हो। पहले लोग भाँपड़ियाँ तथा तम्बुओं व खेमों में रहा करते थे। कुत्सी ने अपने राज्यकाल में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए जिनके परिणामस्वरूप अरब में एक नया युग प्रारम्भ हुआ तथा अरबों में भी अरबता ने सम्यता का रूप धारण कर लिया। कुत्सी ने "काबा" का फिर से निर्माण करवाया। कुत्सी ने "काबा" की परिभ्रमा के लिए जाने वाले "हाजियों" के लिए अच्छी मौजन व्यवस्था तथा जल का उचित प्रबन्ध कराया।

कुत्सी की मृत्यु सन् ४८० ईस्वी में हुई।

कुत्सी के पश्चात् उसका पुत्र "अब्दुलदार" बादशाह बना तथा अब्दुलदार की मृत्यु के उपरान्त उसके पौत्रों तथा उसके भाई अब्द-मुनाफ़ के पुत्रों में मक्का के राज्य के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस संघर्ष का अन्त इस निणाय पर हुआ कि जल-प्रबन्ध एवं ख-प्राप्ति का अधिकार अब्द-मुनाफ़ का पुत्र अब्दुल शम्स को बनाया गया तथा "काबा" की व्यवस्था एवं सेना का अधिकार अब्दुलदार के पौत्रों को दे दिया गया।

अब्दुल शम्स ने अपने अधिकार अपने भाई हाशिम को दे दिये। हाशिम बहुत मायुक्त, सज्जन, वरिष्ठ-सेवी तथा दयालु व्यक्ति थे। वे मक्का के बहुत बड़े व्यापारी माने जाते थे। उन्होंने अरबों के व्यापार को बढ़ाने के लिए यात्राएँ कीं, अन्य देशों से मंत्री को तथा व्यापारियों को सुदाना के लिए प्रबन्ध किये। उनका मृत्यु सन् ५१० ई० में हुई। हाशिम के पश्चात् उनके भाई मुहल्लि अहराधिकारी हुए जिनकी मृत्यु ५५२ ई० में हो गई।

तदुपरान्त हाशिम के पुत्र अब्दुल मुजलिब उतराधिकारी बने। उन के पुत्रों के नाम ये- अबु तालिब, अब्बास, हमजा तथा अब्दुल्लाह।

अब्दुल्लाह, इस्लाम धर्म के प्रवर्तक ख़ास मुहम्मद साहब के पिता थे। अब्दुल्लाह केवल २५ वर्ष की आयु में ही स्वर्गवासी हो गये।

इसका की पांचवी व छठी शताब्दी में सम्पूर्ण मानव जाति
 जब: पतित थी । विशेषतः इस से जराब जाति ने अपने पूर्वजों द्वारा निर्देशित
 मार्ग एवं धर्म एकदम विस्मृत कर दिया था। यह युग वास्तव में धर्म तथा
 मानवता के लिए अन्धकार का पूर्ण युग था। जराब में "यह युग" दार-ए-
 कब्र-ए-हिन्दू जाहिलियत के नाम से सम्बोधित किया जाता है। उस युग में
 भी जराबों की अपनी अनेक विशेषताएं मुहर थीं कि नरु पैगम्बरों द्वारा दी
 गई शिक्षाओं से उनका बेर हो गया था । जराबों ने अपने पूर्वज इब्राहिम
 इब्राहीम तथा इब्राहिम इस्माइल के एकेश्वरवाद को भुलाकर कुतपरस्ती प्रारम्भ
 कर दी थी जराब के प्रत्येक कबीले का अपना एक विशेष कुत होता था,
 बल्कि प्रत्येक घर का अपना कुत था । उस युग के जराब अन्ध विश्वासी थे,
 जादू-टोने में विश्वास रखते थे, फारिशतों, जिनों तथा सितारों की
 पूजा करते थे ।

उस समय के ज़रब निवासी पूर्णतः जाचरणाहीन थे । शराब पीते थे, जुआ खेलते थे- अपने घर बैठे, बैटियों तक को दाव पर लगा देते थे, वैश्यागामा थे, सूद का व्यापार करते थे, सैकड़ों स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार व अत्याचार करते थे । स्त्रियों का समाज में कोई स्थिति स्थान नहीं था । उनके कोई अधिकार नहीं थे । एक पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह कर लेता था । वे इतने बर्बर थे कि अपनी पुत्रियों को जो वित्त हो पृथ्वी में गाँव दिया करते थे । कुलीनों में वापस में लुत्ता

रहती थी, जाये दिन युद्ध होते रहते थे। युद्ध करना उनके लिए एक साधारण कार्य था। संदीप में छठी शताब्दी इसी के अरबों का नैतिक सामाजिक तथा धार्मिक रूप में एकदम अवःपतन हो चुका था। उस युग में अरब जाति सनातन की ओर पूर्णरूपेण उन्मुख थी। तभी मक्का में पैगम्बर मुहम्मद साहब का जन्म हुआ।

पैगम्बर मुहम्मद साहब

(विश्व के सर्वप्रथम सूफी व अन्तिम पैगम्बर)

अरब मुहम्मद साहब का जन्म अपने पिता अरब अब्दुल्लाह की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् सन् ५७० ई० की २९ अगस्त को हुआ था। बापकी माता का नाम अरब आमना तथा दादा का नाम अरब अब्दुल्ला मुशलिम था। अरब मुहम्मद साहब अभी केवल छः वर्ष के हो थे कि उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। अब बापका पालन-पोषण बापके दादा ने किया तथा सन् ५७९ ई० में उनकी मृत्यु के उपरान्त बापके चाचा अब्दुल्लाह अम्मावक बने तथा उनकी देख-रेख करने लगे।

अब तालिम अपने पूर्वजों के समान घनाङ्ग नहीं थे। अतः उन्हें अपने जीवन यापन के लिए भेड़ बकरियाँ आदि चराने पड़ती थीं। अतः मुहम्मद साहब ने भी यही किया तथा बचपन से ही वे परिव्रज के अभ्यस्त हो गए।

अरब मुहम्मद साहब बचपन से ही विचारक एवं चिन्तक थे। वे शान्त एवं सरल स्वभाव के थे। उन्होंने दो बार शम देश की यात्रा

अपने चाचा के साथ की । इन यात्राओं में उन्होंने जो कुछ देखा, सुना-
 उस पर ध्यानपूर्वक सौच-विचार किया । धर्म के क्षेत्र में उस समय जो
 कुछ घटित हो रहा था-- बुत परस्ती, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, अग्नि-
 पूजा, सितारों की पूजा तथा एकेश्वरवाद-- इन सब पर उस घने अवकाश
 पूर्ण वातावरण में-- मुहम्मद साहब ने बहुत गहनतापूर्वक चिन्तन किया ।
 वे घंटों इसी सौच-विचार में भग्न रहते कि - किसका मार्ग उचित है तथा
 किसका अनुचित, कौन सत्य पर है और कौन मिथ्यावादी, ईश्वर (हुदा)
 क्या है तथा वह है कहाँ ?

इस प्रकार वे सत्य की त्राज में लड़कपन से लग गये । १२ वर्षों
 की अवस्था में ही गंभीरतापूर्वक चिन्तन एवं मनन में व्यतीत किया, वे
 बकरियाँ चराते हुए वस्ती से दूर एकान्त में निवसत तथा हुदा (ईश्वर) की
 विस्तृत कायनात (कृष्टि) एक सुनी पुस्तक के रूप में आपके सम्मुख होती,
 आप उसकी रीढ़ करते तथा उसके संकेतों की समझाने की चेष्टा करते । अपने
 बचपन से लेकर युवावस्था तक हज़रत मुहम्मद साहब ने कभी भी तैल-रूद तथा
 नृत्य-संगीत आदि में भाग नहीं लिया ।

हज़रत मुहम्मद साहब अपनी हमोनदारी, पवित्रता, स्वच्छता,
 नम्र स्वभाव, सम्याकरण, गम्भीरता तथा चिन्तक के रूप में पूरी जाति तथा
 मक्का में प्रसिद्ध थे । मक्कावासियों ने उनकी 'अमीन' की उपाधि प्रदान
 की तथा अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ व धन सम्पत्ति उनके पास अमानत के रूप में
 रक्षना प्रारम्भ की ।

२२ वर्ष की अवस्था में हज़रत मुहम्मद साहब ने मक्का की
 एक संप्रान्त परिवार की महिला हदीजा का व्यापार कार्य संभाल लिया

तथा दूसरे स्थानों पर जाकर बहुत हौशियारी तथा हँमानदारी से व्यापार किया तथा खदीजा को इस व्यापार द्वारा बहुत लाभ हुआ । खदीजा ख़रत मुहम्मद साहब से बहुत प्रभावित हुई तथा २५ वर्ष की अवस्था में ख़रत मुहम्मद साहब ने खदीजा से विवाह कर लिया ।

घोरे-भारे समय बीतता गया । ख़रत मुहम्मद साहब दिन-प्रतिदिन गंभीर चिन्तन व सोच-विचार में निमग्न होते जाते गए । वे स्कान्त को बहुत पसन्द करते थे। शनैः शनैः उन पर संसार के भेद छुलते गए । स्कान्त-वासी होते हुए भी वे लोगों से शिष्टतापूर्वक मिलते । उनको बातों की ध्यानपूर्वक सुनते स्वयं बहुत धुप रहते, अनावश्यक वातालाप न करते, किसी बात में वाद-विवाद न करते, न उलझते, जो बात भी कहते अत्यन्त संक्षिप्त तथा महत्वपूर्ण कहते, उस बात में विद्वत्ता के साथ ही साथ हास्य तथा व्यंग्य का छूट भी सम्मिलित रहता । बात करनेवाला आप पर मोहित हो जाता । इन ही विशेषताओं के कारण मक्कावासी आपकी हर बात स्वर्णिम की स्वीकार करने की सहर्ष तत्पर रहते, आपके परामर्श का आदर करते, आपके सुझावों पर अमल करते ।

मक्का नगर के चारों ओर पहाड़ियों की शृंखला है, मध्य में "काबा" है । जब ज़ोर की वर्षा होती है तो नगर में पानी भर जाता है। "काबा" की दीवारें नीचे की तथा उन पर छतें भी न थीं । एक बार मसंकर बाढ़ आ गई, बहुत से मकन पराशायी हो गए, "काबा" के भीतर भी पानी पहुँच गया, उसकी दीवारों में छेद हो गए, नीचे गिरने लगे । यह बात मक्का वासियों के लिए एक बड़ी जटिल समस्या बन गई, उन्हें "काबा" की भग्नावशेष की चिन्ता हुई, ज़ोर के साथ ही ^{अबू अर} ~~अबू अर~~ साहब को भी चिन्ता हुई।

“काबा” उनके लिए सब कुछ था, अतः लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर सौच-विचार करने लगे कि क्या किया जाये ?

क्या “काबा” का पुराना मसन गिरा दिया जाये ?
तथा पुनः नया मसन निर्मित किया जाए ? कौन इसे ठाए तथा कौन इसे बनार ?

“काबा” बुदा का सबसे पवित्र घर है, वे डरते थे कि कहीं उसे ठाने से बुदा दृष्ट न हो जाये, कहीं छिद्र पर कोई आपत्ति न आ जाये, लोग हैरान व परेशान थे कि वे क्या करें ?

अन्त में “काबा” को गिरा कर नया मसन बनाने का निणर्ण हुआ। मक्का के सभी कबीलों के लोगों ने इस निर्माण कार्य में बराबर भाग लिया। इस पवित्र कार्य को हज़रत मुहम्मद साहब तथा उनके सभी चाचाजों ने जागे होकर कार्य किया। दैलौ-दैलौ मध्य स्वं सशक्त दीवारें पुनः निर्मित हो गईं।

“काबा” की पुरानी दीवार में पूर्व की ओर एक काला पत्थर था, आज भी है। उसे “छु-ए-अबसद” (काला पत्थर) ही कहते हैं। जब उसे बहुत पवित्र मानते थे, इस्लाम में भी उसका एक विशिष्ट स्थान है--- जब “काबा” की परिक्रमा की जाती है तो हर परिक्रमा का आरंभ इसी पत्थर से होता है, उसे छुते भी हैं।

दीवारें जब कुछ और ऊँची हो गईं तो “छु-ए-अबसद” रखने का समय आया तो प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ कि यह कैय किसकी प्राप्त हो ? कौन उसे उसके स्थान पर रखे ? कौन कबोला भी इस कैय से बाँझ

होने को तत्पर न था । प्रत्येक अपने को इस पवित्र कार्य के करने का अधिकारी समझता था ।

एक क्षान्ता उठ खड़ा हुआ । बाफ में विरोध हो गया, उधरों पर यह विरोध बढ़ता चला गया, लोग एक दूसरे के शत्रु हो गये । युद्ध की नौबत आ गई, जब में यह प्रथा थी कि प्राण देने का प्रण करते तो प्याले में खून भरकर रखते तथा प्रण करने वाले अपना हाथ उसमें डुबाते उन्होंने उस क्षत्र पर यह रस्म भी अपना ली । तत्तवारें सिंह गई तथा ऐसा लगा कि इस फगड़े का निर्णय तत्तवार द्वारा हो लीगा -- तभी खुरेश का सबसे संग्रान्त जावरणीय वृद्ध "बहु उमिया बिन भुलीजा" ने लोगों का समझाया तथा सुझाव दिया कि जब जी सबसे प्रथम व्यक्ति "बाबुस्सफा" में प्रवेश करे -- इस बात का निर्णय उस पर छोड़ दी ।

सबने उसकी बात मान ली तथा लोगों ने कावा के उस द्वार पर दृष्टि जमा दी जिसका नाम "बाबुस्सफा" है । खुदा का समतकार कि उस द्वार से जी व्यक्ति सबसे पहले प्रविष्ट हुए वे जीर कीर्त नहो "ख़रत मुहम्मद साहब" थे । देखते ही सब लोग चौंख पड़े --

अमीन ! अमीन ! मुहम्मद अमीन का निर्णय स्वीकार है ।

किसी को भी "उन" की सत्यप्रियता, हमानदारी तथा न्यायप्रियता में संदेह नहो था ।

ख़रत मुहम्मद साहब ने इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया -

उन्होंने एक कपड़ा माँवाया, कपड़ा जाने पर उसे फाँटा दिया गया फिर हज़रत मुहम्मद साहब ने 'छत्र-ए-असवद' उठाया तथा उस पर रुख किया। फिर उन्होंने कहा-

“हर कुबोले का सरदार कपड़े का एक-एक कोना पकड़ ले तथा सब मिलकर उठाएँ।”

कुबीलों के सरदार जागे बढ़े। उन्होंने कपड़े के कोने पकड़े तथा जिस स्थान पर पत्थर लगाना था वहाँ लाए। फिर हज़रत मुहम्मद साहब ने 'छत्र-ए-असवद' को स्वयं उठाया तथा उसके स्थान पर दिया।

प्रत्येक व्यक्ति संतुष्ट व प्रसन्न हो गया। यह घटना सन् 604 ईस्वी की है। उस समय पैग़म्बर मुहम्मद साहब की अवस्था 34 वर्ष की थी। इस घटना से सिद्ध होता है कि वे कितने सत्यवादी एवं न्यायप्रिय थे तथा अपनी जाति में कितने लोकप्रिय थे, वेदांग चरित्र, पाकीज़ा तख़ियत, हर एक जाफ़ा बादर करता तथा वे जो कुछ कहते उसे स्वीकार करता।

इस प्रकार घोर-घोर समय बीतता गया तथा हज़रत मुहम्मद साहब बस्तो से दूर स्कान्त में चले जाते तथा 'वास्तविक सत्य' के सम्बन्ध में सीच-विचार करते रहते।

मक्का के ह: नील दूर 'छिरा' नामक पर्वत है, उसमें एक गुफ़ा है जो 'गार-ए-छिरा' के नाम से प्रसिद्ध है। हज़रत मुहम्मद साहब उसी ग़ार अथवा गुफ़ा में चले जाते, कहीं-कहीं दिन तथा कहीं-कहीं रातें बर्हा

व्यतीत करते, जिस सत्य के लिए बाप व्याकुल थे, उसकी सौच-विवार द्वारा सौच करते। वहाँ नितान्त स्कान्त होता, उनकी समाधिस्थ अवस्था को मां करनेवाला कौन होता। चिन्तन द्वारा जो सत्य प्रतीत होता उसे आत्मसात् कर लेते तथा जो भिक्षुता प्रतीत होता उसे भस्तिष्क से खूब देते।

वर्ण पर वर्ण व्यतीत होते रहे।

और फिर वह समय आ ही गया- जिसकी भविष्यवाणी बाबुल, भूता, हँसा तथा तीरंत, हंजील, ज़बूर आदि नबियों (फैम्बरों) व धर्मग्रन्थों ने की थी-- कि एक अन्तिम नबी (रसूल या फैम्बर) आवेगा जो न केवल अरब बल्कि सम्पूर्ण विश्व को अंधविश्वास तथा जादुिलिखत से निकालकर तुदा तक पहुँचने का सही मार्ग दिखावेगा तथा अपने धर्म इस्लाम द्वारा सम्पूर्ण विश्व में तुदा का सत्य फैलाने (सदेश) प्रचारित करेगा।

हज़रत मुहम्मद साहबकी अवस्था एक ४० वर्ष की छुटतव बापकी सत्य स्वप्न दिखाई देने लगे। उनसे द्वारा बाप पर वास्तविकता प्रकट हो गई। अंधकार के वे पर्दे (बाधरण) हट गये जिन्हें दूर करने के लिए बाप लातार प्रयत्नशील थे। बापकी ज्ञान बुद्धि कि यह संसार दाणा मंछ है, जाति पक्षपात होकर माया मोह में फँसे गए हैं।

बाप यह जान गये, केवल तुदा ही सम्पूर्ण संसार का स्वामी है, उसका कौन साफ़ोदार नहीं।

एक दिन बाप ग़ार में आराम कर रहे थे। प्रभातकाल था। अकस्मात् एक फ़ारिस्ता दिखाई दिया, वह बापसे बोला- "हज़रा! पड़ो।

हज़रत मुहम्मद साहब बहुत धरार तथा फ़रिश्ते से बोले- “मा बकरा” :
 “मुझे पढ़ना नहीं जाता ।” आपकी ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह गला घोट
 रहा हो, शरीर की नींव रहा हो- फिर झोड़ दिया तथा कहा-
 “हकरा” : “पढ़ो ।”

बोले- “मा बकरा” : मुझे पढ़ना नहीं जाता ।”

इस बार फ़रिश्ते ने बाँव ज़ोर से भोँचा व झोड़ दिया
 तथा कहा - “हकरा” : “पढ़ो ।”

आपने पूछा- “माया बकरा” : “क्या पढ़ें ?”

फ़रिश्ता बोला-

“हकरा बिस्मै- स्वेकत्स्वीकृता ०

कृतकृत्यमाना मिन् कृतकृति ०

हकरा व रब्बीकृत् अकरमी ०

बत्तजो बत्तमा बिक्तने ०

बत्तमत्स्नाना मातम् यातम् ०”

“पढ़ो अपने रब के नाम से जिसने पैदा किया ।

पैदा किया इंसान (मानव) की जून की कुटली से ।

पढ़ो और तुम्हारा महरवान (हपालु) रब (हुदा) हो है।

जिसने कृतम से सिताया, इंसान की वह कुछ सिताया

जो उसे मालूम (ज्ञात) न था।”

फ़ारिशी के कताने पर आपने पड़ा । पढ़ते ही व याद हो गया । मस्तिष्क पर जोकत हो गया । फिर फ़ारिशी चला गया ।

यह जुदा का प्रथम क़त्लम था जो फ़ारिशी जिब्रालि लार थे तथा ख़रत मुहम्मद साहब पर फ़ैम्बर की हेसियत में यह पत्थी "वही" (आकाशवाणी) नाज़िल (प्रकट) हुई थी ।

फ़ारिशी जिब्रालि ने ही मान्य रूप धारण करके आपकी संबोधित करते हुए घोषणा की- "मुहम्मद ! तुम अल्लाह के रसूल (फ़ैम्बर) हो तथा मैं जिब्रालि हूँ" ।

यह घटना सन् ६१० ई० की है ।

तत्पश्चात् वह फ़ारिशी बराबर जुदा का क़त्लम लेकर ख़-मुहम्मद साहब के पास जाता रहा । तब से यावत् जीवन आप लोगों का उद्धार करने में लग गये, उन्हें सही मार्ग प्रदर्शित करने लगे ।

ख़रत मुहम्मद साहब ने सुकर सन् ६१३ से अपने धर्म का प्रचार किया । ख़प्रथम उनकी पत्नी ख़रत ख़दीजा इमरान लार्ह --

"ला हलाहा इस्लाम, मुहम्मदरसुल्लाह" : "जुदा एक है और मुहम्मद उसके रसूल हैं" ।

प्रारम्भ में ख़रत मुहम्मद साहब के कुछ सम्मानियर्थी तथा मित्रों ने इस्लाम स्वीकार किया ।

मक्का के जनसाधारण को जब मुहम्मद ने प्रचार का बोध हुआ तो उन्होंने विरोध रूप से क़ुरैश ने उनका उपहास उड़ाया, जाक़ार कहा,

धर्म विरोधी कहा । किन्तु जब उन्होंने देखा कि मुहम्मद साहब अपने धर्म का प्रचार तीव्रतापूर्वक कर रहे हैं तथा धीरे-धीरे मक्कावासी उनसे घमान्ध्यायी होते जा रहे हैं तो उन्होंने उनकी तथा मुसलमानों को नाना प्रकार से छताना प्रारम्भ कर दिया । कुरैश ने जापके तथा जापके साथियों के साथ अन्ध व्यवहार किया, यातनाएं दीं । यहां तक कि कुछ मुसलमानों को तौ जान तक से हाथ धीने पड़े ।

मुहम्मद साहब के कुछ साथियों ने स्वदेश छोड़कर हजरा देश के मेकदिल हसेन बादशाह से यहां शरण ली, किन्तु हस्ताम न छोड़ा । उ शेष लोगों ने अपने रसूल के साथ रहकर प्रत्येक प्रकार की क्लृप्ता व क्लृप्ता को सहन किया । परन्तु अपनी दोन पर छटे रहे तथा उसका प्रचार करते रहे । धीरे-धीरे मुहम्मद साहब की प्रसिद्धि मक्का से निकलकर दूसरे नगरों में फैली ।

सीरव (मदीना) से जाये हुए कुछ लोगों ने मुहम्मद साहब का धर्म स्वीकार कर लिया । इन लोगों ने सीरव जाकर वहां के लोगों को बताया कि एक ऐसे फ़ारस का आगमन हो चुका है जो उन्हें बुलाव्यों से छुटकारा दिलाकर सम्मान दिलायेगी । सीरवाधियों ने बहुत बड़ी संख्या में हस्ताम स्वीकार किया तथा मक्का से जाये हुए मुसलमानों का आतिथ्य सत्कार किया ।

हिरत -

यह देखकर कुरैश ने हिरत मुहम्मद साहब की छठ हत्या का षडयन्त्र रचा । किन्तु मुहम्मद साहब वहां से बचकर अपने भिन्न हिरत अलुक सिद्धीक के साथ मदीना सुरक्षित पहुंच गये । यह घटना 'हिरत' के नाम से संबंधित की जाती है। यह घटना सन् ६२२ ई० में घटित हुई। यहाँ से

इस्लाम धिरो कैलण्डर प्रारम्भ होता है ।

सौरव (मदीना) है लोगों ने जिनमें मुसलमानों के उत्तिरित
यहूदी व कुत्तरस्त मो सम्मिलित थे, मुहम्मद साहब व उनके साथियों का
हादिके स्वागत किया । सौरव का नाम मदीना हो गया । यहाँ रहकर
सौरव मुहम्मद साहब ने सर्वत्र शान्ति की स्थापना की । लोगों में बंधुत्व
बलव मावना जगह, ऊँच-नीच, पैद-भाव को भिटाया ।

मक्कावासी बुरेहों को मदीना के लोगों की बात अच्छी न
लगी कि उन्होंने मुहम्मद साहब की शरण दी तथा इस्लाम स्वीकार कर
लिया । अतः उन्होंने बुरेहों को -- प्रथम युद्ध "जौ-अदर" में मुसलमान विजयी हुआ।
द्वितीय युद्ध "जौ उहद" में पहले मुसलमान जीते, बाद में मक्कावासी ।
तौसरे युद्ध "जौ-अदक" में फिर मुसलमानों ने विजय पाई । इन जंगों में
सौरव मुहम्मद साहब सर्व सेनापति के रूप में सम्मिलित हुए ।

मक्का पर विजय

इस्लाम धर्म का प्रचार दूसरे देशों में होता रहा। सन् ६३०ई०
में फाज्जर साहब के नेतृत्व में मदीना से चलकर मुसलमान मक्का में दाखिल हुए।
उनका किसी ने भी विरोध नहीं किया ।

मक्कावासी उस समय बहुत अमीर थे। फाज्जर मुहम्मद साहब
के शत्रु अबु सुफियान ने मुहम्मद साहब से नफ्रत की याचना की तो सौरव
मुहम्मद साहब ने निम्नलिखित ऐतिहासिक वक्ता बोलें -

“अबु सुफियान! अपनी ज़मीन में जावों और उन्हें कहो-

मुहम्मद मक्का में एक अच्छे भाई की भांति प्रवेश करेंगा।
बाज न लौट विजेता है न विजित (पराजित)। बाज तो प्रेम व शक्ति का
दिन है, बाज तो शान्ति व इत्मीनान का दिन है।

यह उस व्यक्ति के शब्द थे जिसकी मक्कावासियों ने यात-
नाहं दो, हत्या करने का हो जिन्के कारण उसे हिजरत करना पड़ा।
यह शब्द मुहम्मद के व्यक्तित्व की महत्ता के परिचायक शब्द थे।

हजरत मुहम्मद साहब के इस उदार व प्रेमपूर्ण व्यवहार से
प्रभावित होकर सम्पूर्ण मक्कावासी मुसलमान हो गये।

स्वतंत्र शान्ति की स्थापना हो गई, वास्तविक समाजवाद
जा गया। स्वतंत्रवाद को पुनर्स्थापना हुई। खाना-पान-वास है दुर्तों को
निराश्रित कर दिया गया।

घोरे-घोरे सम्पूर्ण अरब, जज़ीरा, इराक, इरान और
मिस्र में इस्लाम फैल गया।

हिजरत के छह वर्षों के बाद हजरत मुहम्मद साहब का
इराक से मक्का गये, बापके साथ एक लाख मुसलमान थे। यह बापका
जातिरो छ था।

हिजरत के ग्यारहवें वर्ष १२ रबीउल अखिर (सन् ६३२ ई. की
छतुन) को बाप इस संसार को छोड़कर चले गये।

प्रेमपूर्ण मुहम्मद साहब के जीवन के अन्तिम दिन सादिक-सुत
तथा बौद्धिक-शान्ति के दृष्टिगोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। अन्तिम

समय तक बाप नमाज पढ़ते रहे तथा जुदा की इजाजत में व्यस्त रहे। जब वे अन्तिम बार मस्जिद में जाये तो जुदा के महत्त्व पर प्रशंसा करने के परचात् उन्होंने मुसलमानों को इस प्रकार संबोधित किया-

“जगर मैंने तुम में से किसी को तस्लीफ पहुंचाई है तो मैं उसका बदला देने के लिए आया हूं।

किसी को मैंने मारा है तो यह पीठ हाज़िर है वह मुझको मार ले।

किसी का मैंने कुछ लिया है तो वह मुझसे ले ले।”

यह सुनकर एक व्यक्ति उठ खड़ा हुआ तथा बोला- “अब्लाह के रसूल। आपके पास मेरे तीन दरहम हैं। आपने उसको तीन दरहम दे दिये। अब्लाह के रसूल के पास “सरकारी कौण” की सात अशरफियां थीं- मुत्सु से एक दिन पहिले आपकी उनका विचार आया-

पूछा- “वे अशरफियां क्या छु?”

पत्थरी छुरत जायशा ने उत्तर दिया-

“अब्लाह के रसूल वे कभी घर में ही हैं। आपने अशरफियां मंगाई, उनको अपनी हथेली पर रक्ता और कहा -

“जगर मुहम्मद की मौत आ गई और ये उसके पास ही रहती रह गईं तो वह अपने रक्त को क्या जवाब देगा?”

फिर आपने उनको कन्द गुरोवों की कांट दिया।^१

यह था पैगम्बर मुहम्मद साहब का चरित्र ।

प्रत्येक ज़ीम (जाति) को इंसानों (मानवों) के स्वामी बघातू
हुदा (हरेश्वर) है परिचित कराने वाली हस्तियां (व्यक्तित्व) जो रसूल (पै-
गम्बर) कहलाते थे हैं ।

ये रसूल स्वयं हुदा के चुने हुए व्यक्ति होते हैं जो इंसानों तक हुदा
का पैगाम (सन्देश) पहुंचाते हैं ।

प्रत्येक युग के रसूल ने एक ही बात पर विशेष ध्यान दिया-

“ हुदा के बन्दों हुदा की बन्दगी इस्तिथार करी इसलिए उसके
सिवा तुम्हारा और कोई हुदा नहीं है। ”

रसूलों का यह सिलसिला (क्रम) प्रत्येक युग तथा प्रत्येक जाति में
लगातार जारी रहा - उनका यही कर्तव्य था कि वे हुदा का पैगाम उसके
बन्दों तक पहुंचाएं उनका पैगाम खदैव एक ही था, उन सबका प्रस्तुत किया
हुदा दीन (धर्म) भी एक ही था, वे सब एक ही आदेश के समर्थक थे ।

स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब का कथन है कि हुदा ने प्रत्येक देश तथा
जाति में रसूल भेजे जोकि संख्या में एक ही तथा जीवोंस ह्वार हैं ।

कुरबान शरीफ में केवल पच्चीस रसूलों का उल्लेख मिलता है--
जोकि हज़रत बादम है आरम्भ होकर हज़रत मुहम्मद पर समाप्त हो जाता
है।

पैगम्बर मुहम्मद साहब ने हुदा के दीन (इस्लाम) का पूर्णरूपेण
प्रचार एवं प्रसार किया- उनके पूर्व के रसूलों बादम, मूसा, हिसा आदि ने

भी इसी दीन का प्रचार एवं प्रसार किया था। किन्तु उन लोगों के अनुयायियों में अभाव थे अतः वे शीघ्र ही पथभ्रष्ट हो जाते थे।

मुहम्मद साहब ने बुदा व बन्दों के मध्य एक बौद्धिक सम्पर्क स्थापित किया तथा बन्दों को उनके स्वामी से मिलाया। उन्होंने बन्दों को उनके अन्तः कदुर्ज़ों द्वारा बुदा का जलवा (परम ज्योति) दिखाई। आपने हृदयों को पवित्र, आत्माओं (इन्हों) को प्रकाशित, मस्तिष्कों को दुरुस्त, शरीरों को पवित्र व स्वच्छ किया। आपने अपनी शिक्षा द्वारा सर्वत्र शान्ति को स्थापना के साथ-साथ जाहिलियत का समाश कर दिया। आपने दहिप्रता, सम्पन्नता, युवावस्था व वृद्धावस्था, सन्धि व युद्ध, दुःख-सुख के प्रत्येक पैमाने में इंसान का मार्गदर्शन तथा नेतृत्व किया तथा उसे धरती पर जल्लादों, अत्याचारियों व नृशंस व्यक्तियों से सताये हुए जीव-धारी व प्राकृतिक शक्तियों से सहमी व सशक्ति (अभिभूत) इंसानों आबादी नहीं बल्कि उसे अपनी शिक्षा-दीक्षा द्वारा "अशरफ-उल्ल-मखसुकात" (समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ) के वास्तविक उच्च स्थान तक पहुँचाया। मुहम्मद साहब ने अपने शत्रुओं पर अपने चरित्र के अस्त्र-शस्त्र से विजय प्राप्त की।

बुदा के अन्तिम पैगम्बर मुहम्मद साहब ही वास्तव में विश्व के सर्वप्रथम सूफी थे। जिसका विस्तृत विवेचन हम आगे के पृष्ठों में करेंगे।

इस्लाम -

इस्लाम क्या है ?

अरबी शब्द कौश के अनुसार "इस्लाम" शब्द के अर्थ फारमाबर -

दारी (बाधा-पासन करना) होते हैं। किन्तु जब "दीन की ज़मान" में बातचीत हो रही हो तो उस समय इस शब्द के अर्थ "उस 'करमाय'दारी" के होते हैं जो "हुदा" के लिए हो तथा "मुस्लिम" वह होता है जो "हुदा" के आदेशानुसार हो तथा उन-उन आदेशों का पालन करे व केवल "एक हुदा" में विश्वास रहे।

"The meaning of the word Islam is 'submission' and 'peace'. In the course of making an individual Muslim — that is, one who is in a state of Islam or submission to the One True God — Islam profoundly affects his thinking and behaviour".
(Suzanne Haneef)².

इस्लाम उचित जीवन व्यतीत करने का एक सम्पूर्ण रूप है। मानव जीवन में जो कुछ भी उचित रूप में घटित होना चाहिए उसे इस्लाम बताता है- यह मार्गदर्शन अल्लाह से प्राप्त होता है- जोकि सम्पूर्ण दृष्टि का ध्यान करनेवाला है।

अल्लाह के आदेशों को मानने का नाम इस्लाम है। अतः सम्पूर्ण दृष्टि--- प्राकृतिक पदार्थ, प्रकृति, जीव विज्ञान रूप से मानव- अल्लाह के आदेशों का पालन करते हैं तो वे इस्लाम के अन्तर्गत जाते हैं।

प्रत्येक मानव नैसर्गिक रूप से अच्छी बातों व वस्तुओं को प्रिय तथा बुरी को अप्रिय मानता है। उदाहरणार्थ हममें से प्रत्येक व्यक्ति सत्य को पसन्द करता है तथा असत्य अक्का मिसूमा से घृणा करता है। यहाँ तक

2. What everyone should know about Islam and Muslims. Vii

कि एक झूठा व्यक्ति स्वयं को 'झूठा कहलवाना' पसन्द नहीं करता ।
 ऐसा क्यों ? क्योंकि झूठ बोलना दुरी बीज है। अतः पाप है। इसी
 प्रकार परीपकार करना, सहानुभूति दिखाना, नफ़्ताफ़सके व्यवहार करना,
 माता-पिता तथा गुरुजन का वादर करना, ईमानदारों तथा अन्य
 सभ्याचरण सदैव पसन्द किये जाते हैं तथा इनकी संसार में प्रशंसा होती है।
 इनके विपरीत जो कार्य होते हैं वे निन्दनीय अथवा दुष्प्रित समझे जाते हैं।
 अतः हम कह सकते हैं कि मानव (प्रकृति) उचित को पसंद करता है तथा
 अनुचित को नापसन्द । उचित (Right) के लिए 'माइफ़' तथा
 अनुचित (Wrong) के लिए 'मुनकर' शब्द क़ुरआन की भाषा में हैं। इस्लाम
 उचित (माइफ़) को ही मानता है तथा संसार में 'शान्ति' की स्थापना
 करता है क्योंकि मानव शान्तिप्रिय प्राणी है। अतः इस्लाम प्रकृति का धर्म
 है जिसे अरबी में 'दीन-उल-फ़ितरह' कहते हैं ।

क़ुरआन शरीफ़ में कहा गया है कि जिस समय प्रथम मानव (अ़दान)
 इस संसार में बसने के लिए भेजा जा रहा था उसी समय 'बत्लाह' ने
 घोषणा कर दी थी-

“अब अगर मेरी जानिक है तुम्हारे पास कोई हिदायत पहुँचै
 तो जो लोग मेरी हिदायत की पेंची करेंगे उनके लिए कोई अन्देश की बात
 न होगी और जो लोग इन्कार के रास्ते पर चलेंगे और हमारी जायतों की
 फुठलाएंगे वही दोज़ख़ वाले होंगे ।”

प्रथम मानव 'अज़रत आदम' से लेकर अज़रत मुहम्मद तक जितने
 आदेश बत्लाह के जाये उनको मानने वाला 'मुस्लिम' तथा हर 'दीन'

(घम) "इस्लाम" ही था ।

इस्लाम तथा मुस्लिम शब्द "क़ुरबान" के हैं- "क़ुरबान" "बत्ताह" का क़त्लाम है- "क़ुरबान" कहता है- "उसने तुमको "मुस्लिम" नाम पहलौ भी दिया और अब भी ।" सभी "रसूलों" का फ़ैज़ाम "बादम" है तैवर "मुहम्मद" (२२ : ७८) तक एक ही है। उन्होंने लोगों से "बत्ताह" की आज्ञा पालन करने के लिए कहा और किसी के लिए नहीं । यह फ़ैज़ाम फ़ैज़ामर मुहम्मद के जाने तक सम्पूर्ण हुआ । मुहम्मद रसूलों की शृंखला के अन्तिम रसूल हैं। "

"क़ुरबान" में एक स्थान बताता है-

"This day I have perfected your religion for you, completed my favour upon you and have chosen for you Islam as your way of life." (5:3)

"इस्लाम" की विशेषताएं-

(विश्वास - इस्लाम में प्रवेश करनेवाले के लिए आवश्यक है कि वह निम्नलिखित सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास (इमोन) रहे -

१- बत्ताह - केवल एक बत्ताह (हुदा) को मानें जो सर्वशक्तिमान, निर्गुण, निराकार, द्रष्टा व पालक है ।

२- क़रिश्ते- क़रिश्तों पर इमोन

१- क़ुरबान ५ : ३
२२ : ७८

- ३- रसूल - अल्लाह के द्वारा भेजे हुए रसूलों में विश्वास रहे, उनमें से किसी भी प्रकार का भेदभाव न करें ।
- ४- धार्मिक-ग्रन्थ- अल्लाह के रसूलों के द्वारा लाए गए धार्मिक पुस्तकों में विश्वास रहे ।
- ५- आखिरत पर विश्वास रहे कि एक दिन यह सृष्टि समाप्त होगी, क्यामत होगी, उसके पश्चात् समस्त मानव अल्लाह की अदालत में पेश किये जावेंगे, नैक इमानदार परहेजगार व्यक्ति को जन्नत तथा नास्तिक बेइमान दुष्ट व्यक्ति को दोज़ह मिलेगी ।

इस्लाम में मुस्लिम के लिए पांच कर्तव्य (अरकान) अनिवार्य हैं -

- १- इमान - "लाइलाहा इल्लाहल्ला ही मुहम्मदुररसूलुल्लाह" इस बात की शहादत देना कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (इबादत करने योग्य) नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।
- २- नमाज़ पढ़ना । (प्रतिदिन ५ अनिवार्य नमाज़ें पढ़ना) ।
- ३- ज़कात देना । (अपनी फूजों का चात्तीसवाँ भाग दरिद्रों को हर वर्ष दान देना) ।
- ४- हज़ करना । (हजनाकाबा की परिभ्रमा करना) ।
- ५- रमज़ान के राज़े रखना । (एक मास तक दिन में उपवास करना) ।

जो व्यक्ति उपर्युक्त बातों में विश्वास रखता है तथा पाँचों कर्तव्यों का पालन करता है वह सच्चे इस्लाम का मानने वाला है । उपर्युक्त कर्तव्य इस्लाम के स्तम्भ हैं ।

इस्लाम में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता

है-

- १- कुदा का डर (डीफा -ए-कुदा)
- २- पवित्र जीवन (तक्वा)
- ३- आपस के कामों में तथा व्यवहारों में सच्चाई तथा
हमेंमानदारी करना ।
- ४- हराम माल का गन्दा व फलहूस होना ।
- ५- पवित्र क्वाह तथा हमेंमानदारी का व्यवहार ।
- ६- इस व्यवहार में नफ़्ता व मैहरबानी
- ७- लोगों के साथ मिल-जुल कर शान्तिपूर्वक रहना
- ८- एक-दूसरे का ध्यान रहना, समाजधर्मा होना
- ९- आपस के अधिकार (हक) को पहचानना
- १०- माता-पिता का हक तथा उनका जदब (सम्मान)
- ११- बेटे-बेटियों के हक
- १२- पति-पत्नी के हक
- १३- अन्य सम्बन्धियों के हक
- १४- बड़ों के झोटों पर तथा झोटों के बड़ों पर हक
- १५- पड़ोसी का हक
- १६- निर्बल व दरिद्रों के हक
- १७- मुसलमान पर मुसलमान का हक
- १८- महावात- इस्लाम में सब क्रार हैं किसी भी प्रकार
का कोई मैदमाव नहीं ।
- १९- ज़ल्लाक (बच्चे परित्त) व ज़ाविल-ए-तारीक़ सुन्नियाँ
(सराहनीय)गुणा) होना

- २०- सच्चाई व सच्चा व्यवहार
- २१- वादे व बात को पूरा करना
- २२- धरौंध को रूखा करना
- २३- दया- अपराधी को क्षमा करना
- २४- नम्रता होना
- २५- सख्त शक्ति होना
- २६- बहंकार न करना
- २७- हिम्मत व बहादुरी होना
- २८- हृदय को सच्चाई होना (इखलास)
- २९- नीयत अच्छी होना
- ३०- हर वस्तु से अधिक बल्लाह, रसूल व इस्लाम के प्रति प्रेम होना।
- ३१- बल्लाह के सच्चे दोन (इस्लाम) की सेवा करना तथा दूसरे की उसकी ओर जाबुष्ट करना ।
- ३२- दोन पर झुकती है जमे रहना ।
- ३३- दोन के लिए बैठा, उसकी सहायता व रक्षा (जैहाद)
- ३४- शहादत की महत्ता, शहीदों का उच्च स्थान
- ३५- पापों पर परवाताप, क्षमा याचना

उपर्युक्त विवरणों का ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस्लाम एक व्यावहारिक धर्म है। उसमें बल्लाह के अतिरिक्त और किसी भी शक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। इस्लाम का अन्तिम ध्येय अथवा लक्ष्य ईश्वर की "कुम्पा" प्राप्त करना है। बल्लाह निस्सीम सौन्दर्य का जागार है तथा उसकी दृष्टि में सभी जीव बराबर

हैं, सब उसके आत्मोप है और वह सबका है। प्रमित एवं उचित मार्ग है मटके व अन्यविश्वासी को उचित मार्ग निर्दिष्ट करने हेतु अल्लाह ने मुहम्मद साहब को अपना अन्तिम पैगम्बर बनाकर संसार में भेजा तथा वही उतारी, फरिश्ते द्वारा कुबान शरीफ उतारा अथवा उसका इस्लाम कराया, अतः मुहम्मद साहब कुबान को वायलों के विन्यासक हैं, रक्षयिता नहीं हैं। कुबान के साथ हदीसों में आवेशावस्था में मुहम्मद साहब में सुनाई। इस्लाम धर्म को मुहम्मदावाद या मुहम्मदी कहना एकदम अनुचित है क्योंकि इस्लाम धर्म अल्लाह द्वारा प्रणीत हैं, मानव द्वारा नहीं। मुहम्मद साहब ने तो उसका प्रचार एवं प्रसार किया।

इस्लाम धर्म की व्याख्या इस प्रकार है-- परम शान्ति की वह स्थिति, जिसे कोई व्यक्ति अपने जीवन में देवस अल्लाह को समर्पित होकर प्राप्त कर सकता है और जो ऐसा करता है मुसलमान है।

तसव्वुफ अथवा सुफीमत वही इस्लाम की देन है।

द्वितीय अध्याय

इस्लामी तत्त्व

इस्लामी तसव्वुफ

(इस्लाम में सुफीमत)

(क) तसव्वुफ का उद्भव तथा विकास

बाध्यात्मिक जीवन ही वह जीवन है जो मानव में विभिन्न तथा अनेक प्रकार की अनुभूतियों एवं दशाओं को जन्म देता है। उदाहरणार्थ - मन की शुद्धता, माया मोह का तिरस्कार, विषय-वासनाओं से छुटकारा तथा ऐसे भौतिक सम्बन्धों का बहिष्कार जो बन्दे तथा जुदा के मध्य रुकावटें खड़ी करते हैं -- फिर भी वह जीवन है, जो मानव को इस सौच-विचार पर विवश करता है कि यह संसार क्या दुनिया क्या है ? इस सृष्टि के निर्माण का क्या उद्देश्य है ? इस जीवन की पूर्णता मानव को ईश्वर से जोड़ने में है। जुदा के अस्तित्व में किसी भी प्रकार की संका अथवा संदेह के लिए तब स्थान नहीं रह जाता ।

इस्लाम जब सबसे पहला प्रकट हुआ तो अपने साथ यह बाध्यात्मिक जीवन (इहानी ज़िन्दगी) भी लाया, जो हवादत की, जुदा का भय, मक्ति-भावना, संसार से विरहित, संसार की दागमँदूरता, सांसारिक जीवन के ऐश्वर्य से विभुषित होना - बादि बातों पर आधारित थी ।

इसके बाद मुहम्मद साहब के समस्त आध्यात्मिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च एवं आदर्श रूप वह था जो स्वयं मुहम्मद साहब तथा उनके साथी (सहाबा) व्यतीत करते थे। इस पवित्र जीवन की कथनी तथा करनी दोनों से मुसलमान पूर्णरूपेण प्रभावित होते थे - यही वह पदचिह्न था जिस पर चलना वे अपने लिए लाभप्रद समझते थे। किन्तु यह बात अधिक समय तक न रह सकी।

इस समय परचातु अपरिष्कृत व ग़ैर इस्लामी तत्त्व भी इस जीवन में प्रविष्ट हो गये। दर्शन तथा तत्त्वज्ञान में एक प्रकार मिलाप उत्पन्न हो गया तथा वह सादगी तथा पवित्रता न रही जो पहले थी। ये अपरिष्कृत तत्त्व जब इस्लाम के आध्यात्मिक जीवन में घुल मिल गये तो इसका एक परिणाम यह हुआ कि आध्यात्मिक जीवन ने विभिन्न प्रकार के रूप धारण कर लिए, इस प्रकार उद्देश्य तथा मार्ग भी बदलते गये। अब तत्त्वज्ञान तथा इस्लामियत (आध्यात्मिकता) का आधार इस पर न रहा कि मुख्य एवं मस्तिष्क को पवित्र किया जाये, ब्रह्मा से सम्बन्ध स्थापित हो, सांसारिक सुखों से वैराग्य हो लिया जाये। अपितु यह स्वयं एक दीन व धर्म बन गया जिसे मैं अनेक धर्मों कहूँगी - अब इस जीवन का उद्देश्य सात्विक न रहकर - इसे एक-दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति का माध्यम बना लिया गया -- अब मानव केवल चिन्तन तथा मनन को त्याग कर एक फा बीर जागे बढ़ गया तथा दर्शन के गूढ़ अध्ययन का रुचिक हो गया। अब तत्त्वज्ञान का उद्देश्य यह रह गया कि मानव जब परम सिद्धि को अवस्था को पहुँच जाये तो स्वयं का नाश करके अपने "रब" (ईश्वर) से जा मिले। यही है आध्यात्मिक जीवन एक नया चीला बदलता है तथा मीन रूप धारण करता है।

सुफियाना जीवन -

इस्लाम के सुफियाना जीवन के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो ज्ञात होगा कि तसव्वुफ उस मक्ति तथा उन चेष्टाओं का नाम है जो मन के फेरे हटा दें, सत्यों का प्रकटीकरण कर दें। इस्लामी तसव्वुफ एक सैदा सरा तथा स्वच्छ दर्पण है, जिस पर वे समस्त रूप प्रतिबिम्बित होते रहते हैं जो विभिन्न युगों में आध्यात्मिक जीवन में धारणा किया। दूसरे शब्दों में यों समझना चाहें कि इस्लामी तसव्वुफ का उपदेश उन ऐतिहासिक सत्यों का पाठ है जिन्होंने इस्लाम के आध्यात्मिक स्वप्न को संभव किया जिन्होंने तसव्वुफ को एक मैदूरी वस्तु बना दिया, उन तत्त्वों को प्रकट किया जो उसके संकलन हेतु निरिच्छा हुए।

इस्लाम में तसव्वुफ का प्रारंभ -

इस्लाम में आध्यात्मिक जीवन क्या तसव्वुफ का आरम्भ किस प्रकार हुआ ? यह एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है तथा इसका उत्तर भी एकदम स्पष्ट व साफ है। इस्लाम में आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ मुहम्मद साहब तथा उनके साथियों (सहाबियों) के साथ-साथ हुआ।

उपरत मुहम्मद साहब व उनके साथी संसार की चमक-दमक से एकदम विरक्त थे, ऐश्वर्य तथा दिखावे का उनके जीवन में कहीं स्थान नहीं था। वे केवल खुदा की ओर आकर्षित थे तथा जीवन के प्रत्येक क्षण पर उसी की इबादत में लीन रहते थे। वे खुदा के लिए जीवित

रहते थे, उनके लिए बेहाद करते थे, जुदा को राह में शहोद हाँते थे, उनका जीना भरना संसार के लिए न होकर केवल जुदा के लिए था। उनमें ईमान की शक्ति तथा विश्वास इसी जुदा के प्रेम ने व जीवन ने उत्पन्न किया था।

फगुम्बर मुहम्मद के जीवन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उनके जीवन का प्रारंभ इस प्रकार हुआ कि वे दिन तथा रात्रि के बड़े भाग में-- संसार के लोगों से अलग, दुनिया से दूर "शिरा की गुफा" के एकाकीपन में व्यतीत करते थे, यह घटना उस समय की है जब उन पर "वही" अथवा जुबान शरीफ की जायतें प्रकट नहीं हुई थीं किन्तु उनके बाध्यात्मिक जीवन का दौर प्रारम्भ हो चुका था। इस प्रकार उनके साथियों अबु बक्र सिदीक, उमर फाटक, उस्मान गुनी व अली का जीवन भी बाध्यात्मिकता से परिपूर्ण था तथा इसी प्रकार जीवन उस समय के अन्य लोग भी व्यतीत करते थे, उन्हें यह जीवन मुहम्मद साहब से मिला, जगै कलर यही जीवन एक विशालकाय रूप धारण कर गया फिर कौई युग इस्लाम में ऐसा नहीं आया जो बाध्यात्मिकता से रिक्त हो। ये सब दुनिया से अधिक दोन की ओर आकर्षित थे।

मुहम्मद साहब ने लोगों से दूर रहकर जो बाध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया उसमें तथा बाद की होने वाली सूफियों के जीवन में अमूल्य समानता है। मुहम्मद साहब का जीवन हर अनुचित बात से दूर व पृथक् था--यह दानियत (शैखवाद) मुहम्मद साहब के जीवन का मूल ग्राँथ था--यही वह मूल सिद्धान्त था जो रसूल ने अपने अनुयायियों के समक्ष प्रस्तुत किया था अतः जो तत्त्वज्ञ उस आत्मा से दूर रहा वह इस्लाम से भी दूर है।

उपरीष्ट तत्त्वों में विभिन्न परिवर्तन आते गये, उनके अनेक रूप हो गये तथा उसमें इस्लाम के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों को भी उनमें स्थान मिलता गया। इस प्रकार तत्त्वों के अनेक रूप - फारसी तत्त्व, हिन्दी (पारसी) तत्त्व, फ़ारसी तत्त्व तथा यूनानी तत्त्व आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इन अपरिचित तत्त्वों के बाधित्व ने तत्त्वों को एक रेशा पर बना दिया जो एक प्रकार से इस्लाम से भिन्न व विरही था।

वास्तविक तत्त्व यह है "जो मुहम्मद साहब के जीवन को छाया ही व जो कुरआन तथा सुन्नत का अनुयायी है।"

सबसे प्रथम सूक्त -

यदि मुहम्मद साहब के आध्यात्मिक जीवन तथा बाद की होने वाली सुफ़ियों के जीवन से तुलना की जाय तो प्रकट होगा कि दोनों में अत्यधिक समानता है तथा वास्तविकता तो यह है कि "ग़ार-हिदा" में मुहम्मद साहब ने जो जीवन व्यतीत किया था वही वास्तविक रूप में प्रथम बीज है तत्त्व का, जिससे तपस्वियों की तपस्या, पुजारियों की पूजा तथा सुफ़ियों का तत्त्व का लाया।

"ग़ार - हिदा" की तपस्या के द्वारा मुहम्मद साहब की मन की शुद्धता, हुदा के सम्बन्ध में उनका पूर्ण सौच-विचार, आध्यात्मिक चिन्तन की प्राप्ति व विकास हुआ। उन्होंने अपने आपकी (नफ़स) को पहचान लिया, अपनी अन्तःस्थ की पहचान लिया। हुदा द्वारा प्रेषित कुरआन की आयत के प्राप्त होने के परचात् मुहम्मद साहब के आध्यात्मिक जीवन का स्वयं मीन व विविध अध्याय प्रारम्भ हुआ। यह वह

जीवन या जो संघर्ष (बैहाद) तथा सहनशक्ति का दर्पण था, इस जीवन में जाग्रत अपनी सर्वोच्च शिखर तक पहुँच गया था तथा इसमें ईमान व विश्वास ने उत्थान की चरम सीमा की व प्राप्ति कर ली थी।

बारी आने वाले सुफ़ियों के जीवन पर निश्चय ही मुहम्मद साहब के जीवन तथा उनके कृत्यों का प्रभाव पड़ा है। मुहम्मद साहब द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक जीवन "राह-ए-कुदा" के बुद्धी सुफ़ियों के जीवन को नीचे है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि तस्वुफ़ का मूल ग्रांत पैग़म्बर मुहम्मद साहब को शिक्षार्थी तथा उनके व्यक्तित्व में है।

मुहम्मद साहब पर कभी-कभी आत्म विस्मृति की अवस्था हो जाती थी, इस क्षण में मानव संसार के साथ स्वयं तक को मुहा बैठता है।

एक बार मुहम्मद साहब इसी आत्म विस्मृति की दशा में थे, उन्होंने अपनी पत्नी आयशा को देख कर पूछा-

"मन अन्तो"? तुम कौन हो?

वे बोलीं-

"अना आयशा।" मैं आयशा हूँ।

"कन आयशा?" आयशा कौन?

आयशा ने उत्तर दिया-

"इकिन्नतुस्सदीक़।" सिदीक़ को पुत्री।

मुहम्मद साहब ने पूछा-

"मन सदीक़?" सिदीक़ कौन?

वे बोलीं-

“दास्त-ए-मुहम्मद । ” मोहम्मद के भित्र ।

मुहम्मद साहब ने तब पूछा -

“मन मोहम्मद ? ” मोहम्मद कीन ?

अब आयेगा तुम ही यह क्योंकि उन्होंने जान लिया था कि उस समय आप द्वाली अवस्था (दशा) में थे ।

यह घटना इस बात का ठूठा प्रमाण है कि हुदा की याद में एक ऐसी अवस्था आती है जब मानव अपने अस्तित्व तक लौ विस्मृत कर देता है तथा यह रूप हमको सुफियों तथा तपस्वियों के जीवन में भी दृष्टिगोचर होता है तथा यह प्रभाव निश्चित रूप से सुफियों पर फाम्पर मोहम्मद साहब के जीवन एवं व्यक्तित्व का है ।

यही नहीं, स्वयं “कुवान शरीफ” में मुहम्मद साहब के “में राज” को घटना का घणने आया है कि केवल एक रात्रि में ही मक्का से “बैतुल मुकदस” गए तथा वहाँ से उन्होंने सातों आसमानों की तैर की। यह इस बात का प्रमाण है कि हुदा जी चाहें कर सकता है। इस घटना के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं-

कुछ का विचार है कि “बैतुल मुकदस” तक की मुहम्मद साहब की यात्रा “शारीरिक” थी तथा “आसमानी” यात्रा “आध्यात्मिक” थी । यदि “मैराज” की आध्यात्मिक मान लिया जाये तो यह इस बात का प्रमाण है कि मुहम्मद साहब का मन, आत्मा तथा कर्तु, इतने अधिक पूर्ण एवं सशक्त हो चुके थे कि आपकी आत्मा आकाश तथा पृथ्वी वहाँ पर भी स्थानान्तरित हो सकती थी, वह सम्पूर्ण सृष्टि पर व्याप्त थी तथा सृष्टि के समस्त गुणों पर पराजित: प्रकट थे ।

उपस्थित बातों से यह बात सिद्ध होती है कि मुहम्मद साहब ही इस विश्व के सर्वप्रथम सूफी थे जिनके जीवन व व्यक्तित्व के नांव पर बागै कातर सूफी मत का विशाल एवं मय्य भवन निर्मित हुआ ।

जब तक के प्राप्त सम्पूर्ण हिन्दी सूफी साहित्य तथा उससे सम्बन्धित निबन्धों एवं शोध-ग्रन्थों में कहीं भी उपस्थित बात का वर्णन उपलब्ध नहीं होता तो कि तद्व्युक्त अथवा सूफी -मत, सूफी साधकों तथा सूफी साहित्य के साथ एक प्रकार का अन्याय है। यह तो कुछ ऐसी ही बात है कि लोग जड़ को मूलकर केवल वृक्ष तथा उसके फल को पकड़ें ।

मुहम्मद साहब ने अपने आध्यात्मिक जीवन की क्रम सीमा तक सम्पूर्ण बना लिया था तथा वे ईश्वर भक्ति व पूजा-वाठ (इबादत व रियाज़त) में इतना अधिक व्यस्त रहते कि स्वयं जुदा ने इरान द्वारा उनकी इस सम्बन्ध में अधिक परिचय करने से मना किया ।

मुहम्मद साहब बहुत सादा लिबास पहनते थे, वही प्रकार उनका भोजन भी बहुत सादा-सा होता था । वे रात-रात भर इबादत किया करते थे । यहाँ तक कि उन के पैर सूज जाते थे, उन पर वरम जा जाया करता था । जब उनके एक साथी ने उनसे पूछा कि जब जुदा ने आपके आले पहिले सम्पूर्ण गुनाह (पाप) क्षमा कर दिये हैं तो फिर आप इतना परिश्रम क्यों करते हैं ?

तो उन्होंने उत्तर दिया कि क्या मैं जुदा का बामारी बन्दा न बनूँ ?

एक हदोब है कि-

“दुनिया से नफ़रत करी, अल्लाह तुम्हें मुहब्बत करेगा।”

मुहम्मद साहब ने एक अवसर पर कहा-

“जब तुम किसी ऐसी आदमी को देखो जो दुनिया से घृणा करता है तो उसका सामोप्य प्राप्त करी वह तुम्हें शिकमत बताएगा।”

“सफलता पैरों के साथ प्राप्त होती है कष्ट के पश्चात् सुख जाता है तथा लोभी के पश्चात् आसानी का सपना जाता है।”

उपरोक्त हदोबें इस बात का प्रमाण हैं कि फुजारों की पूजा, तपस्वी की तपस्या तथा सुफ़ियों का तसब्बुफ़ कोई भी नवीन वस्तु नहीं हैं बरन् मुहम्मद साहब के कथनों व कर्मों से उपज्जुत हैं।

मुहम्मद साहब के पश्चात् अबुबकर सिद्दीक़, उमर फ़ातुम, उस्मान गुना तथा अली तथा सफ़ा के साथी व अन्य बनेक लोग मुहम्मद साहब से पूर्णतः प्रेरित एवं प्रभावित थे। वे सदा जोरों पर व्यतीत करते थे, पूर्णतः अल्लाह को और आकषित थे तथा संसार से एकदम विरक्त थे।

सफ़ा के साथी ही वे लोग थे जिन्होंने इस्लाम के ऐतिहासिक इतिहास पर बहुत प्रभाव डाला, वास्तव में तसब्बुफ़ का इतिहास यहीं से प्रारम्भ होता है। सफ़ा का गिराई सांसारिक कर्तव्यों से एकदम युक्त था, न उनका कोई सगा सम्बन्धी था व न ही उनकी कुछ

१- श्री कुल इमान- तैरानी

२- साह अबुल बाता फी

करने की आवश्यकता थी। एक प्रकार से वे मुहम्मद साहब के वशिष्ठ थे। उन लोगों के लिए "नबी की मस्जिद" के पास एक चबूतरा बना दिया गया था। वे लोग सभी बैठकर चौकर अपना सम्पूर्ण समय पूजा-पाठ और कुदा की याद में व्यतीत किया करते थे।

उन लोगों से स्वयं मुहम्मद साहब प्रेम करते थे, उनके साथ मेहरबानों का व्यवहार करते थे व उनके साथ उठते-बैठते थे।

ये वे लोग थे जिन्हें न तो सम्पत्तियों ने और न धन-दातृ ने फंसाया तथा न ही व्यापार आदि इन्हें कुदा की हवादत से रोक सका। संसार में यदि वे कुछ-कुछ लाते थे तो उन्हें तनिक भी दुःख नहीं होता था। इन लोगों के पास उठना-बैठना तथा आचरण करना उस समय के मूल्य एवं संप्रदान जन अपने लिए गर्व की बात समझते थे। ये लोग संसार से उदासीन होकर कुदा की याद में लीन रहते थे, अपने समय का एक बड़ा भाग पूजा-पाठ में व्यतीत करते थे।

ये लोग थे प्रारंभिक सुफ़ी।

उपरोक्त तथ्यों से यह बात प्रमाणित होती है कि तपस्या (जौहद) व तसव्वुफ (सुफीमत) कौन-सीन वस्तु नहीं है परन्तु यह वह वस्तु है जो इस्लाम में बहुत पहले से विद्यमान थी, फात्मा मुहम्मद साहब उनके साथी व उनके उद्देश्यकारी सभी लोग अधिकतर कुदा की ओर आकर्षित थे, हवादत में लीन रहते थे, संसार से उदासीन रहते थे। अतः तसव्वुफ एकमात्र इस्लाम की देन है।

तसव्वुफ क्या है ?

तसव्वुफ मानव के मन की एक विशिष्ट अवस्था का नाम है जिसमें मनुष्य संसार से उदासीन होकर खुदा को इबादत में इतना लीन हो जाता है कि कभी-कभी स्वयं अपने अस्तित्व तक को विस्मृत कर देता है ।

किन्तु तसव्वुफ की आज तक कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन पाई है। अनेक विद्वानों ने सूफी मत की अनेक परिभाषाएँ की हैं किन्तु वे किसी न किसी रूप में अपूर्ण रह जाती हैं ।

सूफी तथा तसव्वुफ की कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ निम्न-लिखित हैं-

बशर बिन हारिस हानी का कथन है-

“सूफी की तारीफ़ यह है कि जो व्यक्ति अल्लाह के लिए अपने मन की समस्त गन्दगी को पवित्र कर ले । वस यही असल और सही सूफी है । ”

मन्दार बिन हुसैन का कथन है-

“सूफी वह व्यक्ति है जो अपने नफ़्स (आत्मा) के लिए सत्य को धारण कर ले, स्वयं को हर तरह की गन्दगी से पवित्र कर ले। ”

सुहैल बिन अब्दुल्लाह का कथन-

“सूफी वह है जो गन्दगी से पाक व साफ़ हो, जो जीवधारियों से विरक्त होकर अल्लाह का हो रहे जिसके लिए स्वर्ग और क़व्वद बराबर हों । ”

बहु मुहम्मद ज़रौरी का कथन -

“प्रत्येक उच्च एवं श्रेष्ठ कौटि में जगमग तथा निम्न एवं निकृष्ट कौटि का तिरस्कार ही तसव्वुफ़ है।

अदहम का मंत्र -

“तसव्वुफ़ नफ़्स का अल्लाह के साथ उसकी मज़ी पर झड़ देना है।

जुनेद बुख़ादी का मंत्र -

(क) “तसव्वुफ़ उसका नाम है कि हक़ (ईश्वर) तुम्हें तुम्हारे मारे और उससे आप तुम्हें ज़िलाये।”

तथा

(ख) “सूफ़ी ज़मीन की भिखार है, हर एक घुरी चीज़ उस पर डालते हैं और उसमें से जी चीज़ निकलती है, वह अच्छी होती है।”

माहफ़ अलकर रज़ी का कथन-

“अल्लाह की जानना तथा सार्वारिक विषय-वासनाओं का त्याग ही तसव्वुफ़ है।”

अबुल छुन अल नूरी-

“सूफ़ी दुनिया से नफ़रत करते हैं और कुदा से मुहब्बत।”

अबुल हसन छुजैरी का कथन-

“सूफ़ियों के लिए सूफ़ी सिद्धान्त सूर्य से भी अधिक स्पष्ट है- सच्चा सूफ़ी वह है जो अपवित्रता की पीढ़े झड़ जाया हो।”

कुलनूत मित्री का कथन-

“सूफ़ी वे लोग हैं जिन्होंने सब कुछ छोड़कर झुदा को लिया है।”

बहु क़त्ती कुर्वेनी का कथन-

“तसव्वुफ़ बख़्ताक़ (बाख़रणा, सदाचार) फ़संदोदा का नाम है।”

अबुल हसन नूरी का कथन-

“तसव्वुफ़ समस्त ऐश्वर्यों के त्याग का नाम है।”

मुतज़िज़ का कथन-

“तसव्वुफ़ सदाचार का नाम है।”

अधिकतर सूफ़ियों का कथन है कि-

“जब मानव अपने से वैकुंठ है उसे अपने से ~~असह्य~~ वाकुंठ होना चाहिये।”

डा० मिक्ल्सन भाइफ़ ज़ल क़त्ती की परिभाषा की तसव्वुफ़ की प्राचीनतम भाषा माना है।

उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूफ़ी जिस स्थान में है तथा जिस दृष्टिकोण से उसने उसकी देखा है, समझा है, उसी की वर्णित करने की दृष्टा का है। ऐसी दशा में किसी परिभाषा की सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

हुदा के प्रति आकर्षण, हुदा के सिवा सब का त्याग, संतौण, धैर्य, इन्द्रिय निग्रह, समर्पण, सदाचार आदि तसब्बुफ के विभिन्न रूप हैं। वास्तविक उद्देश्य सत्य को खोज है। सत्य का दूसरा नाम ईश्वर अपना हुदा है। हुदा को प्राप्ति संसार से विरहित के बिना नहीं हो सकती।

बण्डरल्लि के शब्दों में "वास्तविक तसब्बुफ को नौवें मानव के व्यवित्तव में अंतर्निहित है।"

अतः तसब्बुफ एक ऐसी वास्तविकता है जो केवल "मन" से सम्बन्धित है। सम्मत सुफियों ने इस बात पर बल दिया है कि सुफी को वास्तव्य शुद्धि के साथ-साथ अन्तःस्तर को शुद्धि करके स्वयं को हुदा की मर्जी पर हाँड़ देना चाहिये। एक प्रकार से मुस्लिम साधकों द्वारा अभिव्यक्त रहस्यों का समन्वयोकरण हा तसब्बुफ है। तसब्बुफ भी इस्लामी रहस्यवाद को रचना है उसका ही एक अंग है।

डा० साह बख्श उल खान शारिफ ने बहुत सौमन्दर शब्दों में तसब्बुफ का सुन्दर चित्र निम्न रूप में अंकित किया है-

"तसब्बुफ एक दरस्त है, बीर तबकुल, किनाअत, उम्मीदों-बीम, सद्ग, इस्तक़लात, हिल्म, बुदबारी, गुलाअत, मज़लुक से बेनियाज़ी, अनवार के मुशाहिदात, ख़िलकत, सामीशी, तज़्वा, परहेज़-गारी, जुहद, शौफ़, ख़ुश व ख़ुश, तवाज़ी, मुतालिफते- नफ़्स, शुक्र, यकीन, रदा, अबुदियत, इरादा, इस्तिक़्ामत, इत्तहास, सिद्क, हया, छुरियत, फ़क्र, अदब, जाक़ी-शौक़, ताहोद, पारिफ़त- उसके सदा-बहार फूल बीर ख़ानुमा फल है।"

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति -

जिस प्रकार तसव्वुफ़ की कोई सम्मत् व विश्वसनीय परिभाषा नहीं है उसी प्रकार 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में बनेक मत हैं।

तसव्वुफ़ का बाविभाव कुछ लोगों के मत में दूसरी सदी हिज्री में हुआ तथा सूफी का नया व विचित्र शब्द अस्तित्व में आया। आरंभ में सूफी शब्द तपस्विय, फुजारियों, उपासक करने वालों, सदाचारियों, परहेज़गारों के लिए विशिष्ट रूप से प्रयोग होता था।

फिर धीरे-धीरे जो लोग एकान्त में खुदा को भक्ति करते, फल की शुद्धि करते, धार्मिक आदेशों का पालन करते-- उन लोगों को भी सूफी कहा जाने लगा। फिर यह शब्द उन लोगों के लिए भी प्रयुक्त होने लगा जो आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे।

बागी क़ासर धर्मोपदेशकों तथा सूफ़ियों में एक विशिष्ट अन्तर यह हो गया कि दोन के आत्मिक धर्म के बाह्य रूप पर बल देते थे किन्तु सूफी बाह्य से अधिक आन्त्यान्तरिक रूप को महत्ता देते थे।

अब प्रश्न उठता है कि तसव्वुफ़ सूफ़ () है निश्चय है जिसके अर्थ बकरी के बालों या ऊन के हैं।

कुछ का मत है कि- 'सूफी एक उपाधि है।'

दूसरों का विचार है- 'सूफी असल में सफ़ा, सफ़ू या सफ़ है बना है।'

कुछ अन्य लोगों का विचार है कि - 'सूफी शब्द 'सफ़फ़ाह' से निमित्त हुआ है, सफ़फ़ाह के अर्थ 'चतुर्' के हैं। मुहम्मद साहब के

समय में कुछ लोग ऐसे थे जो मस्जिद-नक्वो में एक चक्कर पर पड़े रहते थे, ये सांसारिक कामकाजों से एकदम विरक्त हो गये थे और यदि-कुछा में लीन रहते थे। ये लोग "अस्हाबे-सफ़ाफ़ाह" कहलाते थे। क्योंकि ये लोग मन की शुद्धता में बराबर लीन रहते थे, अतः सफ़ाफ़ाह थे।

कुछ का विचार है- सफ़ाफ़ाह शब्द की व्युत्पत्ति "सफ़ा" नामी ऊन का कपड़ा पहिने के द्वारा हुई।

कुछ का विचार है तपस्या व इबादत के कारण जो लोग प्रथम पवित्र (जेष्ठ) में थे वे सफ़ाफ़ाह कहलाए तथा वे हाजिरा-क्यामत के दिन "सफ़ा" - अव्वल में होंगे। अतः सफ़ाफ़ाह शब्द सफ़ा से निकला है।

कुछ लोगों का विचार है कि तसब्बुफ़ का मूल यूनानी शब्द है जिसके अर्थ "दिकमत" (बुद्धिमत्ता) होते हैं, दूसरी सदी हिज़्री में जब यूनानी पुस्तकों का अनुवाद अरबी में हुआ तो यह शब्द अरबी भाषा में आया।

सफ़ाफ़ाह शब्द की व्युत्पत्ति से सम्बन्धित उपर्युक्त कथनों व विचारों पर विशेष ध्यान देना परमावश्यक है।

यह कथन कि सफ़ाफ़ाह शब्द सफ़ा तथा सफ़ा से निकला है, शब्दकोश के अनुसार तो ठीक ही सकता है किन्तु अर्थ की दृष्टि से यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती।

यदि सफ़ाफ़ाह सफ़ा से निकला है तो उसे "सफ़ावा" कहना अधिक समीचीन है वही प्रकार सफ़ा से भी सफ़ावा बना सफ़ाफ़ाह नहीं। क्योंकि भाषा तथा शब्द कोश के नियमों का हम उल्लंघन नहीं कर सकते।

यह कथन कि सूफ़ी शब्द को व व्युत्पत्ति सूफ़ शब्द से है, भी अनुचित ठहरता है क्योंकि सूफ़ से निकलने के कारण 'सफ़फ़ी' होना चाहिए सूफ़ी नहीं ।

इस कथन को खोच तान कर ज़िस्ती हद तक प्रमाणित किया जा सकता है कि सूफ़ी का मूल सफ़फ़ाह (चबूतरा) में है किन्तु यहाँ भी शब्द कोश के नियम रूकावट लड़ी कर देते हैं सफ़फ़ाह से सफ़फ़ी शब्द बनेगा सूफ़ी नहीं ।

इसी प्रकार सूफ़ान या सूफ़ाना शब्दों को मूल मानें तो उन्हें सूफ़ानी शब्द बनेगा सूफ़ी नहीं ।

अब यह बात रह जाती है कि सूफ़ी एक लड़क (उपाधि) है, इस बात की प्रसिद्धि यों होती है कि जो लोग सूफ़ का लिबास पहनते हैं - उन्हें सूफ़ी कहा जाता था । इस बात का समर्थन अल हुज्विरी, शैख़ शहाबुद्दीन, सहरवदी, सिराज तुख़ी, इबने इल्दून तथा डा० निक्लसन आदि (अनेक पारश्चात्य विद्वानों) ने भी किया है ।

डा० निक्लसन ने इस बात की पुष्टि के लिए दलील प्रस्तुत की है कि इरान में सूफ़ी को 'पशमीना पोश' भी कहते हैं ।

परन्तु यहाँ मुझे एक आपत्ति यह है कि यदि सूफ़ शब्द का अर्थ ऊन है तो अरब जैसे गर्म देश में ऊन का क्या काम ? अरब को गर्म तो विश्व विख्यात है तथा वहाँ के निवासी तो ऐसा लिबास पहनते हैं कि जिसमें उनकी गर्मी न लगे । ऊनी लिबास तो सर्द देशों तथा सदियों में ही प्रयोग किया जाता है। अतः या तो सूफ़ शब्द के अर्थ ऊन नहीं होना

बाहिर और यदि ऊन हो ठीक वर्ष है तो फिर सूखी शब्द को व्युत्पत्ति
सूत्र है नहीं मानना चाहिए ।

अतः मैं तो उपर्युक्त विद्योक्ता से सहमत नहीं हूँ, भरी राय में
तो सूखी वही है जो "सब तब हरि भव" की वह बात की साफ़ सिद्ध
करे ।

अतः उपर्युक्त विद्यो एक मत की मान लेना बहुत बड़बुदा है
इसलिए हमें यह कहकर चुप हो जाना चाहिए कि जिस प्रकार तत्त्वज्ञान
की और सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है वैसे ही सूखी शब्द की व्युत्पत्ति
के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय उक्त नहीं है ।

तत्त्वज्ञान की रचना -

इस्लाम में तत्त्वज्ञान की रचना करते हैं चौक-बिचार कर नहीं
की गई है, इसकी रचना के लिए और समा नहीं जुटाए गए अथवा और
निग्रह नहीं बनाये गये । न ही तत्त्वज्ञान और संदेह था जिसे तीनों के
कानों तक पहुँचाया गया हो ।

अपितु यह एक ऐसी मान्दाय भावना थी जो अन्य धर्मों के
समान इस्लाम के अनुयायियों में भी धीरे-धीरे पनपती रही तथा जाने
कतकर अचानक ही अपने सुन्दर रूप में प्रकट हो गया ।

परिणामस्वरूप जो तत्त्वज्ञान आज इस्लाम के अनुयायियों से
जुड़ा हुआ है वह कुछ दृष्टिकोणों से खूबसूरत नहीं है। अतः यह प्रश्न
उठता है कि इसकी रचना शुद्ध इस्लामी तौर पर हुई या नहीं? यदि
यह शुद्ध इस्लामी है तो इसमें ऐसे तत्व क्यों सम्मिलित हैं जो तनिक भी

इस्लामी नहीं हैं ? तो फिर यह कहाँ से प्रकट हुआ ? इस बारे में अनेक दृष्टिकोण हैं जिनमें से निम्न चार प्रमुख हैं-

- १- तसव्वुफ़ एक स्वनिर्मित बान्दोलन है ।
- २- तसव्वुफ़ सामी (इस्लाम) धर्म के विरुद्ध जायों की एक प्रतिक्रिया है ।
- ३- तसव्वुफ़ (हशरादियते-जदोद, नव अफ़लातून वाद) द्वारा प्रकट हुआ ।
- ४- तसव्वुफ़ का मूल शुद्ध इस्लामी शिदा है ।

प्रथम दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण के अनुसार तसव्वुफ़ एक स्वनिर्मित बान्दोलन है जो बिना किसी बाह्य या आन्तरिक प्रभाव के प्रकट हो गया । कहा जाता है कि इस्लाम में साधारणतया बाह्याचार्यों की अधिक महत्व दिया जा रहा था तथा ऐसी आत्माओं के लिए कोई सामान नहीं था जो शान्ति को इच्छुक थीं । यह विचार एकदम बौध्द धर्म के कारण है । किन्तु इसके समर्थन में कहा जाता है कि आरम्भ के सुफ़ी इब्राहीम बिन अदहम, सुफ़ियान सूरि तथा अबु हाशिम के कथनों से उपर्युक्त बात सत्य प्रतीत होती है । इन सुफ़ियों के समस्त कार्य केवल खुदा को इबादत से ही सम्बन्धित थे तथा वे खुदा से एक प्रकार का इहानी रिश्ता स्थापित करना चाहते थे जिसके लिए इस्लाम में कोई स्थान नहीं था । लेकिन यह बात ठीक नहीं है । इस्लाम मानव को कर्मठ बनाना चाहता है किन्तु साथ ही उसने मवतों के लिए इहानी जीवन व्यतीत करने के लिए मोर द्वार खोले हैं । किन्तु इहानी जीवन व्यतीत करने का तात्पर्य यह तो नहीं कि मानव सब कुछ छोड़कर ज़ाल की राह ले ले, इस्लाम का उद्देश्य तो यह है कि वह वहाँ मानव

को तपस्वी स्व साधक बनाये वही वह मान्य एक साहित्यकार, चित्रकार, लेखक, कवि तथा योद्धा भी बने। अतः यह कहना कि इस्लाम के वास्तव रूप तथा कर्मों व आदेशों के कारण सुफी आन्दोलन हुआ, स्वयं वास्तव है वही किसी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता।

द्वितीय दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण के अनुसार तसब्बुफ़ सामी धर्म (इस्लाम) के विरुद्ध एक जाय प्रतिजिया स्वरूप प्रकट हुआ। इसका अर्थ यह है कि जाय (इरानो व भारतीय) धर्मों के लोग आध्यात्मिकता तथा वास्तविकता में उस समय बहुत आगे थे जब उन्हें इस्लाम स्वीकार करने पर विवश किया गया। इस्लाम स्वीकार करने के पश्चात् उनके प्राचीन कर्म फिर से उभर आये तथा उनमें और इस्लामी सिद्धान्तों में संघर्ष हुआ, इस्लाम को भी नहीं छोड़ सकते थे तथा प्राचीन धर्मों से भी छुटकारा नहीं पा सकते थे। परिणामस्वरूप तसब्बुफ़ का प्रादुर्भाव हुआ।

जाय धर्म दो बड़ी शाखाओं में विभाजित हैं-

१- इरानी २- हिन्दी अथवा भारतीय

इरानी अथवा फारसी तसब्बुफ़ -

कुछ लोगों का विचार है कि इस्लाम का तसब्बुफ़ वास्तव में फारसी तसब्बुफ़ का प्रतिबिम्ब है। अरब तथा इरान के पुराने सम्बन्ध थे तथा अरब इरानियों से बहुत कुछ सीखा करते थे। उनकी विधा तथा तसब्बुफ़ जाय से मालामाल होते रहते थे। ये लोग अपने इस मत को पुष्टि के लिए यह भी कहते हैं कि अधिकतर सुफी मस्जिद इरानी थे जिन्होंने सुफी मत को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित किया।

किन्तु यह मत किसी भी प्रकार स्वीकार्य नहीं है क्योंकि इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि इस्लाम से पूर्व ईरान एक जाति देश या वहाँ के लोगों में फ़ैला और बँटता था। अरबों ने धार्मिक, सांस्कृतिक प्रभाव ईरानियों पर डाला तथा एक प्रकार से ईरानियों को काया पलट कर दी। हालाँकि प्रोफ़ेसर ब्राउन का मत इसके बिल्कुल विपरीत है। उनका कथन है कि ईरानियों ने प्रत्येक चीज़ में यहाँ तक कि तसब्बुफ़ में भी अरबों को बहुत प्रभावित किया।

किन्तु इस दलील को नीचे एकदम खीखी है तथा गलत है जिसे किसी भी तरह नहीं माना जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि ईरान में अलमाइफ़ करज़ी तथा अक़ुज़ोद अल बिस्तामी सरोसे सुफ़ी साधक हुए जिनका प्रभाव अवश्य पड़ा, किन्तु ईरानियों पर अधिक गहरा प्रभाव अबु सुलेमान अल्बाराज़ी (अरब), जुल्नून मिनी (फ़िज़), मुह्लिउद्दीन ज़िन अरबी अलमुत्तफ़्फ़ी, शरफ़ुद्दीन उमर, आदि अरब सुफ़ियों ने डाला।

इससे यह सिद्ध होता है कि इस्लामी तसब्बुफ़ का प्रभाव फ़ारस या ईरान पर पड़ा तथा ईरानी प्रभाव भी हुआ किन्तु इस्लाम स्वीकार करने के पश्चात्।

भारतीय (हिन्दु) तसब्बुफ़ -

बहु लोच भारतीय वैदान्त दर्शन को तसब्बुफ़ का मूल मानते हैं। यह एक दार्शनिक पद्धति है जो वेदों पर आधारित है। इसका उद्देश्य है कि परमात्मा के सम्बन्ध में जीवन को जाय तथा उस सम्बन्ध को ज्ञानबोध करे जो वृष्टि मानवात्मा के मध्य स्थापित है।

इन विद्वानों का मत है कि वास्तव में तसब्बुफ़ भारत से ही

ब्राह्मों ने ग्रहण किया है क्योंकि यह रहस्यवाद पर आधारित है तथा "रहस्यवाद" भारतवर्ष के अपनी मौलिक विशेषता है। इस दृष्टिकोण के समर्थन में उन सब तत्त्वों तथा विशेषताओं को प्रस्तुत किया जाता है जो दोनों में दृष्टिगोचर होते हैं, इस्लामी व भारतीय दोनों तत्त्वों एक मत हैं अथवा आपस में समानता रखते हैं, अथवा जो विश्वास, नियम सिद्धान्त, भजन आदि हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों अथवा हिन्दू साधकों, भक्तों तथा योगियों में पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में अबु रैहान मुहम्मद जिन बलबेकना अलबेकनी ने भी बहुत कुछ लिखा है। वह भारतवर्ष में बहुत समय तक रहा था तथा संस्कृत का बहुत बड़ा विद्वान् था। उसने हिन्दू धर्म का बहुत निकट से अध्ययन किया तत्पश्चात् उसने अपने ग्रन्थ में हिन्दुओं के विश्वासों को यूनानी दर्शन से तुलना की है। इसी प्रकार उसने हिन्दुओं के विश्वासों को मुसलमान सूफियों के कर्मों तथा कथनों से तुलना की है।

अलबेकना ने हिन्दू साधना तथा इस्लामी तत्त्वों में अनेक समानताओं को प्रदर्शित करते हुए विशेष रूप से आत्माओं के जावागमन का उल्लेख किया है। जावागमन के सिद्धान्त के अन्तर्गत आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है अथवा मानवात्मा मरणोपरान्त पुनः किसी भी यौनि में जन्म ले सकती है-

अलबेकनी का कथन है कि "सूफियों ने जावागमन का कुछ रूप हिन्दुओं से ग्रहण किया है। कुछ सूफियों का विश्वास है कि यह संसार एक स्वप्न है तथा जाग्रित जागरण है अतः ये लोग जावागमन की भी स्वीकार कर सकते हैं।" इसके साथ ही भारतीय रहस्यवाद एवं आध्यात्मिकता के अन्तर्गत आत्मा तथा परमात्मा को एक मानते हुए अद्वैतवाद को स्थापना की गई है, कुछ सूफियों भी इस मत को मानते हैं जैसे एक

सुफ़ी अबु यज़ीद विस्तारो से प्रश्न किया गया - "क्या पाया तथा किससे पाया ?"

उन्होंने उत्तर दिया - "मैं अपने नफ़्स् से इस तरह बाहर निकल आया जिस तरह साँप केंवली से बाहर निकल आता है, फिर भी अपने आफ़सी देता तो पाया कि मैं कुछ बचो हूँ जो वह है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण विश्वास जिसने इस्लामो तख़्मूफ़ में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया "जावागमन" है अर्थात् आत्मा (इह) का एक शरीर से दूसरे शरीर में जन्म लेना तथा बारंबार जन्म लेना, कुछ लोगों ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि सुकुल (एक आत्मा का दूसरे शरीर में जाना) तथा बह्द तुलवूद (एकेश्वरवाद) वास्तव में एक ही है।

अल्बैरूनी के इस मत का समर्थन यूरोप के बनेक विद्वानों जैसे हाटने, ब्रौशेट, मासोनोन, गौल्डज़ीहर, तथा फ़ाउन व वींश्लीखरी आदि ने भी किया।

गौल्डज़ीहर का विचार है कि प्रसिद्ध सुफ़ी इब्राहीम बिन अल्लहम ने बादशाहत व इम्पारत (ऐश्वर्य) का जोक की त्याग करके एक "फ़ज़ीर" का जीवन धारण कर लिया था एकदम महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन से उद्धृत प्रतीत है। संसार के त्याग का जो रूप बुद्ध में उपलब्ध होता है वही यहाँ भी दिखाई देता है।

किन्तु वास्तविकता तो यह है कि अल्बैरूनी ने पाँचवीं सदी ख़िज़ी में भारत की यात्रा की थी, उस समय एक तख़्मूफ़ का कौई स्थायी

स्वयं निर्मित नहीं हुआ था, न ही उसका कोई विशिष्ट नामकरण हुआ था। भारत में वैदिकान्त दशने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा उधमें व हस्तामी तसञ्जुक्त में कुछ एक समानताएं भी हैं किन्तु ग्रीकोर फ्राउन के अनुसार ये समानताएं केवल काल्पनिक एवं छद्म हैं, जिनकी किसी भी प्रकार के आधार अथवा नांव नहीं माना जा सकता क्योंकि हस्तामी तसञ्जुक्त पर भारतीय दशने का प्रभाव प्रदर्शित करने के पूर्व उनके लिए ठीक आधार आवश्यक है, इसके हेतु यह प्रमाणित करना आवश्यक है कि भारतवर्ष में हस्तामी के उदय के समय अथवा उसी पूर्व अरब वाशियाँ पर कुछ ऐसे प्रभाव डाले हैं जो वहाँ के धर्म पर भी पड़े हैं तथा तसञ्जुक्त के रूप में भी प्रकट हुए हैं।

विश्व इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि सर्वप्रथम भारतवर्ष अरब व ईरान के सम्बन्ध में शताब्दी ईस्वी में प्रारम्भ हुए थे, किन्तु पहिले ईरान व अरब पर इन सम्बन्धों का कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। धर्म के क्षेत्र में भी देखा जा सकता है कि मुहम्मद साहब के फाखर बनने के पूर्व अरबवासी मूर्तिपूजा करते थे, किन्तु उन के देवी-देवता किसी भी रूप में हिन्दू देवी-देवताओं के समानता नहीं रखते, न उनके नाम मिलते हैं, न रूप, न पूजा की विधि, यहाँ तक कि अरब में लाना-काबा की डोड़कर मूर्ति मूर्तियों के लिए भी प्रकार के मन्दिरों का उल्लेख नहीं मिलता है। वास्तव में प्रभाव तो यह होता है जो स्पष्ट दृष्टिगोचर है तथा शताब्दियों तक चलता रहे, इसका प्रज्वलन्त उदाहरण भारत-नेपाल तथा भारत-मालिश हैं-- नेपाल-मालिश में हिन्दू धर्म के प्रभाव इस बात से प्रमाणित होते हैं कि इन देशों के देवी-देवताओं के नाम वही हैं जो भारत में हैं।

वास्तव में यह संदेह है कि भारतीय दर्शन का प्रभाव इस्लामी सुफीमत पर पड़ा, इस कारण उत्पन्न होता है कि सुफियों का मत-ए-वहदत वजूद वेदान्त दर्शन से मिलता-जुलता है, वेदान्त का अनुवाद अरबी भाषा में उपलब्ध नहीं होता, तब अरबों उसी जिस प्रकार परिचित हो सकते थे। अलीदा-तीहोद वजूदी को सबसे पहले दार्शनिक रूप में मुहिउद्दीन अरबी ने पाँचवीं शताब्दी छिड़ी रिवाज दिया, वे स्पेन के रहने वाले थे और उनकी कमी भी हिन्दू दर्शन से सम्पर्क हुआ था।

हो सकता है यह संदेह इसलिए उत्पन्न हुआ हो कि तीसरी शताब्दी छिड़ी के अन्त में "वहदत वजूद" का विचार मुसलमानों में हुसैन बिन मंसूर के कारण उत्पन्न हो जाँकि उस समय भारत आया था। किन्तु इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह जिस वहदत-वजूद का दावेदार दार वह वास्तविक मुसलमान सुफियों का वहदत वजूद नहीं बल्कि वह "हलूल" अर्थात् हिन्दू अवतारवाद का समर्थक था। किन्तु फिर भी यदि हुसैन बिन मंसूर के समय से वहदत वजूद तथा वेदान्त की कल्पना का मिलान मान भी लिया जाये तब भी वेदान्त की तसव्वुफ का मूल प्रेरणा स्रोत नहीं माना जा सकता इसलिए कि तसव्वुफ हुसैन बिन मंसूर से बहुत पहले इस्लामी भी देशों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुका था।

तृतीय दृष्टिकोण

कुछ लोग नव अकलातुनवाद (Neo Platonism) को तसव्वुफ का मूल बताते हैं। नव अकलातुनवाद एक वाक्यात्मक दर्शन है जिसका सर्वप्रथम प्रवर्तक अकलातुन (Plato) था, किन्तु उसका यह दर्शन उसके शिष्यों स्पेसिपपस (Spensippus) तथा जेनोडोटिय

✓

(Xenocrates) के परचातु समाप्त हो गया था । नव अफलातुनवाद बहुत समय परचातु फ़लातंबोस (Flatabombos) ने स्थापित किया, वह इस्कन्दरिया (Alexandria) भिक्षु का निवास था तथा उसका जीवनकाल सन् २०४ ईसवी से सन् २०० ईसवी तक है। नव अफलातुनवाद में अफलातून तथा फ़लाता गोरस के दृष्टिकोणों को भिन्न दिया गया है। साथ ही साथ इसमें पूर्व का अवतारवादी दृष्टिकोण भी सम्मिलित हो गया है। इस दर्शन का धार यह है कि मानव की दृष्टि के रचयिता अर्थात् ब्रह्म या हुदा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके उसी से संयुक्त हो जाना चाहिये। मानव में एक ऐसी योग्यता निहित है जिसके द्वारा वह अपनी प्रयोगात्मक विधाओं से निकलकर परम सत्य ब्रह्म को आत्मविस्मृतिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है तथा अपनी व्यक्तित्व की "फ़लाता" (नष्ट) करके उस निरसीम व्यक्तित्व (परमात्मा) से संयुक्त हो सकता है। इस दर्शन के त्रिकोणों के निकट ब्रह्म एक प्रकार से सुफ़ियाना-त्रिकोण (Mystical Trinity) को रेखित करता है।

इस दर्शन के अन्तर्गत आत्मा की स्थायी स्थान प्राप्त है, न तो वह उत्पन्न होता है तथा न नष्ट होता है वह परमात्मा द्वारा प्रकट होता है तथा उसी में विलीन हो जाता है। दृष्टि का भी कोई अस्तित्व नहीं है, वह परमात्मा में ही दिखी हुई थी, उसी तथा मान-वात्मा द्वारा प्रकट हुई तथा एक दिन फिर उसी में जा दिखेगी।

इसमें संदेह नहीं कि सुफ़ियाना-इस्लाम के विरवाद-तौहीद तथा उसकी कुछ समस्याएं नव अफलातुनवाद से प्रभावित दृष्टिकोणों पर होती हैं। इन दोनों के तत्सम्बन्ध के अंतर्गत दृष्टिकोण में यदि कुछ अन्तर है

कि नव अफलातूनवादो मानता है कि हर स्थान पर है और कहीं भी नहीं है या है भी और नहीं भी है जबकि इस्लामी तसव्वुफ में वह हर स्थान पर विद्यमान है तथा यह किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता "वह कहीं नहीं है।"

यह सब ठीक किन्तु तसव्वुफ अपने बाविमाँव के लिए नव अफलातूनवाद के लिए जामाती नहीं है। मुसलमान सर्वप्रथम यूनानी दर्शन से ख़लीफ़ा मामून्-रशीद के युग में अवगत हुए, यूनानी दर्शन मुसलमानों में तीसरी शताब्दी हिज़्री में आया, किन्तु इसके बहुत पहले अस्तित्व में जा चुका था अतः नव अफलातूनवाद को तसव्वुफ का मूल मानना एकदम अनुचित है। हाँ, इसके द्वारा बाद में तसव्वुफ को उन्नति अवश्य हुई।

चतुर्थ दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण के अनुसार स्वयं सुफ़ी साधक तसव्वुफ की पूर्णरूपेण इस्लामी शरआतों से निःसृत मानते हैं। इस सम्बन्ध में सुफ़ियों के विश्वासों, विचारों तथा बाध्यात्मिक कार्यों को "क़ुरबान शरीफ़" की जायतों तथा रसूल की ख़ीरों द्वारा प्रमाणित (सिद्ध) करने की चेष्टा को ग़र्ह है।

फ़ैज़र इस्लाम ने ज़ाहिरी तालीम (बाह्य शिक्षा) के साथ एक बालिनी तालीम (आन्तरिक शिक्षा) को कुछ विशिष्ट लोगों को दी थी तथा वही तसव्वुफ का निबोड़ या सार था। उदाहरणार्थ - निम्नलिखित क़ुरबान शरीफ़ की जायतें इस दावे के प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत की जाती हैं-

“तद्वद भिनत्ताहु बलात्माभिनीना अब्ब वावसा
 फ़ि होम रसूलन भिन अब्बुसिहिम् तैल्लोस्मि
 वत्तिवत् व युक्केत्तिन् व युक्किम्मल्लुक्कितावा
 वत्तहिक्कमतह ० ।”^१

(यहाँ “किताब” है “बाह्य शिक्षा” तथा
 “लिप्त” है “जांतरिक” बाह्य लिया जाता है,
 इन दोनों को भिन्न-भिन्न स्थानों (कक्षाओं)
 में रखा जाता है।)

“हुदा मै हमानन्दारों पर कड़ा रखवान किया कि उन्हें जो
 काम का एक रसूल मैजा जो उन्हें हुदा की बायात पढ़-पढ़
 के सुनाता है और उनका तज़वियः (शुद्धि) और उन्हें किताब-
 व-हिक्मत (बुद्धिमत्ता) को तात्तोम(शिक्षा) देता है।”

इसी प्रकार-

“कद अक़लह मन बक़हा व तद् ज़ावा मन वस्ताहा । ०”^२

“जिसने इह (जात्मा) को पाकीज़र रखा उसने फ़लस्वित
 (मौदा) पाव और जिसने उसको दबाया वह नुस्तान में रहा।”

इस बायत से ज़ान्तरिक शुद्धि तथा जात्मा की पवित्रता का जीवित्य
 पैदा किया गया है ।

१- सूरत बाल खमरान (२)

२- सूरत शम्स

“ अलमतारा व जन अल्लाहु सख्तर
 लकुम् माफगीरसमावाते वलु अर्दे वासु
 अलेकुम् नैमहु ज़ाहिरतन व बातिनतन० । ”^३

“ क्या तुम लोगों ने इस पर गौर नहीं किया जो कुछ
 बासमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है वह सब तुम्हारा तावा
 (जमीन) कर दिया है और तुम पर अपनी ज़ाहिरो (बाह्य) व बातिनी
 (जान्तरिक) नैमते (अच्छी वस्तुएं) तमाम कर दी हैं । ”

इस जायत है यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि फ़ैज़ुल
 मुहम्मद शाह का मन्तव्य बाह्य व जान्तरिक दोनों नैमतों को पूर्णता
 था । ज़ाहिरो (बाह्य) को “शरीअत” और बातिना (जान्तरिक) को
 “तरोक़त” से अभिहित किया जाता है अर्थात् रसूल का कार्यदाईला था ।

स्वैस्वरवाप के विश्वास को सिद्ध करने के लिए क़ुरआन शरीफ़
 की निम्नलिखित जायते उद्धृत की जाती हैं-

१- “ हुवल अब्वल वलु ज़ाहिरो वल ज़ाहिरे वलु बातिन० । ”^३

वही अब्वल (प्रथम है, वही ज़ाहिरे (बन्तितम) वही ज़ाहिरे वही
 बातिन है । ”

२- “ फायन्मा ती तवाफ़सानी वजहु अल्लाह ० । ”^३

तुम ज़िगर भी एक करो उधर अल्लाह का मुंह है । ”

३- "हुवा माजकुम् रेना मा हुतुम् ०।" ^{-३}

हुवा तुम्हारे साथ है तुम जियर भी रहत करी ।

४- "वत्ताहु नूकस्सनावाते वत्तुम् ०।" ^{-३}

वत्ताह बाधमानों और जमानों का नु है ।

फेमर साहब है रस्तान की तारीफ़ पड़ी गई तो उन्होंने कहा - रस्तान की हकीकत यह है कि इबादत इस तरह करी है तुम हुवा की देखते हो और आर तुम नहीं देखते तो यह तो तुम्हें देखता ही है।"

सुफ़ियों की प्रकृति में तसब्बुफ़ का गुण विद्यमान था अतः अपने आप प्रकट हुआ । उसके अधिकतर कर्म तथा विश्वास ज़ातिस इस्तामी है। यह इस्तामी तसब्बुफ़ सबसे ज़ला था , इसमें सादगी थी, इसमें किसी प्रकार भितावट नहीं थी, इस तसब्बुफ़ का मूल क़ुरबान शरीफ़ था , हदीसों ने इसे और सहज बनाया तथा यह यदि किसी की वाकफ़ भानता था तो यह है "मुहम्मद साहब का जीवन ।"

उपर्युक्त समस्त दृष्टिकोणों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तसब्बुफ़ की आत्मा अपने आप प्रकट हुई, इस्तामी शिदाओं ने उसे शरीर दिया तथा नव अफलातुम्माद एवं वैदान्त ने उस शरीर की ज़रूरत प्रदान किया और इस प्रकार उमैः उमैः तसब्बुफ़ का स्वल्प कुछ का कुछ होता जाता गया ।

१- सूः तौबह २-

(क) तत्त्वज्ञान का प्रचार एवं प्रसार करना तथा फ़ारस में

सुफ़ियों का आविर्भाव तथा तत्त्वज्ञान का प्रचार एवं प्रसार-

इस्लाम धर्म में कड़े से कड़े मन्तव्य से लेकर झौंटी से झौंटी समस्या का समाधान उपलब्ध है, स्वयं क़ुरआन शरीफ़ इस बात का दावेदार है कि उसमें हर वह वस्तु विद्यमान है जो मानव के लिए आवश्यक हो सकती है तथा एक अन्य स्थान पर इस सत्य को प्रकट किया है कि मानव को अपनी उद्देश्यों को पति के लिए संघर्ष करना परम आवश्यक है। क़ुरआन शरीफ़ की इन शिक्षाओं की रोशनी में जब हम मुहम्मद साहब की जीवनो पर दृष्टि डालते हैं तो हात होता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन क़ुरआन शरीफ़ की शिक्षाओं का सम्पूर्ण नमूना (आदर्श) था।

मुहम्मद साहब ने अपनी ग़रीबी और क़रीबी द्वारा यह अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया कि इस्लाम के अनुयायियों को अपना समय जीवन के बाह्य (जार्जि) व आन्तरिक (आन्तरिक) दोनों मार्गों में विभक्त कर देना पूर्ण मानवता की दस्तोत है।

सुफ़ियों में सवैयाग (तर्क-अल्लह), पैरान्य (तल्लह), तल्लोमता (इस्लामीयत) आन्त में इश्वर का भक्ति (इतिहास) आदि की जो कल्पनाएं बाद में प्रकट हुईं वह पैगम्बर साहब के समय से किसी एक तक मिन्य हैं कि सुफ़ियों की भक्ति के तारों के केवल बाह्य सम्बन्धों द्वारा प्रकट नहीं हुए हैं बल्कि अपनी वास्तविकता के आधार पर वे शुद्ध इस्लामी-आदर्श

(पवित्रार्थों, तपस्याओं) से निःसृत थे। इस मन्त्रिका से हमारा मतव्य है कि इस्लामी-शिद्दाओं में बादि से ही एक संतुष्टिपूर्ण बाध्यात्मिक उन्नति के लिए स्थान विद्यमान था। अतः यह कहना स्वयं गलत है, अप्रामाणिक है कि इस्लामी तत्त्वज्ञान में बाध्यात्मिक तरोके मुहम्मद साहब से पहले ही वर्ण बाद हुसैन बिन मंसूर बादि के कारण प्रचलित हुए।

यदि इस्लाम की शिद्दाओं का विश्लेषण किया जाय तो यह वास्तविकता प्रकट हो जायेगी कि इस्लाम मानव पर तीन प्रकार के कर्तव्य लागू करता है-

- १- ईश्वर के प्रति कर्तव्य
- २- अन्य जीवों के प्रति कर्तव्य तथा -
- ३- स्वयं अपने नफ़ास दुःख, सुखार एवं प्रशिक्षण के कर्तव्य

इन कर्तव्यों के पालन द्वारा एक ओर तो वह मानव को ईश्वर के निकट पहुँचता है तथा दूसरी ओर उसे इस बात का अवसर प्राप्त होता है कि वह संसार में एक कर्मठ व्यापकत्व तथा समाज में एक कर्तव्यपरायण व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत करे।

मुसलमानों की "इलहामी किताब" ने दृष्टि को रचना का उद्देश्य केवल "इबादत" बताया है। अतः मानव के लिए इबादत परमावश्यक है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मानव रात-दिन केवल तपस्या में ही लीन रहे, बल्कि उसके साथ ही साथ उसके अन्य कर्तव्य भी हैं जिनका करना उसके लिए आवश्यक है, उसका हर नैक कार्य उसको तपस्या की ओर अधिक मुक्त बना देता है।

इस्लाम ने स्पष्ट रूप से धौणणा की है कि दोन व दुनिया दो भिन्न वस्तुएं न होकर एक ही तस्वीर के दो रूख हैं तथा इंसान वही है जो दोनों हैसियतों से सम्पूर्ण हो। यही कारण है कि संन्यास के लिए इस्लाम में कोई स्थान नहीं है। सूफियों के वृत्तान्तों से इस बात की पुष्टि होती है। किन्तु बाद में कुछ ऐसे कारण उत्पन्न हो गये जिनमें "सूफिया-ए-इस्लाम" में हद से बढ़ा हुआ एकान्तवास, सांसारिक नेमतों का बहिष्कार तथा कर्मठता का अभाव के कारण वह रूप उत्पन्न हो गया कि वह संन्यास से भिन्नता-जुलता प्रतीत होते हुए भी इस्लामी तस्वूफ का गुण समझा जाने लगा जबकि इस बढ़ती हुई बाढ़ का स्रोत नबी मुहम्मद साहब के युग में ही था।

हज़रत मुहम्मद साहब से प्रभावित होने वाले लोगों में से अधिकतर ऐसे थे जो शरीअत के बाह्य रूप की पाबन्दी करते थे। किन्तु उसी समय में कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण ध्यान जीवन के आन्तरिक पहलू पर केन्द्रित कर दिया था, वे आवश्यकताओं की कमी, इबादतों की अधिकता तथा उपासना व एकान्तवास में एक असाधारण अतिशयोक्ति बरतने के आदी हो गए थे, अस्थाबे-सफ़्फाह का गिराह इस रूप में बहुत आगे बढ़ा हुआ था, अतः कहा जा सकता है कि यही गिराह इस्लाम में अनायास ही अमली-तस्वूफ के प्रारम्भ का कारण बना था। किन्तु यदि यह सत्य है तो उसी युग में "अस्थाबे-सफ़्फाह को "सूफी" कहकर क्यों नहीं संबोधित किया गया? इसका उत्तर शोधकर्ता यह दैते हैं कि उस युग में "सूफी" शब्द का निर्माण नहीं हुआ था तथा लोग अपनी क़ताबों (दरजात) के अनुसार दूसरे संप्रान्त नामों जैसे "महाजिरीन",

“बंसार”, तावेहन तथा “तवा अतावेहन” जदि से संशोधित किये जाते थे।

डा० निकल्सन के अनुसार “इस्लाम के प्रथम युग में जो सूफी थे उन पर ‘झांफे-इसाही’ तारों रहता था यहाँ तक कि ईश्वर के उस रूप की कल्पना मात्र है उनका काँपते रहना उनको पचचान था, इस फ़ा के वातावरण में ‘मुहब्बते-कुदा’ की भावनाएं तथा उनके ‘रहोम व करीम’ होने के विश्वास कुछ दबा हुआ रूप धारण किए हुए थे।”^१

“हज़रत हसन बसरी” की सुफ़ियों के गिराई का संप्रथम विशिष्ट व्यक्ति सम्झा जाता है, यद्यपि इसमें भी मतभेद है, डा० निकल्सन ने भी “हसन बसरी” की वास्तविक अर्थों में सूफी मानने से इंकार किया है।^२ साधारणतया यह विचार है कि हसन बसरी ने चौथे शताब्दी हज़रत अली से आन्तरिक ज्ञान (विद्या) (इल्म-बातिनी) प्राप्त किया था, किन्तु यह प्रमाणित नहीं होता, इसका कारण यह है कि हज़रत अली की मृत्यु के समय हसन बसरी की अवस्था केवल १९ वर्षों या तथा उनका प्रारम्भिक पाठन पौष्णक बसरा हुआ था। जो भी हौ हसन बसरी के विषय में कहा जाता है कि उन पर फ़ा की ऐसा दशा तारों रहती थी कि उनकी देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि जहन्नम को सम्पूर्ण अग्नि इनके लिए ही बनाई गई हो।

हेज़रत सुहाबुद्दीन सुहरवदी का कथन है कि सूफी शब्द मुहम्मद साहब की मृत्यु के दो सौ वर्षों बाद तक निर्मित अथवा प्रकट नहीं हुआ था, दलील यह कि “सुन्नत” जो ११२ हिज़्री में सम्पादित की गई इस शब्द से रिक्त है। किन्तु एक अन्य मत के अनुसार सूफी शब्द हसन बसरी के युग में

प्रचलित था। "अदब-उल-अरब" में भी इस मत को पुष्टि का गढ़ है। सुफी शब्द खान बखरी तथा सुफियान सूरी के कथनों में प्रयुक्त हुआ है। कुछ लोगों का कहना है कि यह शब्द तो इस्लाम के पूर्व भी अरब में प्रचलित था।

एक अन्य विद्वान् ने लिखा है कि लिखित के प्रथम वर्णों में मक्का तथा मदीना ४५-४५ निवासियों ने आपस में मित्रता की तथा मक्की को शिपाबाजों के प्रति पूर्ण आस्था का प्रण किया था वही वे लोग थे जिन्होंने स्वयं को अन्यायों से श्रेष्ठ बनाने के लिए "सूफी" का नाम अपनाया तथा बाद में "फकीर" शब्द की वृद्धि कर दी। इस सम्बन्ध में मुहम्मद साहब की एक हदीस भी वर्णित की जाती है जिसमें शब्द तसव्वुफ़ आया है, हदीस यह है-

“मَنْ سَمِعَا خَيْرًا بَعَثَ تَسَوُّفًا فَالْأَيُّمُّنِ بَلَا
رَحَابِصٍ كُتِبَ لَهُ بِمَنْزِلَةِ الْبَيْتِ ۝”

अर्थात् जो पहले तसव्वुफ़ की आवाज़ सुनकर आमोन नहीं कहता वह ज़ुदा के नज़दीक गाफ़िलों में लिखा जाता है।

फ़ैम्बर साहब के समय में तसव्वुफ़ या सूफी शब्द की विद्यमानता बहुत ही सीमित दायरे में मानी जाती है।

साधारणतया विद्वान् इस मत के समर्थक हैं कि सूफी शब्द सर्वप्रथम "बहु शक्तिम सूफी" के लिए प्रयुक्त हुआ। जिनकी मृत्यु १५० हिज्री में हुई। उन्होंने सुफियों के लिए रहस्ता में एक खानकाह बनवा दिया। कहा जाता है कि सुफियों पर हंसाहं यम का प्रभाव उसी समय है

पढ़ना प्रारम्भ हुआ जिसके आधार पर उन्हें ईसाई राहियों जैसा स्वामन्त-वास तथा ईश्वर प्रेम (इश्क-इताह) बहुत तीव्रता से प्रकट होने लगा । कुछ लोगों के अनुसार सर्वप्रथम यह उपाधि प्राप्त करने वाले 'जाहिर' बिन खान कूफा थे । अबु हाशिम तथा जाहिर दोनों कुर्ग दूसरी शताब्दी हिज्री में हुए हैं ।

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि मुसलमानों के विशिष्ट वर्गों में तपस्या व इबादत बहुत अधिक प्रचलित हो चुकी थी फिर सूफी शब्द इतनी देर में क्यों प्रकट हुआ ? इसके उत्तर में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सर्वप्रथम सूफी की उपाधि प्राप्त करनेवाले वाले अबु हाशिम हीं अथवा जाहिर, किन्तु दोनों निवासी 'कूफा' के ही थे । यह वह युग था जबकि सत्तातीन वनी उमैयाह इराक़ पर राज्य करते थे । उन्हें कुछ शासकों को अत्यधिक दुनियापरस्ती, मजस्बूकी, दोन फ़रामोशी तथा अत्याचारों की घटनाओं से इतिहास मरा पड़ा है। कूफा इराक़ का एक प्रसिद्ध स्थान और केन्द्र था । कूफा निवासी व आसपास के लोग वनी उमैयाह के इन तौर तरीकों से बहुत दुखी तथा क्रुद्ध थे । अतः ही सकता है कि उन लोगों में ईश्वर-भक्ति (तज्जुल्लाह) तथा वैराग्य (तर्क-बलाहक) की भावना शासकों के अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई हो तथा लगातार गृहयुद्धों व रक्तपात को देखते-देखते यह भावना इतनी सशक्त हो गई हो कि उस युग के लोगों की अपनी विशिष्टता बनाए रखने के लिए एक अलग नाम की आवश्यकता हुई हो और 'सूफी' शब्द का निर्माण हुआ हो, विशेष रूप से इसलिए और भी कि पिछले युग के संप्रान्त नाम जैसे 'बहलै-बैत', 'महजिरीन बरहाब' व तार्कैन आदि अपनी प्राचीन विशालता

से सरकार के बर्तावार्थों के कारण वंचित होते जा रहे थे। मजदूरी कुर्तों का बनावर, हत्या बादि की इ तहास सम्मत घटनाएं इस बात की और संकेत करती हैं कि कदाचित् शासकों के बर्तावार्थों से बचने के लिए ही सूफ़ी शब्द को धारण कर लिया गया हो। यह बात भी स्मरणीय है कि बनी उमैयाह के युग में तथा अब्बासी युग में तसब्बुफ़ ज़ूब फला फूला तथा शासकों की ओर से इसका कोई विरोध नहीं किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरी शताब्दी हिज्री के अन्त में तसब्बुफ़ ने एक विशिष्ट तथा वैष्ट मत का रूप धारण कर लिया।

इस युग के प्रसिद्ध सूफ़ियों में इब्राहीम बिन अयम दाऊद ताह, फ़क़्ख़र बिन अयाज़ बादि विशेष उल्लेखनीय हैं। महिलाओं में राबिया अलखदवियाह (मृत्यु १६० हि०) भी प्रसिद्ध सूफ़ी छुं हैं। उनके द्वारा

तसब्बुफ़ में बाशिक़ाना जोशों- मस्तों का एक विशिष्ट रूप उपलब्ध होता है। उनके मधनों में एक नया रूप, बेइस्तियारों तथा अजायारण शास्त्र का रूप दिताई देता है।

इब्राहीम बिन अयम का जीवन महात्मा गाँतम बुद्ध से बहुत समानता रखता है, वे बल्स के शासक थे उन्होंने शासन एवं सांसारिक मोह त्याग कर पौर तपस्या की।^१ उनका कथन था कि सच्चा त्याग उसी समा संभव है जबकि मानव अपने अस्तित्व को एकदम विस्मृत कर देव मनुष्य को ईश्वर को आशाओं का पोसन करना चाहिए तथा भाग्य के सहारे नहीं रहना चाहिए।^२

१- फ़रीदुद्दीन अचार : तज़किरतुल बीलिया, पृ० ५७

२- हुज्वरी : कश्फ़ुल मल्हूब, पृ० ८२-८४

क्रुज़ेल विन क्याज़ प्रारम्भ में एक दस्यु थे, किन्तु
 क्रुज़ेलन शरीफ़ की बायास ने उन को काया पलट कर दी, ठाकै ठालना
 समाप्त कर दिये । फिर वे सूफ़ी जीवन व्यतीत करने लगे तथा कुछ
 तकमक़ात में इमाम अबू हनीफ़ा के साथ रहे ।^१ क्रुज़ेल विन क्याज़ का कथन
 था कि जो व्यक्ति क्रुज़ा को इबादत मय तथा किसी लाभ हेतु करता है
 वह मानो स्वयं अपनी इबादत करता है, तपस्वी को तो क्रुज़ा की इबादत
 उसके वादेश का पालन हेतु करनी चाहिए ।

हज़रत राखिया जद विवाह बहुत बड़ी संयमो एवं तपस्वी
 थी वे बसरे की निवासी थीं । वे जुहद (संयम) में मुख्यतः (प्रेम) की
 भिलावट की समर्थक थीं । उनका हृदय शीफ़ी-क्रुज़ा से परिपूर्ण था, उनकी
 बांहें ज़ादे-जहन्नुम (नर्क-यातना) के मय से अपूर्ण रहती थे । उन्होंने एक
 नये मत की नींव डाली थी और वह है- जुदे-बलाही (क्रुज़ा के प्रति
 प्रेम) । राखिया का मत था कि क्रुज़ा से निःस्वार्थ प्रेम किया जावे ।

किसी ने राखिया से पूछा-

“क्या तुम क्रुज़ा से मुख्यतः करती हो ?”

उपर दिया-

“हां” ।

फिर पूछा

“क्या शैतान से नफ़रत करती हो ?”

उन्होंने कहा -

“क्रुज़ा की मुख्यतः से फ़ुर्घते हो जब भिलती है कि शैतान

सै नफरत की जाए ।^१

राधिया एक उच्चकौटि की शायरा भी थीं, उन्होंने ही सर्वप्रथम "सूफी साहित्य" की रचना करके उसका प्रारम्भ किया ।

राधिया बहुत ही स्वतन्त्र स्वभाव की थीं, कहा जाता है कि एक स्वप्न में उन्हें ख़ारत मुहम्मद ने पूछा- "राधिया ! क्या मुकद्दे मुख्यतः करती है ?

उन्होंने सादर उत्तर दिया-

"हे ख़ुदा के रसूल आपसे कौन मुख्यतः नहीं करता ? लेकिन अस्ताह की मुख्यतः मुक्त पर इस तरह ग़ालिब (प्रभावों) ही चुकी है कि किसी और की दोस्ती या दुश्मनी के लिए मेरे दिल में गुंजाइश बाक़ी नहीं ।"^२

तसव्वुफ़ में इस प्रकार के कथन की स्वतन्त्रता, जोश व मस्ती, तत्सोन्नता के आ जाने से अनेक महत्वपूर्ण परिणाम प्रकट हुए । अभी तक तो लौफ़े-कुदा के साथ-साथ हमान व पैगम्बर का तथा विश्वासों का अत्यधिक ज़्यादा व महत्व था कि मुख्यतः के बहाव में इस्लामी विश्वासों के विरुद्ध कुछ कथन करना तथा ख़ुदा को मुख्यतः व प्राप्ति के नज़ी में ख़ुदा के पैगम्बर के प्रति उदासीनता प्रकट कर देना भी सरल हो गया । यही वह भावना थी जिसने आगे चलकर "तसव्वुफ़" का द्वार बाह्य विश्वासों एवं विचारों को आवात के लिए खोल दिया । धीरे-धीरे तसव्वुफ़ शायरी की और बढ़ने लगा ।

यद्यपि दूसरी शताब्दी हिब्री के अन्त तक तत्त्वबुद्धि विशिष्ट रूप में फाँसना प्रारम्भ हो गया था किन्तु उस समय तक उसमें कोई विशेष विवेक्षापूर्ण तथा कलात्मकता उत्पन्न नहीं हुई थी न ही उसका कोई क्रमबद्ध ज्ञान का रूप धारण करने लगा। अब उसको विशेष परिभाषाएँ बनने लगीं तथा ज़िद् व इबादात (तपस्याएँ) के नवीन सिद्धान्त एवं नियम निर्मित हुए।

जून नून मिश्री वही युग के प्रसिद्ध सूफी साधक हुए। वे मिश्र के निवासी थे, उनकी मृत्यु २४५ हिज्री (सन् ८६० ई०) के लगभग हुई। उन्होंने तत्त्वबुद्धि में एक स्पष्ट नियमबद्धता उत्पन्न कर दी तथा बज्द और म आरिफ़त के दृष्टिकोण सम्मिलित किये। डा० निकटसन का विचार है कि मुसलमानों में नव अफ़लातूनवाद के विचार फाँसना उनका ही कार्य था, जो किसी सीमा तक उचित प्रतीत होता है। इसका कारण है कि जूननूत मिश्र के निवासी थे अतः संभव है कि दक्खिस्तान-इस्कन्दरिया का सिद्धार (जो कलतवाद से सम्बन्धित थे) उनके कियारों के निर्माण में सहायक रही हों। जून-नून सर्वप्रथम सूफी व्यक्ति हैं जिन्होंने "सूफी मत" या "सूफी मार्ग" का सम्पूर्ण व्यौरा प्रस्तुत करने का परसक प्रयत्न किया है। इनका वास्तविक नाम सुबान था, किन्तु वे बहुत ज़ोर जून नून धिन इब्राहीम मिश्री के नाम से सुफ़ियों में प्रसिद्ध हैं। मिश्रवासियों में जून नून की महत्ता की इनके जीवन में नहीं समझा तथा इन्हें नाना प्रकार की यातनाएँ दीं तथा इन पर अत्याचार किए। किन्तु इन्होंने कभी किसी का डरा नहीं चाहा। इनका कथन था विचारिफ़ा दिन-प्रतिदिन झुका के सामने अधिक से अधिक झुकता जाता जाता है इसलिए वह हर घड़ी झुका है निकट होता जाता है, मबारिफ़ात है उसके भीतर इज्ज़ा-लिख़्ब तथा इज्ज़ा-लिख़्ब है त़्ज़रब तथा त़्ज़रब है और

अधिक अव्यक्त उत्पन्न होती है और इस तरह वह आगे ही आगे बढ़ता जाता जाता । यदि कोई "हज्जी ख़िज़्म" तथा "ताफ़े-इताही" के बिना अव्यक्त का दावा करता है तो वह नाहित और झूठा है। "हैनका" एक अन्य कथन इस प्रकार है- "परती मैं सच्चाई सुदा को तस्वार है, जिस वस्तु पर यह पड़ती है उसे काट कर रख देती है। अतः सच्चाई वह वस्तु है जिसका सामना संसार की कोई शक्ति नहीं कर सकती और दुनिया की सबसे बड़ी सच्चाई सुदा को "ताहोद" और उसकी अव्यक्त है। जब यह आदमी के हृदय में प्रविष्ट हो जाती है तो दूसरा हर प्रेम, अन्य हर सम्बन्ध तथा सम्पूर्ण जीवधारियों के महत्व को काट-कर रख देती है तथा ऐसा व्यक्ति संसार से लापरवाह होकर सुदा की वन्दगी की राह पर जाता है।"³

अबु यज़ीद तैफ़ूर जिन इराह बुस्तामी के सम्बन्ध में जुनैद का कथन है कि अबुयज़ीद बुस्तामी हमारे (सुफ़ियों) के मध्य वही स्थान है जो फ़ारिशतों के मध्य "जिहराहले" का है। "अबु यज़ीद बुस्तामी" ने वन्दगी के मार्ग का प्रारम्भ (रियाज़त () तथा मुजाहद से किया है। वे जून नून मियो के सम आनयिक थे। इन्होंने सुदफ़रामोश (आत्म-विस्मृति) तथा फ़ाना के महाफल गढ़े। सुफ़ियाह-इस्ताम की नज़रिया-ए-वहदतुल-जुजुद से अवगत कराने में अबु यज़ीद बुस्तामी का नाम भी लिया जाता है। इनके कथनों में एक विशेष प्रकार की वाक्यात्मक कल्पना होती थी। इनका विचार था परमसत्ता के प्रति निस्वार्थ दृष्टि से बेपरवाह हो जाना, जन्मत भी दृष्टि के अन्तर्गत हो जाती है। प्रेम्हियों (मक्दतों) को सारी ज़िन्नी सबूब (सुदा) के सम्मान तथा उसकी आज्ञा का पालन है। उनके लिए सारी सुशियाँ और लज़तों (आनन्दों) का आदि व अन्त यही है।

बहुत काश्मिरी जुनेद बिन मुहम्मद बिन जुनेद बुगदादी की मृत्यु २९७ हिज्री में हुई। जुनेद बुगदादी का सुफियों तथा शरीयत व तरीकत में एक प्रमुख एवं विशिष्ट स्थान है। वे सुफियान सरो के शिष्य तथा शिरो सक्ती के भाजे व मुरीद हैं। स्वयं इनके पीर (गुरु) इन स्वयं अपने से भी महान् मानते थे। जुनेद ने भी मसालै-तसव्वुफ में ज़मकदता के साथ ही साथ सुसम्बद्धता पैदा की तथा तसव्वुफ में जो अभाव उत्पन्न हो गए थे उनकी यह कह कर दूर कर दिया कि शरीयत व तरीकत दो अलग मार्ग नहीं हैं बल्कि एक ही शिदा के दो रूप (रूप) हैं जो परस्पर एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि एक-दूसरे के पूरक एवं समर्थक हैं। जुनेद बुगदादी ने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि तसव्वुफ की शिदा उन्होंने ज़ाम नहीं की, उन्होंने उसे केवल विशिष्ट मुरीदों (बैतों) तक ही सीमित रखा। ये विशिष्ट मुरीद उनके भिन्न थे, जिनके चारु एवं बुद्धि पर उनकी पूर्ण विश्वास था।

तीसरी शताब्दी हिज्री में यद्यपि हुज्ज फ़ाना इस्माराक़ बका इतिहाद "जातै- रब" इत्यादि विभिन्न मार्ग की, किन्तु राक़ेया अदवियत ने हुज्जै इलाही (हर्षर प्रेम) की जो चिन्तारी अब से बहुत पहले सुलगाई थी वह अब भी सुलग रही थी तथा ठहठहठ करार अपना रंग अधिक तीव्र करती जा रही थी।

इस मार्ग की अली बिन मुफ़िक (मृत्यु २६५ हिज्री) ने एक नया जीवन प्रदान किया, उन्होंने हुज्जै-इलाही के मार्ग की ओर अधिक गहरा तथा तीव्र किया। उदाहरणार्थ अली बिन मुफ़िक का निम्न कथन द्रष्टव्य है-

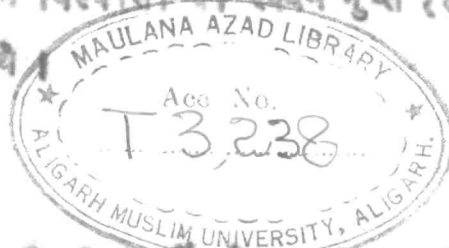
“ हे मेरे मौला !

अगर तू यह जानता है कि मैं तेरी इबादत, तेरे बनावे
हुए जहन्नम के खोफ है करता हूँ,
तो मुझे उसका इर्षन बना दे ।

अगर तू जानता है,
कि मैं तेरी इबादत तेरी बनावे हुए जन्नत को
तमाब (लौम) में करता हूँ तो
मुझे उसी यक्तर महकम कर दे ।
बौर !

अगर तू जानता है,
मेरी इबादत बिना तेरी शां-ए-दीवार में
है, तो,
फिर तेरा जी जी चाहे,
मेरे साथ खुलूक कर ॥ ”

इस युग के इतिहास में एक और व्यक्तित्व का
वर्णन भी आवश्यक है। यह है- अबु सलह हमदून जल कस्तार (मृत्यु
२७१ हि०)। यह एक नवीन मज़हब तसव्वुफ़ तथा एक नवीन तसव्वुफ़ के मार्ग
के जनक थे। इनके मार्ग की मलामोका अथवा मलामिह के नाम से याद किया
जाता है। इस जहल को मलामत अथवा मामाम से इसलिए संबोधित किया
जाता है कि इसके अनुयायी अपने विश्वासों को ख़ुदम गुप्त रखते थे तथा
किसी पर प्रकट नहीं होने देते थे।
बीथो सदी खिज़ी के ख़फ़ी-



तोख़री सदी खिज़ी में जल ख़फ़ी ग्रन्थों की रचनाएं

जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

- | | |
|----------------------|---|
| १- अब क़स्द इत्ताह- | जुनैद कुदादा |
| २- किताबुल-मुरीदेन - | याह्या बिन मुजाज़ राजा
(मु० २०६ हि०) |
| ३- किताबुल्लमाव- | शैब अबुल्लफ़ सिराज
(मु० ३७८ हि०) |
| ४- रिवातह फ़िशरिया- | अबदुल करीम बिन ख़ाज़ि फ़िशरी |

इसी युग में यूनानी , फ़ारसी तथा संस्कृत की पुस्तकों का बरबी में अनुवाद प्रारम्भ हुआ ।

इसी युग में तसव्वुफ़ के विभिन्न सिलसिले (सम्प्रदाय) स्थापित हुए जो बढ़ते बढ़ते सैकड़ों की संख्या तक पहुँच गए जिनका उत्तम अगले पृष्ठों में विषय जायेगा ।

चौथी शताब्दी हिज्री में तसव्वुफ़ के जन्मते अनेक नवीन सुफी व्यवित्तव, नवीन मार्ग, नवीन विश्वास उदित होते दृष्टिगोचर होते हैं तथा इस्लाम का वाध्यात्मिक जीवन प्रत्येक दृष्टिकोण से एक बिल्कुल नवीन युग में प्रविष्ट होता है तथा यह नवीन लहर किसी नगर तक सीमित नहीं, सम्पूर्ण इस्लामी शासित देशों में फैलती दिखाई देती है।

इस युग में अर्थात् तीसरी शताब्दी हिज्री के बिल्कुल अन्त में "शिरी" सक्ती " के मित्र कुदाद के तसव्वुफ़ को लेकर सम्पूर्ण इस्लामी देशों के कोने-कोने में फैल गये ।

मूसा बंसारी अलमुत्तफ़ी (३२० हि०) मरद से बुरासान में पहुँचे, अबु अली अहमद बिन मुहम्मद बरौज़गारी (३२२ हि०), फ़िस्तास से

मिर्ज़ा में पहुँचे, अबु यज़ीद अल-बादमी (३४९ हि०) जज़ीरतुल अरब में पहुँचे।

नेशापुर में अबु मुहम्मद बिन अब्दुल बहाब (३२८ हि०) ने तसव्वुफ़ का प्रचार एवं प्रसार किया।

बीसवीं शदी हिज्री के अन्तिम युग में शीराज़ में तसव्वुफ़ का एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गया तथा वहाँ वाध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा के महत्वपूर्ण स्कूल स्थापित हो गये थे जिन्होंने तसव्वुफ़ के प्रचार एवं प्रसार बहुत अधिक योगदान किया।

उधर बुग़दाद में निम्नलिखित प्रमुख सूफ़ियों ने तसव्वुफ़ को और अधिक महत्वपूर्ण बनाया-

१- अबु बकर रिज़ाली (मृ० ३३४ हि०)

२- अबु मुहम्मद अब्दुल्लाह (मृ० ३३८ हि०)

३- इमरत जुल्फी (मृ० ३४८ हि०)

ये प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने सूफ़ियों का इतिहास लिखा।

तीसरी तथा बीसवीं शदी हिज्री में तसव्वुफ़ का शैक्षिक एवं कलात्मक रूप में बहुत अधिक विकास हुआ, इस युग में न केवल सूफ़ियों के विभिन्न मज़हब तथा मार्ग (पंथ) उत्पन्न हुए बल्कि सैर सूफ़ी बहुत बड़ी संख्या में सामने आए।

इस युग को एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण विशेषता है कि तीसरी शताब्दी हिज्री के अन्त से सूफ़ियों ने संस्कृत होकर रचना प्रारम्भ कर दिया, उन्होंने अपने तरीके तथा फ़न के नियम भी बताए।

इसी युग में मुरीदों (केलों) की एक जमावत अपने शेर तथा मुशिदे (गुरु) के गिर्द हलका बांधकर बैठता था तथा मुशिदे इस प्रकार उनके मध्य में बैठकर उनका मार्ग-दर्शन करता था, वह उस समय तक उनकी शिक्षा देता था जब तक कि उसकी पूर्ण विश्वास नहीं हो जाता था कि मुरीद स्वर्गुण सम्पन्न हो गया है।

मुशिदे अपना पौर का काम केवल यह नहीं था कि वह ज्ञान के जमावों को दूर करे, इन जमावों से अधिक वह आचरण के जमावों, नफ़्स् की छुटियों तथा विचारों की दुबलताओं पर नज़र रक्ता था और उनका सुधार एवं शुद्धि करता था।

इस प्रकार जो शिक्षा मुशिदे, मुरीदों को देते थे वह अनेक विचारधाराओं के रूप में विभाजित थी जैसे-

१- तरीका -२- सक़रियाह -	शिरो सक़ती
२- तरीका -२- तैफ़ूरियाह-	जु यज़ीब तैफ़ूर जल् विस्तामी
३- तरीका -२- जुनेदियात-	जुनेद धादावी
४- तरीका -२- शिज़ाज़ियाह-	जु सरदे जल् शिज़ाज़
५- तरीका-२-नूरियात -	जु हसन जल् नूरी
६- तरीका-२-मलामतियाह अपना कस्सरियाह	हम्दून जल् कस्सार

वे लोग जो तसव्वुफ़ तथा ज़ान्तरिक ज्ञान (इल्म बातिन) के प्रति आकर्षित थे उपर्युक्त तरीकों में से किसी एक को अपना लेते थे तथा उसी को अपना उद्देश्य बना लेते थे।

सारांश यह है कि तीसरी चौथी शताब्दी हिजरी में इस्लाम का आध्यात्मिक जीवन ज्ञान तथा कला के क्षेत्र में अत्यधिक उच्चकोटि का

था। इस युग में ऐसे असंख्य सूफ़ी उत्पन्न हुए जो अपने व्यक्तित्व, कृतित्व प्रभाव के कारण इतिहास में अमर हैं, उन्होंने इस्लाम के आध्यात्मिक जीवन की अत्यधिक विवक्षित किया तथा इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार में पूर्णरूपेण सहायक हुए।

इस्लाम के धर्मशास्त्रियों (फ़िक़ह) तथा सूफ़ियों में संबंध

इस्लामी शरीअत दो रूपों में विभाजित है-

- १- बाह्य ज्ञान (इल्म-ए-ज़ाहिर)
- २- आन्तरिक ज्ञान (इल्म-ए-बातिन)

सूफ़ी स्वयं को अहल-ए-बातिन कहते हैं तथा फ़िक़ह (धर्म शास्त्रियों को अहल-ए-ज़ाहिर तथा अरबाब-ए-रसूम के नाम से संबोधित करते हैं। स्वयं का नाम उन्होंने अहल-ए-बातिन तथा अरबाब-ए-हक़्काएक़ रखा था।

सूफ़ियों के इस दृष्टिकोण को फ़िक़ह (संज्ञातन पंथियों) ने अपना अपमान समझा। अतः वे सूफ़ियों को क़ायमपूर्णा दृष्टि से देखने लगे तथा उन पर कुफ़्र का फ़तव़ा लगाने लगे।

फ़िक़ह ने देखा कि सूफ़ी अपने इल्हाम तथा वज्दान के नाम पर ऐसी बातें करते हैं जो शरीअत के आदेशों से टकरा जाती हैं, अपितु कभी-कभी तो कुरबानी-तालोम से भी टकराने लगती हैं तो उन्होंने सूफ़ियों के विरोध में कड़ा हथ धारण कर लिया।

इन दोनों का विरोध बढ़ता गया तथा दोनों- फ़िक़ह तथा तसब्बुफ़ के बीच की लड़ाई भी बढ़ती चली गई।

इन दोनों के संघर्षों का सच बड़े कटु व भयंकर युग वह है जो मंसूर हल्लाज के व्यक्तित्व के रूप में प्रकट हुआ, यह ऐसा युग तथा ऐसी दुर्घटना है जिसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता ।

हुसैन बिन मंसूर हल्लाज -

हुसैन बिन मंसूर जल्हल्लाज पैजा नगर में उत्पन्न हुए। पैजा फारस (इरान) का एक नगर है। मंसूर का जन्म २४४ हिजरी में हुआ। उनका शैशवकाल इराक के वास्ता नगर में व्यतीत हुआ। तदुपरान्त उन्होंने कुछ समय सुईत बिन अब्दुल्लाह के साथ बिताया और फिर कसरा में उसके भवनों के साथ सत्संग किया ।

२६४ हि० में बुगदाद जाए तथा कुतैब बुगदादी के हाथों में शरीक हो गए । मंसूर को घुमकड़ी का बहुत शौक था अतः उनकी अवस्था का एक बड़ा भाग घूमने-फिरने यात्रा करने में ही व्यतीत हुआ । उन्होंने अनेक देशों को यात्रा की, अपने जीवन में तीन बार मक्का गए तथा हर बार हज्र किया ।

वे स्वतंत्र स्वभाव के थे, जो बात हृदय पर जाती थी उसे ज़बान पर लाने में संकोच नहीं करते थे, अपने विश्वास व पन्थ में ज़रा भी सन्देह नहीं रखते थे, अपने विश्वास व पन्थ में ज़रा भी सन्देह नहीं रखते थे। वे न तो सातेदारों वरतते थे और न मस्तिहत । जिस बात को सत्य समझते थे उसकी घोषणा स्पष्ट रूप से करना अपना परम कर्तव्य समझते थे ।

२९७ हि० में इब्ने-दाऊद बल्-बल्कहानी जल् जाहिली के फ़तवों के कारण वे फल बार गिरफ्तार हुए । किन्तु ठीक एक वर्ष बाद

२९८ हि० में वे कारावास से भाग निकलने में सफल हो गए तथा हस्ताक्षर के एक स्थान सीस में गुप्त रूप से रहने लगे ।

३०१ हि० में वे दोबारा गिरफ्तार हुए तथा बाठ बर्षों तक लगातार कारावास को यात्राएं भौलते रहे । वे इस पूरे समय में झुंदाव के विभिन्न कारावासी में रहते गए कि कहीं फिर न भाग जाएं ।

३०९ हि० में उनके मुकदमे का अन्तिम न्याय हुआ कि उनकी "सजा-मात" दी जाए । इस तरह कि उनकी कोंड़े भारे जायें, उनके हाथ और पांव काट दिये जाएं, उनका शिर धड़ से अलग कर दिया जाये, उनके अंग बाग में फुलसा दिये जायें तथा उसके बाद उन्हें दण्डा नदी के पानी में बहा दिया जाये । इस आदेश का कोई भी विरोध न कर सका और उन्हें सूती पर चढ़ा दिया गया ।

हस्ताक्षर की जान इस जुर्म में ली गई कि वे "अन्तर्लक्ष" अर्थात् "में सुदा हूं" का नारा लगाते थे । इस वक्तव्य से उनका प्रयोजन यह था कि वे "इतिहास-मात-हस्ताक्षर" (ईश्वर में विलीन हो जाना) के समर्थक थे । अर्थात् स्वयं को ईश्वर में गुम कर के ब्रह्म (सुदा) का एक तत्त्व, एक हिस्सा बन गये थे ।

इसके अतिरिक्त मंसूर कहते थे कि एक कौह ऐसा कर्तव्य नहीं है कि जिसके लिए मानव मक्का बहर जाये, वह अपने स्थान पर हो रहकर "इहानी ख" कर सकता है । यदि मानव अपना इन्द्रिय निग्रह कर चुका है तो वह यह महसूस कर सकता है कि स्वयं "लाना-र-बाबा" उसके पास जा गया ।

मंसूर की हत्या के पश्चात् उनके विश्वास (असीद) पन्थ (मस्लक) और धर्म (मज़हब) के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के विचार विभिन्न लोगों ने प्रकट किये ।

एक वर्ग तो यह कहता है कि मंसूर काफ़िर एवं नास्तिक थे, किताब और सुन्नत को इन्होंने उनकी काफ़िर के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

एक अन्य वर्ग कहता है कि वे बड़े बलियो तथा महान् व्यक्ति थे, हुदा के यहाँ उनका बड़ा सम्मान था, वे बुद्धा के बहुत निम्न थे । उनके सम्बन्धित कथनों के केवल वास्तविक रूपों को लोगों ने देखा, उनके वास्तविक आन्तरिक रूप को उन्होंने समझने की वैष्टा नहीं की । यदि सम्भव है तो उनकी काफ़िर न कहते न छे उनके हत्या होती ।

दूसरे वर्ग के कथन के समर्थक जनेक महान् व्यक्ति हुए जिनमें प्रमुख हैं-

फ़ारसी के महान् एवं प्रसिद्ध शायर जलालुद्दीन रूमी तथा फ़रीदुद्दीन अक्षर- इन्होंने मंसूर को "शहीद-ए-एक" की उपाधि प्रदान की थी ।

मंसूर हस्ताक्षर ने तख़्तगुफ़ तथा अपने विशिष्ट विश्वासों के सम्बन्धित जनेक ग्रंथ लिखे जोकि संख्या ४७ कहे जाते हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

१- किताबुल अहरक मत् मुहदिशा वाला अलिमत-वाला इस्मह-
अलकुलियतह

- २- किताब उल उखल बलफरीब
- ३- किताब सरत्खालिम बल्माबुस
- ४- किताब उल अबल बलतीहोद
- ५- किताब इल्म उल बका बलफना
- ६- किताब मदह जलू नबी बल भिस्तखाता
- ७- किताब ही ही

उपर्युक्त किताबें मंशूर को महत्वपूर्ण रचनाएं हैं ।

छाँन जिन मंशूर इस्लाम का मुखल था - जात्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना । सुफियों के शब्दों में वे इंसान में अल्ताह के इत्तु के जायल थे । उनका यह अक़ोदह या विश्वास लिया विश्वासों से लिया गया था जिसके अनुसार इन्द्रिय निग्रह के उपरान्त जात्मा की शुद्धि हो जाती है और वह अन्तर्गतत्वा परमात्मा में मिल जाती है। इस सम्बन्ध में मंशूर के निम्नलिखित अवलार द्रष्टव्य हैं-

“ हम दो हैं,
जिन्होंने एक बदन को सूरत इस्तिवार कर ली है।
जब मैं उसे देखता हूँ,
वह मुझे देखता है ।

पर एक अन्य स्थान पर मशहूर अवार्त्तु लुदा की संबोधित करके मंशूर कहते हैं-

“ तू मेरी रंगी-ये, मैं और जारो वे क़त्व मैं सारो है,
जिस तरह,
जाँतू मेरी जाँतों से जारो हैं,
जमीर क़त्व मैं इस तरह हल हो गया है,

जिस तरह,

इस बदन में जुड़ ही जाती है।”

मंसूर बल्लाह इह-ए-महबूब तथा इह-ए-नक़्स याना इंसान और बल्लाह
को इह के मिलाप के समर्थक थे, प्रमाण के लिए निम्नलिखित क़ाबिल
देखिए-

“ए बल्लाह !

तेरी इह, मेरी इह में इस तरह समा गई है,

जिस तरह

शराब, जाव-ए-इंसान में

जब कहीं चोड़ । तुम्हें भिस होती है,

तो मुझे भी भिस होती है,

क्योंकि ।

तू और मैं, हर हाल में एक हैं।”

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मंसूर आत्मा और
परमात्मा का मिलन आवश्यक समझते थे ।

वे एक अत्यधिक उदार हृदय सुफ़ो थे- उनका विचार था कि
समस्त धर्म एक हैं तथा उनका मूलमूल “तुदा” है। इस संसार में तुदा की
मजो के बिना पता नहीं चला सकता, अतः प्रत्येक धर्म तुदा की ही
बनाया हुआ है, अतः वह सच्चा है और उसका विरोध नहीं करना
चाहिए ।

फ़ारुख मुहम्मद सादत के सम्बन्ध में उनका कथन था कि वे दो
क़र्षों में प्रकट होते हैं। एक तो वे अजर ज्योति (नूर-ए-बज़्जी) हैं,

जो कदा है हैं तथा उस ज्योति का कभी नाश नहीं हो जाता। यह नूर या ज्योति दृष्टि मिमांश से पूर्व ही सर्वत्र व्याप्त था ।

दूसरा रूप मुहम्मद साहब का नबी का है, यह रूप प्रथम है बिल्कुल मिन्न है ।

उपर्युक्त तथ्य ही मंसूर हल्लाब का मज़हब थी, उसका धर्म थी। जिनकी जाने जाने वाली सुफियॉ, शायकों तथा शायरों ने अपना लिया ।

मंसूर के इस दृष्टिकोण ने इस्लाम के व्याख्यात्मक जीवन पर गंभीर प्रभाव डाला । जो जाने जाकर भारत के मुहम्मद सुफो कवियों ने भी अपनाया ।

इनाम गिज़ाली -

पाँचवीं शताब्दी छिन्नो में अनेक महत्वपूर्ण एवं महान् व्यावसायिक तथा कुछ नवीन पंथ तत्त्वज्ञान के अस्तित्व में आये ।

पाँचवीं शताब्दी के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति अबु हासिम अल-गिज़ाली हुए । उनका जन्म ४५० हि० तथा मृत्यु ५०५ हि० में हुई। वे एक अत्यन्त प्रतिभावान् व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनके जीवन में भी अन्य लोगों पर पड़ा तथा उनके बाद जाने वाली नस्लों ने भी उनका प्रभाव ग्रहण किया । किन्तु कुछ धर्मशास्त्रों से भी वे जो उनसे पूजा करते थे तथा उनकी काफ़िर कहते थे ।

गिज़ाली ने तत्त्वज्ञान तथा अन्त एक रंग में रंग दिया तथा उसे 'मारिफ़त यकीनियह' का एक विशेष धायन बना दिया । पाँचवीं तथा छठी शताब्दी में तत्त्वज्ञान का जो प्रचार एवं प्रसार हुआ वह इनाम

गिज़ाली के प्रभाव एवं वैश्ट्याओं द्वारा छे संभव हो सका ।

इसमान गिज़ाली ने जो मार्ग या पंथ प्रस्तुत किया है- वह यह है कि-

“शक (संदेह) को तारोको (अंधकार) की यज़ीन (विश्वास) के नूर (ज्योति) से बदलना।” यह काम सुक्री को अपनी शायना द्वारा कर सकता है।

गिज़ाली को प्रमुख रक्तारं निम्नलिखित हैं-

- १- कल् मुन्क़दमम कल् ज़तात
- २- को भिया कल् सबादत
- ३- कल् रिवातल सुदन्वियह
- ४- अक्षिया उलूम अलदीन
- ५-

इन पुस्तकों को पढ़कर कोई भी व्यक्ति इसमान गिज़ाली की कल्पनाओं एवं दृष्टिकोणों से पूर्णतः अवगत होकर तत्सम्बन्ध के उन परधर्तों को जानने से हो कर सकता है, जिनके तत्त्व करने के बाद वे समस्त कठिनाइयाँ सरल हो जाती हैं जो इस मार्ग में बहुतों परेशान करती हैं तथा जिसका समाधान किये बिना मानव-यात्रा यदि जारी रहे, तो वह गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँचाती, बल्कि गुनराही का कारण बन जाती है।

इसी तथा सात्वतों द्वारा भी सुफ़ियों का विचार था कि “बल्ल-र-मुजाहिदात” अर्थात् सुक्री घटनाओं के घटित होने से पूर्व ही उन घटनाओं से अवगत हो जाते हैं तथा जान लेते हैं कि “परदा-र-नीज” से क्या प्रकट होने वाला है ?

उस युग के सुफ़ी इस्मातिया मूल्य है अपिक प्रभावित है ।
उस युग के प्रमुख सुफ़ी निम्नलिखित हैं-

१- शहाबुद्दीन सहरवर्दी -

बापका जन्म ६४४ हि० में हरराक के नगर सहरवर्द में हुआ ।
उनके गुरु का नाम हमाम मुहम्मदुद्दीन अब्जेली था । फिक्रहा उनके बहुत
विरोधी थे । सुल्तान शहाबुद्दीन अब्जेली तक उनकी शिकायत पहुंची,
फिक्रहा ने शहाबुद्दीन सहरवर्दी "शैख मक़सूद" के विरुद्ध "क़त्ल" का फ़तवा
दे दिया और वे सुल्तान शहाबुद्दीन के पुत्र अल्लाहि सुल्तान सल्त के
आदेशानुसार "क़त्ल" कर दबे दिये गए । उनको प्रमुख रचनाएं हैं-

- १- शिवमत उस हरराक
- २- शिवाक़्त अल नूर
- ३- मुहम्मद उस मुश्विह बादि ।

२- मुहिउद्दीन इब्ने -अरबी -

इब्ने -अरबी का जन्म ५६० हि० में मरियो में हुआ । उन्होंने
मिस्त्र , शिवाज तथा ऐलिया-ए-कौक के अनेक नगरों का भ्रमण किया तथा
अन्त में शाम देश में स्थायी रूप में रहने लगे तथा ६३८ हि० में दमिरक में
उनकी मृत्यु हुई ।

इब्ने-अरबी के मतलब तथा पंथ का केन्द्र-बिन्दु था - "वक़्त
उत बहू" का मख़ल्लत । इस पंथ में फिक्रहा को तब कि यह इस्लामी
शिक्षाओं के विरुद्ध है, उन्होंने इब्ने अरबी की पुस्तकों का बहुत विरोध
किया । मिस्त्र में ही इब्ने-अरबी की क़त्ल का आख्यान भी रचा गया ।

हमने बरबो को मृत्यु के उपरान्त- उनके विरोधी हमने नहीं थे जिसने उनके अन्धायो एवं समर्थक । किन्तु उनके विरोधियों में कुछ महत्वपूर्ण लोग थे । ३६-

- १- बल्लामा हमने तैम्निर (७८२६०)
- २- हमने-इल्दून (८०८ ६०)
- ३- बल्लामा हमने-छिन्न अल अज़लार (८५२६०)
- ४- हमने-अल अज़लार (८५८६०)

जो लोग हमने बरबो का सम्मान करते हैं, वे हैं-

- १- मुजदिद उद्दीन अल फीरोज़ाबादी
- २- इल्दुद्दीन अल हम्मी
- ३- सलाहउद्दीन अल सफ़दी
- ४- शहाबउद्दीन अल सहरवदी
- ५- अबु फ़ाज़रउद्दीन अलराज़ी
- ६- ज़ालउद्दीन अलख़ुतो आदि

हमने बरबो का ध्यान था कि -

“सक़ीक़त के स्तरार से ज़ालि (दुष्ट) और मज़हूक़ (जीव) में कोई फ़र्क़ नहीं है।”

इस युग में अन्य प्रमुख सक़ीक़ी हुए-

- १- उम यिन अल कारिज़ (५७६ - ६२२ ६०)
- २- अब्दुल स़द यिन सय्यन (६२२- ६६७ ६०)

आठवीं शताब्दी ध्वस्त होने परचात के तत्काल में एक विशेष बात यह उल्लेखनीय है कि आठवीं तथा नवीं शताब्दी ई० में कुछ नया पन सामने नहीं आता है, पीछे जाँ कुछ ही कुछ है, कहा जा चुका है तथा लिखा गया है उनको ही पुनरावृत्ति इस युग में मिलती है ।

आठवीं शताब्दी में निम्नलिखित सूफी हुए -

१- अब्दुल रज़्ज़ाक ज़ाहाद (७३९ ई०)

२- अब्दुल करीम अल फलीली (नवीं शताब्दी)

दसवीं शताब्दी में-

अब्दुल बशार सैरानी (८० ९७३ ई०)

११वीं व १२ वीं शताब्दी में-

अब्दुल गुनी ताब्लोली (८० ११४३ ई०)

उपर्युक्त सूफी विद्वानों में भी रचनाएं कीं किन्तु उनमें मौलिकता नहीं थी, वे हमने ज़रबी से बहुत अधिक प्रभावित थे । अतः उन की रचनाओं में स्वयं की रचनाओं में ज़रबी-जवाब की भाँति स्वयं भक्त स्पष्ट दृष्टिगत होती है ।

तत्काल के चार युग

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तत्काल के चार युग अथवा दौर हुए हैं जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

प्रथम युग-

हज़रत मुहम्मद साहब तथा आपकी सहाबा के युग में कुछ नस्लों तक महान् आत्माओं अथवा सूफी साधकों का ध्यान अधिकतर "शरीअत" तक

के बाह्य कर्मों की ओर हटा। इन कुतर्कों का "हासित-२-तद्व्युक्त" यह था कि वे नमाज़ें पढ़ते थे, जिन्न तथा छुआन शरीफ़ को ही लावत करते थे, रोज़े रखते थे, सदा तथा ज़कात देते थे और बिहाय करते थे। वे लोग शरीअत की जुदा का आवेक मानकर पूर्ण करते तथा तत्परचात् बान्तरिक रूप से सुख को अनुभूति करते। वे न तो धीच-विचार में लीन रहते थे और न ही उनमें है कौई बैहोश होता और न किसी को बन्द आता कि कपड़े फाड़ने लाता। न ही उनके मुख से शरब के विरुद्ध कभी कौई शब्द निस्सता। वे लोग "बाहिरत" (स्वर्ग) की कामना करते थे और "दोज़ा" (नरक) की भाग से परभीत रहते थे।

इस प्रथम युग में निम्नलिखित महात्मा स्वं सुनी शायक हुए-

१- फ़ारस एज़रत मुहम्मद शाह - इस्लाम धर्म के प्रचारक एवं प्रसारक

सहायक विराम में बहते-तरीक़त के पैशा - तुलकाह राशिदीन

१- एज़रत अबुलकर सिदीक (प्रथम खलीफ़ा)

२- एज़रत उमर फ़ातक (द्वितीय खलीफ़ा)

३- एज़रत उस्मान जुनुनीन (तृतीय खलीफ़ा)

४- एज़रत अली अल मुर्तिया (चतुर्थ खलीफ़ा)

बहल-२-बैत में बहते तरीक़त के पैशा^१

१- एज़रत हसन बिन अली

२- एज़रत हमाम सुलेन

३- एज़रत अबुल हसन अली ज़ैनुल्लाहिदीन (अली अज़गर)

४- इरत अबु जाफर मुहम्मद सादिक (इमाम जाफर)

५- इरत अबु मुहम्मद जाफर दिन मुहम्मद सादिक

वैश्या- २- सुफुफाह -

१- मुहम्मद मुस्तार शिताल

२- अबु अब्दुल्लाह सलमान फारसी

३- अबु उदैदह बाभि

४- अबु अलतफान बप्पार

५- अबु मसऊद अब्दुल्लाह

६- उत्था दिन मसऊद

७- भिकुदाद दिन अलमद

८- सुव्हाव दिन अरत

९- सुहैव दिन मन्नान

१०- उत्था दिन गुजवान

११- जैन -उल -सवाव

१२- अबु कव्वा

१३- अबुल मुतिदे किनानह

१४- सालिम मीला खीफा

१५- बकाहा दिन खीन

१६- मसऊद दिन रबी ज़ारी

१७- अबु ज़रबन्द

१८- अब्दुल्लाह दिन उमर

१९- सफ़वान दिन वैजा

२०- अबु दरदा अवीम

२१- अबु लयावह

२२- अब्दुल्लाह दिन मडर जुहनी

तावेजने में अस्ते-तरीकत के पैरवा

- १- उर्वेस पुरना
- २- हरम दिन हवान
- ३- अबु अली हसन बखरो
- ४- सफेद हसन अबु मस्यम

तब तावेजने में अस्ते-तरीकत के पैरवा

- १- हबीब अबु अजमी
- २- मालिक हसन दोना
- ३- अबु सलीम हबीब
- ४- अबु हाजम मदनी
- ५- मुहम्मद दिन वासि
- ६- अबु हनीफा नीमान
- ७- अब्दुल्लाह दिन मुबारक
- ८- अबु अली फरुख
- ९- अबुल फौज जुनुन
- १०- अबु हसनक हज्जाहीम दिन अयम
- ११- अशर हाफ़ी
- १२- अबु यज़ीद तैफ़र दिन हसेन बुतामी
- १३- अबु अब्दुल्लाह हारि
- १४- अबुल हसन धिरी
- १५- अबु अली शफ़ीक
- १६- अबु सुलेमान अब्दुल रहमान
- १७- अबुल मसूद माहफ़ा करी

- १८- अब्दुल रहमान हातिम
- १९- अबु अब्दुल्लाह
- २०- अबुल हसन अब्दुल
- २१- अबु शम्स अब्दुल
- २२- अबु प्रकरिया यक्ष्या
- २३- अबु शिफा
- २४- अबु शालिह हम्दुन
- २५- राबिया बहरी

द्वितीय युग-

एकदम पुनर्दृष्टिवादों के समय में तत्काल का एक नया रंग सामने आता है। हुआ यह कि आम वर्ग तो प्रथम युग की भाँति शरीरगत की पारम्परिक बर्तन हुए सुदा की शकावत करता रहा किन्तु^{अन} में है जो "विशिष्ट लोग" वे उन्होंने बड़ी-बड़ी रियाजतें (तपस्याएं) कीं, संसार की एकदम त्याग दिया तथा पूर्णरूपेण वे ज़िन्दा-फिक्र में लग गए। इसके परिणामस्वरूप उनमें एक विशिष्ट रूप उत्पन्न हो गया जिसका उद्देश्य था कि दुःख का सुदा ही सोया सम्पन्न हो जाए। अतः ये लोग इस उद्देश्य की प्राप्ति में लग गए।

ये लोग बहुत समय तक समाधिस्थ अवस्था (मराजवट) में रहते, समाधि सुन्ती, सरमस्तो व पैरुदी में बैठे होते जाते, कपड़े फाड़ते और नृत्य करते। ये लोग दूसरों के दुःखों की बात जान लेते। इन लोगों ने अपना सम्पन्न संसार ही तोड़कर वनों, फाड़ों व सहरा में शरण ली। पाष, पत्थी लाकर पीवन व्यतीत करते, गुदड़ी पहनते। ये लोग सुदा की मुस्कृत में यह सब करते थे, न कि स्वर्ग प्राप्ति के लोभ अपना नरक की जाग को भय है।

द्वितीय युग के सूफ़ी ये हैं-

- १- अबुल कासिम जुनैद बिन मुहम्मद बिन जुनैद झुवादी
- २- अबुल हसन अहमद
- ३- याह्या अबु मुहम्मद अब्दुल्लाह
- ४- अबु बकर मुहम्मद
- ५- अबु हमज़ह झुरासानी
- ६- अबु इब्राहिम इब्राहिम बिन अहमद झुवादी
- ७- अबु हमज़ह झुवादी
- ८- अबु मुहम्मद सुहेल
- ९- अबु अब्दुल्लाह मुहम्मद

तृतीय युग-

शैख अबु सईद बिन अबी अल शैर तथा शैख अबुल हसन झुरकानी के समय में तत्कालीन में एक और परिवर्तन हुआ। वह यह कि "अहल-अमात" में से आम लोग भी पिछले युग के आम सूफ़ियों की भाँति शरीअत का पालन करते रहे तथा विशेष लोगों नेवान्तरिक अस्वात व अवस्थाओं को अपनी साधना का केन्द्र-बिन्दु बनाया तथा जो उनके मौलिक विशेष एवं महत्त्वपूर्ण लोग थे उन्होंने "आमात-बी-अस्वात" से भी जाने जाकर "जुल" को बनाया, इसी जुल के कारण उनके सम्मुख "तवज्जुह" से सम्बन्ध का मार्ग खुल गया। इसी से उनके लिए सम्पूर्ण आवरण एह गढ़ तथा उन्होंने अपने नेत्रों से देख लिया कि वही एक "ज़ात" है जिस पर समस्त चीज़ों का अस्तित्व निर्भर करता है, अतः ये लोग उसी "ज़ात" में गुन हो गए, उसी के रंग में रंग गए। "तवज्जुह" के अतिरिक्त शैख जो सम्बन्ध हैं ये लोग "नूरानी" शिवाय समझते थे। इन सूफ़ियों का अस्त

मंतव्य यह था कि "जात-व-वस्ताही" में अपने "बुद्ध" को विलीन करके सम्पूर्णानन्द के प्राप्ति कर लें, अतः वे इस वाद-विवाद में नहीं पड़ते थे कि छुष्टि का परमात्मा है क्या सम्मान्य है ? इंसान बुद्ध को जात में कैसे विलीन होता है ? तथा फुना व बका के क्या सत्य हैं ?

इस युग के प्रमुख सूफ़ी निम्नलिखित हैं-

- १- शेख अबु सयदे बिन अमीर अल शीर
- २- शेख अबुल हसन तूरकानो
- ३- अबु बकर शिबली
- ४- इब्राहिम बुल्दी
- ५- हुसेन बिन मंसूर हत्ताय
- ६- इमाम गुज़ाली
- ७- शहाबुद्दीन अरबदी
- ८- अबु सयदे अहमद
- ९- अबु अली
- १०- अबुल अब्बास काश्मि

चतुर्थ युग-

अन्त में शेख अब्बास मुहाउद्दीन बिन अरबोख तथा उन्ही युग पहले का सम्म जाता है। इस युग में उन "अस्ते-ज्मात बुद्धों" के मस्तिष्कों में और भी अधिक व्यापकता उत्पन्न होती है तथा वे लोग कैफ़ियात व अस्मात को मंज़िल के जाने बढ़कर तत्त्वबुद्ध के सत्यों को जानने की चेष्टा करते हैं। इन्होंने इस तथ्य की खोज की परमात्मा अस्मा बुद्ध है बन्दे का वास्तविक सम्मान्य क्या है तथा बन्दे को बुद्ध के प्रति किस प्रकार

आत्मसमर्पण करना है ? इन्होंने "बहमत-उल-बख्श" को महत्व प्रदान किया । इन्होंने अरबी के परचातु अन्य अनेक सुफियों ने उनके पंथ का अनुसरण करते हुए ग्रन्थों का निर्माण किया किन्तु उनमें वही पुरानी बातें तथा इन्होंने अरबी के कवय्याओं की गूँज उपलब्ध होती है ।

इस युग के सुफी साधक थे -

- १- मुहम्मद न इब्न-अरबी
- २- मुजिबुद्दीन
- ३- इब्राहिम
- ४- सलाहउद्दीन
- ५- फारुज उद्दीन
- ६- जलाल उद्दीन
- ७- अब्दुल रज़्ज़ाज़

तथेव्युक्त है इन चारों युगों में जो मां "अहले-अहल कमात" महात्मा हुए। वे अपने वास्तविक स्वभावों में अलग-अलग दिशाएँ देते हैं किन्तु वास्तविकता में वे सब "एक" हैं ।

(ग) सुफी सिद्धान्त एवं तथ्य -

सुफी सिलसिले (सम्प्रदाय)-

तथेव्युक्त में सिलसिलों का प्रारम्भ तीसरी शताब्दी हिजरी से हो गया था, उस युग में विभिन्न सिलसिलों ने जन्म लिया जो बढ़ते-बढ़ते सैकड़ों की संख्या तक पहुँच गये । इन सभी सिलसिलों के मूल प्रीत

अथवा सुत्राचार फ़ैम्बर मुहम्मद साहब अथवा चारों ज़लीफ़ा - अबु बकर ,
उमर फ़ातक, उस्मान ग़नी अली में से कोई एक या फ़ैम्बर साहब के
किसी सहायों को ही पोषित किया जाता है। उन सिलसिलों के द्वारा
तख़्तगुज़र का प्रचार करके तथा फ़ारस में घर-घर ही गया ।

“क़रक़ुल - मख़्बूब” के रचयिता प्रसिद्ध सुफ़ी साधक शैख
अली हुज्वेरी ने निम्नलिखित प्रमुख सुफ़ी सिलसिलों का उल्लेख किया है-

१- मुहासिबी सिलसिला -

“सुफ़ियों” का यह सम्प्रदाय अबु अब्दुल्लाह हरिस बिन अब्द
मुहासिबी से सम्बन्धित है। मुहासिबी सिलसिले वाले “ज़ालिह तीहीद”
पर ज़ोर देते हैं तथा “रिज़ा” को कोई मुक़ाम या मरतबा नहीं मानते हैं
बल्कि उसे हासत या कैफ़ियत मानते हैं जो बन्दे पर तारी होती है।
“रिज़ा” की विशेषता यह है कि वह मानव को शर दुःख व शोक से मुक्त
करती है तथा “रिज़ा” इस विश्वास से उत्पन्न होती है कि “अल्लाह”
मानव को उसकी समस्त क़्वायों में देखने वाला तथा उसकी दशा से पूर्ण-
रूपेण अवगत है ।

२- क़स्बीरी सिलसिला -

क़स्बीरी सिलसिले का सम्बन्ध अबु सादत बिन हम्दुन बिन
अहमद बिन अमारतुल-क़स्बीर से माना जाता है। ज़का तरीक़ा “मलामत”
को प्रबल एवं प्रचारित करना था ।

३- तैफूरिया या तैफूरिया खिलखिला -

इस खिलखिले का अनु यज़ीद तैफूर ने बताया था। इस सम्प्रदाय के लोग मानते हैं कि अस्ताह के प्रेम में सायक बनना लोन हो जाए कि वह अवैतनावस्था को सोमाओं को होने लगे। तैफूरिया के निकट "सुकर" (बैहोश) का पड़ा "सख" अर्थात् होश को हासत से उच्च है, क्योंकि इस दशा में "बन्दा" बिल्कुल अपने बुद्धा से गुम होता है।

४- जुनेदी खिलखिला -

इस खिलखिले के पैतवा बहुत कासिम जुनेद बिन जुनेद बुदादी हैं। इस गिरौह के लोग तैफूरिया गिरौह के विपरीत "सख" अर्थात् होश अथवा चेतनावस्था को अधिक महत्व देते हैं। सुफियों के समस्त खिलखिलों में सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय "मजल्ल" जुनेदी खिलखिले का हो है।

५- नूरी खिलखिला -

इस खिलखिले का सम्बन्ध बहुत हसन अहमद बिन नूरी से है। नूरी का कथन है कि एकान्तवास से बची, क्योंकि एकान्त में शैतान से सम्पर्क होता है, अतः सायक को सत संगति करना चाहिए, इसलिए कि इससे बुद्धा प्रसन्न होता है। सायक को परीफरारी होना अविविचार्य है।

६- सुहेलिया खिलखिला -

इस गिरौह के पैतवा सुहेल बिन अब्दुल्लाह थे। ये लोग "शुबान शरीफ" को सब आयत की अपना मूलक मानते थे -

“बल्लू काहि फोना सनह्ने यन्नहुम सुकुलना”

अर्थात् जो लोग हमारी (बुद्धा की) राह में “मुजाहिद” (संघर्ष) करेंगे हम उनको अपना रास्ता जरूर दिखायेंगे।

अतः सुहेलिया सितसिते के सुफो “मुजाहिद” तथा “रियाजत” की महत्त्व देते हैं।

७- हकीमिया सितसिता-

इस सितसिते के प्रवर्तक अबु अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अली हकीम तिरमिजी हैं। इनका पंथ है कि अब्दुल्लाह के बोलिया का एक गिराह है जिसे वह समस्त जीवधारियों से प्रेष्ठ कहता है, ये बोलिया अपने नफ़स तथा “हच्चावों” को स्वयं कर लेते हैं और इनकी “हकीकत” का ज्ञान होता है तथा इनके द्वारा “करामत” (क़त्कार) का प्रकटीकरण भी करता है।

८- खुराजिया सितसिता-

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक अबु सय्ये खुराजि हैं। तख़वुक में “फ़ना” और “बेका” की परिभाषा की खुराजि ने ही जारी किया। खुराजिया का पन्थ है कि मानव इस जीवन और इस संसार की अस्थायी तथा “फ़ना (नष्ट)” ही जानेवाली वस्तुओं को जीवन का उद्देश्य बनाने के बजाय अने सम्पूर्ण ध्यान का केन्द्र “जल्लित” ही बनाये।

९- शफ़ीफ़िया सितसिता-

इस सितसिते के पैसा अबु अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन शफ़ीफ़

हैं। इफ़्तीफ़िया ने तस्वुफ़ को "नैबत और छुदा" को परिभाषा में व्यक्त किया है। इस पंथ का विचार है कि मानव नैबत खुदा के छुदा में रहकर ही प्रत्येक वस्तु से नायब हो पाये।

१०- श्यारिया सिलसिला -

इस गिरौह के सूफ़ी बहुत अक्सर श्यारी के अनुयायी हैं। श्यारी पंथ के अतिरिक्त तस्वुफ़ में कौद भी "मज़हब" या "पन्थ" अपनी जितनी हालत में नहीं बचा।

११ व १२ छुलिया सिलसिले -

छुलिया के दो गिरौह हैं-- एक गिरौह अबु हसमान दमिस्की का है तथा दूसरा फ़ारस की और सम्बन्धित माना जाता है। छुलिया बन्दे और खुदा को एक-दूसरे में विलीन हो जाने की महत्त्व देते हैं। इनके अनुसार बन्दे को परम परा नापछा वह है जो उसको वह खुदा में डुबाने दे पाये। यह वही बात है जिसको कौद "निवाण" कहते हैं।

सूफ़ियों की बहुत बड़ी संख्या छुलियों को "खुदा" के सेदायों (प्रेमियों) में शुमार करता है किन्तु सनातन इस्लाम पंथी सूफ़ी जैसे "फुजैरो" इन लोगों को काफ़िर (नास्तिक) और मरदूद कहते हैं तथा छुलियों को मुसलमान नहीं मानते हैं।

उपरोक्त सूफ़ी सिलसिलों का तस्वुफ़ तथा इस्लाम के प्रचार में एक बहुत बड़ा योगदान है। इन सिलसिलों के सूफ़ियों द्वारा इस्लाम में प्रेम की एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया जिससे उसके सिल प्रचार एवं प्रसार में सहायता मिली।

सुफी मत क्या तसवुफ के मताहत और राई-सुसू के खिाव-

१- बत्ताह की म्बारिफत -

सुदा की बन्दिगी धारण करने तथा उसके निकट पहुंचने के मार्ग में जो प्रथम वस्तु मानव के मार्ग में 'खिाव' (रुकावट) बनती है वह है मानव की सुदा से 'बदमे-म्बारिफत' (बनमिलता)। प्रकट है कि यदि मानव सुदा की जानैता ही नहीं तो उसके प्रय में सुदा की बन्दिगी, भवित तथा उसके समीप जाने का विचार ही उत्पन्न नहीं होगा। अतः यह बात अनिवार्य है कि मानव की सुदा का ज्ञान ही तथा उसका वह ज्ञान सहीर भी ही। इसलिये मानव के मोतर जितनी अधिक सुदा की म्बारिफत सहीर होगी, उतना ही उसका बस्त ठीक होता क्ता जायेगा और वह सुदा के सम्मुख उच्च स्थान धारण क्ता क्ता जायेगा।

म्बारिफत के दो रूप हैं- १- इल्मी २- शली

(१) इल्मी-

इल्मी म्बारिफत के अन्तर्गत सुदा के सम्बन्ध में मानव का ज्ञान सहीर ही। उसमें कोई छुटि न रह जाये।

(२) शली-

शली म्बारिफत इल्मी म्बारिफत से श्रेष्ठ है क्योंकि इसके अन्तर्गत बन्दे का शल (बस्तो ज़िन्दिगी), उसकी इल्मी म्बारिफत की प्रकट करने की सामर्थ्य रहती है।

हस्ती तथा हाथी मयारिफत अन्योन्याभित है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं। इन दोनों के द्वारा ही ज्ञान के परिष्कार प्राप्त किया जा सकता है, अतः छात्र के लिए "मयारिफत" आवश्यक है।

२- तीक्ष्ण का महत्त्व-

सुफियों के अनुसार ज्ञान की ठीक मयारिफत उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि उसका अङ्गोदर तीक्ष्ण पूर्ण न होगा। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि तीक्ष्ण का अर्थ है- स्मरणवाद। मानव उपास्य केवल एक ही ज्ञान है और और नहीं। अतः बन्दे को केवल एक ही "ज्ञान" को उपास्य करना तथा ज्ञान का और शरीर नहीं है।

परमात्मा से सम्बन्धित, सुफियों में आगे क़तर दो मान्यताएं ही हैं-

(१) बरदतुल बुरूद -

इस मान्यता के संस्थापक मुहम्मद इब्न अरबी थे। उन्होंने इस्लाम के ज्ञान तथा तसव्वुफ के परमात्मा की संगति के साथ ही बताया कि वास्तविक सत्ता के अतिरिक्त और और कुछ नहीं है, यह भी सुष्टि दृष्टिमान्य होता है वह परम सत्ता की अभिव्यक्ति है। अरबी के बरद-तुल बुरूद तथा भारतीय कौत्माद एक-दूसरे के बहुत निरुद्ध हैं।

(२) बरदतुलशुद्ध -

इस मान्यता की स्थापना इन्सानुल कामिल के प्रणीता अज्जुल करीम अल ज़ोली ने की। यहाँ यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि शुकी मत से सम्बन्धित किसी नई हिन्दी की समस्त रचनाओं में (रामकृष्ण तिवारी

की रचना सहित) उपर्युक्त सूफी साधक का नाम गूँतत लिखा गया है।
 रामकृष्ण जी ने इसका नाम "हैज़ करीम कीली" लिखा है।^१ बड़े दुःख का
 विषय है कि हिन्दुओं के अन्य लेखकों तथा शोधकर्ताओं ने इस छुट्टि का ज्यों
 का त्यों बना रहल दिया है तथा तनिक भी जागृतीन करने की चेष्टा
 नहीं की है। हिन्दुओं के विद्वानों की यह अनभिज्ञता अलम्य है।

अबदुल करीम अलजलीली का सिद्धान्त "वहदतुल्लुह" है,
 जलीली ने इस सिद्धान्त द्वारा ख़रत मुहम्मद साहब की इन्सानुत-कामिल
 सिद्ध किया तथा उन्होंने परमात्मा के सम्मुख छुष्टि के अन्य पदार्थों की
 नाप्य माना है।

सूफियों के अनुसार ख़रत मुहम्मद साहब अन्तिम रसूल हैं।
 किन्तु ख़रत मुहम्मद साहब इस छुष्टि के निर्माण से पूर्व भी विद्यमान थे
 तथा उन्होंने के "नूर" है इस "कायनात" (छुष्टि) की रचना की है। इस
 विश्वास की "नूरत मुहम्मदियह" अर्थात् "हकीकत-मुहम्मदियह" की संज्ञा
 दी है।

इन्ने अरबी तथा अबदुल करीम अल जलीली वहदतुल्लुह-वजुद तथा
 वहदतुल्लुह के सिद्धान्तों के प्रवर्तक होते हुए सनातन इस्लाम के "ताहीद" में
 पूर्ण विश्वास रखते हैं।

म्हारिफ़त तथा ताहीद के अतिरिक्त अन्य म्हाहल्ले-तसव्वुफ़
 निम्नलिखित पिनकी मानकर ही सूफी साधक जुदा की प्रशन्न कर सकता है-

- | | |
|---------|----------|
| १- इमान | २- तहारत |
| ३- तावा | ४- नमाज़ |

१- सूफी मत - साधना और साहित्य, पृ० २५५

- ५- ज़कात ६- रोज़ा
७- हज ८- शरीयत और आदाब

सुफ़ियों का इश्क (प्रेम तत्त्व)-

इस्लाम के प्रारम्भ में मुहम्मद और बन्दे के बीच जुलुस और झोंक-झुका के भावना के किन्तु धीरे-धीरे इसमें ऐशुक् भाव व झोंक की भावनाएं दूर होती गईं और उनका स्थान मुश्कत या इश्क ने ले लिया। स्वयं क़ुरआन शरीफ़ तथा हदीसों में मुश्कत की महत्ता का प्रतिपादन उपलब्ध होता है।

सुफ़ियों ने मुहम्मद की प्रति मुश्कत की चमत्तामा तक पहुँचा दिया क्योंकि वे मुश्कत या इश्क को एक ब्याह समझ मानते हैं, यत्कि वे तो स-पूर्ण दृष्टि का भूत कारण "प्रेम" की ही कहते हैं। सुफ़ियों के अनुसार मुहम्मद की प्राप्ति उसके "इश्क" में ही हो ही जा सकती है। हिन्दी सुफ़ी साहित्य में इसी तरह इश्क, जाशिक, माशुक, इश्क़े-इकीकी तथा इश्क़े-मजाजी आदि उल्लेख अधिक हैं।

तसव्वुफ़ की चार अवस्थाएं-

तसव्वुफ़ में सामक की चार अवस्थाएं ब्याह मूकामात माने गये हैं-

- १- शरीयत २- तरीक़त ३- मख़ारिफ़त और
४- इकीक़त

शरीयत-

इस्लाम में निर्मित धर्म सम्बन्धी नियम शरअ या शरीयत

कहलाते हैं। शरीरगत द्वारा ही सूफी साधक जुदा की इबादत करें। उसके अतिरिक्त निरुद्ध ही रहता है अन्यथा नहीं। इसके ही र शरीर के समस्त नियमों का पालन करना जरूरी है।

तरोक़त -

शरीर के आवेशों का पालन करते हुए साधक जब अच्छे दुर्ग को तमोज करने लगता है तथा स्वयं पर संयम करने लगता है, इन्द्रिय निग्रह करता है, नफ़स पर क़ाबू पा लेता है तो वह तरोक़त के दीप में प्रवेश पा जाता है जिसमें वह अपनी शुद्धि द्वारा जुदा की इबादत करती है। तरोक़त का मुक़ाम वह की पाकीज़ों का मुक़ाम होता है।

मबारिक़त -

जब साधक शरीर या शरीरगत और तरोक़त का मंथिलों से आगे बढ़ता है तो मबारिक़त का मुक़ाम आता है। मबारिक़त के द्वारा साधक और जुदा के बीच के सम्पूर्ण विज्ञान (व्यवधान, जावरण) दूर हो जाते हैं और साधक की 'क़रफ़ी- क़रामात' का भी ज्ञान हो जाता है और उसकी आत्मशक्ति इतनी सक्रिय हो जाती है कि वह गुप्त बातों की भी जान लेता है तथा नाना प्रकार के चमत्कार दिता सकता है। दूसरे शब्दों में मबारिक़त की सत्यानुभूतिजनित सिद्धावस्था कहा जा सकता है।

हकीक़त -

जुदा का वजूद ही हकीक़ी (वास्तविक) है। सुफ़ियों के अनुसार वास्तविक सत्ता की ज़ुलुस व ज्ञान की प्राप्ति ही 'हकीक़त' है। यही

सूक्तों साधक को साधना का अन्तिम मुकाम या मंजिल है। अतएवपैरी परम सदा की प्राप्ति को ही एकीकृत कहते हैं तथा उस एकीकृत का बोधार्थ ही सूक्तों की अन्तिम मंजिल है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीरगत, तरोक्त, अमारिफत को अवस्थाओं से गुजर कर सूक्तों साधक एकीकृत की प्राप्ति करता है, साधक परम सदा में लय हो जाता है।

फ़ना -

साधक और परमसदा को यह ल्यावस्था ही फ़ना कहलाती है। फ़ना में मैं और तू को भावना तिरौछित हो जाती है और साधक स्वयं को ही परमसदा मानने लगता है। इसी मंजिल पर पहुँच कर मंथूर ने "अन्त-हृक्" (मैं हुआ हूँ) को धौणणा को धो जाँकि भारतीय सिद्ध योगियों के "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) का प्रयास है।

बका-

सूक्तों साधक फ़ना की मंजिल से भी संतुष्ट न हो सके, क्योंकि वे तौ अपने परमप्रिय (सुदा) के साथ स्वमेक होकर रहना चाहते थे न कि केवल उसमें लय होकर संतुष्ट हो लें। अतः उन्होंने उसी अन्तिम मंजिल या मुकाम "बका" को माना। बका के अर्थ हैं जीवन धारण करना अथवा उपस्थित रहना। ब्राह्मि का मत है -- साधक बका की अवस्था में ही "अन्त-हृक्" को धौणणा कर लेता है क्योंकि बका में ही साधक की यह "आत्मै-साक्षु" में विचरणा करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी साधक क्रमशः शरीरगत, तारीकत, मबारिकत की अवस्थाओं में गुजर कर फ़ाना की मोहल है हाँता हुआ ब्रह्म के मुकाम पर स्थिर हो जाता है। ये ही सूफी साधकों के वैद्वान्तिक वाचार हैं ।

सूफी मत का इरादा बयान पतन-

इलाफ़ते - बयान किया है मुग़ल है तसव्वुफ़ का उत्थान-काल प्रारम्भ हुआ था, अरब, ईरान तथा भारतवर्ष में तसव्वुफ़ का जो प्रचार एवं प्रसार प्राप्त हुआ और जिस तीव्रता से वह चारों ओर व्याप्त हो गया, उसकी कोई और मिसाल नहीं मिलती । तसव्वुफ़ के प्रचार एवं प्रचार में सूफी साधकों, पोरों-मुदोदों, सूफी छिलखिलों, सूफी मशायखों तथा छिद्वान्तों, सूफी अवस्थाओं आदि के साथ-साथ सूफी कवियों जैसे राय्या बख़री, इब्नुल फ़रोद, फ़रोदुद्दीन अख़ार, मौलाना अताउद्दीन इमो, इब्नुद्दीन तबरेज़ी, ऐज़ा सादो, हाफ़िज़ और ज़ामी आदि का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है ।

किन्तु अपने उत्थान की अभावस्था पर पहुँचने तक के बावजूद तसव्वुफ़ का पतन हो गया । उसके अनेक कारण थे जिनमें मुख्य निम्न-लिखित हैं-

अधिकतर सूफी छिलखिले अरब ज़मी की अपना मूल ज़ात मानते हैं, किन्तु फिर भी लिया सम्प्रदाय ने तसव्वुफ़ की लांछित किया क्योंकि सूफी पोरों-बोरों शरीरगत से विमुक्त हो गये ।

पीरों मुरीदों इतनी बढ़ी कि सायक खुदा को विस्मृत कर बैठे और पीर को ही सब कुछ समझने लगे ।

पीर के दैशावधान के परचातु उनके मजार को खाना-पाना से अधिक महत्व दिया जाने लगा ।

पीरों-मुरीदों सुफी तैसोब " को विस्मृत कर मुतपारस्ती छोड़ देने लगे ।

तखव्वुफ के प्रमुख सिद्धान्तों को त्याग कर सुफी उनके गीणों वर्यों जैसे सनाब, शैरी-शायरी, राग-रान्तियाँ, बज्ज, कपड़े फाड़ने, जात-विस्मृति, शास, नृत्य या रबब, तथा मीसीकी में डूब गये और उन्होंने परम सदा को भुला दिया ।

अतः उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए सनातन इस्लाम के अनुयायियों द्वारा इस प्रकार के तखव्वुफ का विरोध हुआ । शने: शने: शरीफ, तुर्को, सिख और बरब से तखव्वुफ का खोर समाप्त होने लगा ।

इस प्रकार जो शताब्दी इस्वी के १५ वीं शताब्दी इस्वी तक लगभग ८०० वर्षों तक तखव्वुफ एक फला फूला, किन्तु १५वीं शताब्दी इस्वी के परचातु उलका ऐसा पतन प्रारम्भ हुआ कि आज वह एक मूली पिछरी याद बनकर रह गया है। आज केवल तखव्वुफ का इतिहास मात्र ही रह गया है और कहीं भी कहीं सच्चा सुफी सायक दृष्टिगोचर नहीं होता ।

तृतीय अध्याय

भारतवर्ष में तसज्जुफ का प्रवेश, प्रचार तथा प्रसार

भारतवर्ष में लकड़बूत का प्रवेश, प्रचार तथा प्रसार

भारतवर्ष में मुसलमानों का आगमन -

भारतवर्ष तथा पारश्चात्य देशों, ऐशियाई देशों, ज़रब, फिलीस्तीन तथा मिस्र के मध्य व्यापारी-सम्बन्ध बहुत प्राचीन हैं। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि १०१५ ई०पू० में मिस्र के शासक सुलैमान के समय मिस्र तथा भारत के मध्य व्यापार होता था। यूनानी मालाभार तट से बहुत-सा सामान ले जाते थे। इसी प्रकार इसी की प्रथम, द्वितीय, तृतीय छठी शताब्दियों में विदेशियों से भारतवर्षवासियों का व्यापार होता था। इस्कन्दरिया में भारतीय व्यापारियों की एक बस्ती आकाश थी। यद्यपि भारत में सन् ४९१ ई० तक के समस्त सभी शासकों के सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनके द्वारा यह बात सिद्ध होती है कि प्राचीनकाल में भारतवर्ष का पारश्चात्य देशों से बड़े पैमाने पर व्यापार होता था।

रोमनों के समान फारसवासियों अथवा इरानियों ने भी भारतवर्ष से व्यापार करने में बड़े-बड़े कर मान लिया तथा छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य में इरानो व्यापार सुहरा नौशेर्वान के संरक्षण में अत्यधिक उन्नत रूप धारण कर गया। भारतीय ज्योतिषशास्त्र में 'तारक' शब्द का प्रयोग भारतवर्ष से इरान के सम्बन्धों तथा उसके विशाल रूप एवं प्रभाव की पुष्टि कहता है।

इसी प्रकार ज़रबाखियों ने भी पूर्व एवं पश्चिम के मध्य व्यापार में बहुत एन्जियूमेंट पाग लिया । उनके दौड़ों में अनेक व्यापार-केंद्र स्थापित थे । ज़रब के अतिरिक्त उनके "शहर" नगर मौजूद थे जो अपनी स्थिति के कारण फ़ारस की लाड़ी से क़ानैवाले अपना बाहर से प्रवेश करनेवाले कैदों का श्रम एवं स्थायी स्थान बन गया था । इन लोगों को बहुत सा सामान ज़रबों से प्राप्त होता था ।

वर्जिल (*Virgil*) का कथन है कि भारतीय तथा ज़रब कैदों ने अक्तीम (*Actium*) के स्थान पर क्ल्योपेट्रा तथा एन्टीनी के नेतृत्व में युद्ध किया ।

इसी प्रकार बम्बई के गज़ेटियर में फ़जलुल्लाह लफ़्फ़ुल्लाह फ़रीदी ने इस्लाम के आविर्भाव से पूर्व की ज़रब बस्तियों का चाल, कल्याण तथा सौपारस के स्थानों पर वर्णन किया है ।

सातवीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में इस्लाम के आविर्भाव हुआ तथा बहुत शीघ्र ही इस्लाम शान, इरान तथा अन्य देशों में फैल गया । मुसलमान घोर-घोर इन देशों पर अधिकार करते गये । परिणामस्वरूप उन्होंने व्यापार भी पूर्णरूपेण प्रभुत्व स्थापित कर लिया तथा उनके समुद्री जहाज़ हिन्द महासागर में तैरने लगे तथा वे भारतवर्ष के आस-पास पहुँच गये ।

ज़रबों के जहाज़ या लाल सागर (*Red Sea*) के तट से या फिर दक्षिणी तट से चलते तथा उनका उद्देश्य या तो हिन्दु नदी के मुह पर तथा तट-तट कर क़ायम की लाड़ी पर उतरना होता था अथवा मालाबार के तट पर ।

उस समय से भारतवर्ष में मुसलमानों का प्रभाव तीव्रता से बढ़ता गया। एक शताब्दी से अधिक समय तक मुसलमान मालाबार तट पर आबाद रहे। व्यापारी के रूप में उनका यहाँ बहुत सम्मान था, उनकी अपनी वस्ती बसाने, ज़मीनों प्राप्त करने, व स्वतंत्रतापूर्वक अपने धर्म का पालन करने की सुविधाएँ प्राप्त थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानों ने इस देश में वस्ती हो अपने धर्म का प्रचार (तब्लीग) करने की चेष्टाएँ अवश्य ही प्रारम्भ कर दी होंगी क्योंकि यह सर्वविदित सत्य है कि इस्लाम एक "तब्लीगी दीन" है तथा प्रत्येक मुसलमान अपने धर्म का प्रचारक है। निःसंदेह उन लोगों की सम्माननीय स्थिति प्राप्त थी। वे भारतवर्ष जाये किन्तु उन हस्तक्षेपों की भाँति नहीं जो अपने देशों से निष्कासित किये गये थे, अपितु ये मुसलमान नयी दीन के प्रचार के उत्साह तथा विजय प्राप्ति की कामना एवं उत्कंठा से परिपूर्ण थे। अभी शताब्दी हईवी की समाप्ति न हुई थी कि मुसलमान भारत के सम्पूर्ण परिष्को तट पर पाँत लगे थे।

डा० ताराचन्द के मतानुसार इन मुसलमानों ने अपने विभिन्न विश्वासों एवं तपस्या (इबादात) तथा अपने धर्म इस्लाम के प्रचार के उत्साह द्वारा हिन्दू जनता में हलका उत्पन्न कर दी थी।^१

उस युग में दक्षिणी भारत में विभिन्न भातों एवं धर्मों के मध्य बहुत संघर्ष हो रहा था, जिसके कारण क्षत्र वैध्वनी थी, क्योंकि हिन्दू धर्म ने छेड़ छप धारण करने के लिए बौद्ध एवं जैन धर्मों से संघर्षित था। राजनीतिक दृष्टि से भी ये एक अक्रान्तिपूर्ण युग था। स्वाभाविक रूप से

2- Influence of Islam on Indian Culture P 60

साधारण जनता परेशान थी तथा वह किसी भी चीज़ से जाने वाली नई मत बंधन विश्वास को स्वीकार करने की तैयारी थी। ऐसे अवसर पर उनके सामने इस्लाम एक सीधे-सादे रूप में स्मरता है जायस एवं प्रवातंत्रात्मक दृष्टिकोणों को लेकर प्रकट हुआ। इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा तथा नवीं शताब्दी ईस्वी में कैलनन-पैरमल वंश के अन्तिम शासक ने एक नया धर्म(धर्म) स्वीकार कर लिया। राजा के धर्म-परिवर्तन का प्रभाव स्वामाधिक रूप से उसके जनता पर भी पड़ा तथा अनेक लोगों ने इस्लाम धर्म को अपना लिया।

उस समय तक मुसलमानों ने भारतीय समाज में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था, वे "मौफिता" के नाम से संज्ञित किये जाते थे। "मौफिता" वादरसूक्त उपाधि थी।

दक्षिणी भारत के एक शासक "जैमौरिन" के संरक्षण में मुसलमानों ने बहुत प्राप्ति की। कहा जाता है कि एक व्यापारी उसी युग में, भारत आया तथा उसने दक्षिणी भारत में एक व्यापार-केन्द्र को स्थापित की, जो जाने कबकर कालोक्ट का ज्ञाज्ञो बन गया तथा उसके उधरा में कारियों ने जैमौरिन का साथ देकर जासपास के राजाजी के साथ युद्ध किया व विजय प्राप्त की।

बाद के जाने वाली शताब्दियों में इस्लाम भारत में तथा अन्य देशों में और भी उन्नति एवं प्राप्ति करता गया। इसके प्रमाण ऐतिहासिक यात्रियों के लेखों में उपलब्ध होते हैं जिनमें से मसऊदो, मार्कोपोलो तथा इब्न बतूता के लेख दृष्टव्य हैं।

उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मुसलमान बहुत कम पूर्व ही भारत के परिचयों तट पर आ गये थे तथा धीरे-धीरे उनकी संख्या, धन तथा शक्ति में वृद्धि होती गई। यदि यह कहा जाय कि सूरत मुहम्मद शाह धृत्यु के केवल कुछ परवात ही मुसलमान भारत आ गये तो कोई अत्युक्ति न होगी। उन मुसलमानों ने शीघ्र ही मालाबार के हिन्दू शासकों से अपना निबट का सम्बन्ध स्थापित कर लिया तथा उनकी अनेक सुविधाओं की प्राप्ति की।

पूर्वी तट पर भी अरबों का आगमन प्रारम्भ हो गया था। वे कांस्त की लाठी से लोते हुए चीन जाकर व्यापार किया करते थे। इस बात का प्रमाण अरबों की वे श्रृंखला हैं जो इस्लाम के आधिपत्य से पूर्व चीन के केंटन नगर में प्राप्त हुई हैं और जो आज भी वहाँ विद्यमान हैं।

पूर्वी तट पर मुसलमानों की प्रमुख बस्ती केवट्टनम में थी। इन लोगों के साथ उस समय के शासकों का बहुत अच्छा व्यवहार था, वे उनकी प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रदान करते थे। बारम्बार शताब्दी अरबों में मुसलमान जलम से लेकर मैसूर तक के पौत्रों में अच्छी तरह आबाद हो गये।

इस प्रकार अरबों शताब्दी अरबों के प्रारम्भ में सदायगी भारत में मुसलमान परिचयों तट पर तथा अरबों शताब्दी अरबों में वे पूर्वी तट पर अवस्थित सभी रूप में आबाद हो गये थे तथा बहुत ही कम समय में उन्होंने राजनीतिक तथा सामाजिक पौत्रों में बहुत प्रभाव उत्पन्न कर लिया था। एक ओर तो वे नेता, पंजी, प्रमुख सदस्य, राजदूत तथा मालगुजारी सुधारक

बादि फरों पर नियुक्त थे तथा दूसरी ओर उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में भूत निवासियों को मुसलमान बना लिया था, अपनी नाभिक शिक्षा का प्रचार किया, मस्जिदों का निर्माण किया तथा मक़बरें बनाने की जगहें बतकर उनके प्रचार केन्द्र बन गये ।

उत्तरी भारतवर्ष में हज़रत उमर (द्वितीय खलीफ़ा) के समय से ही मुसलमानों ने अपने पैर जमाने प्रारम्भ कर दिये थे । सातवीं शताब्दी ईस्वी में मुसलमानों ने हिन्द तथा बिलोचिस्तान पर अनेक दख़्खन किया गये तथा ज़मीनी मार्गों को खोजा गया ।

खलीफ़ा बलीद के युग में इराक के गवर्नर हज़्जाज ने भारत पर दख़्खन की योजना बनाई तथा मुहम्मद बिन कासिम (बालक) के नेतृत्व में एक सेना भेजी । मुहम्मद बिन कासिम ने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए हिन्द के हिन्दू शासकों को परास्त किया तथा हिंदू और इस्लामी शासन हो गया किन्तु अगली तीन शताब्दियों तक मुसलमान इस क्षेत्र से जाने न बढ़ सके। इस समय में उनका प्रभाव हिन्द, मुल्तान, काठियावाड़, गुजरात तथा कनकान तक फैला, बढ़ि हुई । ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी में मुसलमानों को जाने बढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ तथा केरल, सीमनाथ, मड़ोच, कम्पात, सिन्दान तथा बात बादि नगरों में छोटी-छोटी मुस्लिम बस्तियां बस गईं । उन्हीं से लगभग हर एक की अपनी मस्जिद थी । अधिकतर हिन्दू शासकों ने भूत मानों का हाथों से खींच लिया, उनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। इस बात का समर्थन सुलेमान, मसूदी, इब्ने-हज़ीज़, तथा अबुल-बादि प्रसिद्ध ऐतिहासिक साधन करते हैं । १

१. Elliot: V.I

Reinard of. Cit. Vol II p26

सूफ़ी साधकों का भारत में आगमन

महमूद गज़नी के आक्रमण से पूर्व ही पश्चिमी भारत में मुसलमान एक प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर चुके थे तथा वे अपने प्रभाव के द्वारा जनता में इस्लाम का प्रचार करते थे। ज. के इस उद्देश्य की पूर्ति में स्वयं हिन्दू शासकों ने पूर्ण सहयोग देकर उनका उत्साह स्वर्धन किया। मुहम्मद ने जो शिक्षायत व दिशानिर्देश निकाले हैं उन्हे हिन्दू शासकों तथा मुसलमान व्यापारियों के पारस्परिक सम्बन्धों पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है, वह कहता है-

“यह सम्बन्ध (Khambat) के हिन्दुओं ने मुसलमान व्यापारियों पर आक्रमण किया तो खिखराव (सन् १०९४ - ११४३ ई०) ने सम्पूर्ण घटना को अच्छी तरह हाननीय की। आक्रमणकारियों को दण्ड दिया तथा एक नई मस्जिद बनाने के लिए मुसलमानों को धन दिया।”

कुछ हिन्दू राजाओं ने मुस्लिम सैनिकों को अपनी सेना में स्थान दिया था। उदाहरणार्थ सौमनाथ के शासक के यहाँ जनेक मुस्लिम अधिकारी थे।

इन उदाहरणों से हिन्दू तथा मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ-साथ हिन्दू राजाओं की ऊँचाई का स्पष्ट परिचायक मिलता है।

जिस-जिस वीर इस्लामी सैनिकों को मरुतो मरु तथा जहाँ-जहाँ मुस्लिम व्यापारी आबाद होते गये वहाँ बोलिया-किराम भी जाते गये।

2- *Ibid* Vol. II Ibid Vol. II P 164
Reinard Sp. Lit. Vol. 126

नवीं शताब्दी ईस्वी में एक दरवेश इज्जत अबु शिफास रवी
 किन साहब का बसवा जलसरो सिन्ध ७९० पवार और यहाँ पर स्वर्ग-
 वासी हुए ।^२

दशवीं शताब्दी ईस्वी में मन्सूरतहाज समुद्री मार्ग से भारत
 पवार तथा जमीनी मार्ग से उज्जरी भारत तथा तुर्किस्तान होते हुए वापिस
 गये ।^२

ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी में बाबा रैहान दरवेशों को एक टोली
 के साथ हुदाद से मड़ों पवार । उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि
 उन्होंने बल के राजा के पुत्र को मुसलमान बनाया था ।^३

उसी समय के बासपास (सन् १०६७) कोहरों को शिया टोली
 के पैदा यमन से आकर गुजरात में आबाद हो गये थे ।^४

मुरादीन अथवा मुर सतार (१०९७० से ११४३ ई० तक) कुम्बियाँ
 (kumbis) खारबो (kharabis) तथा कोरियो (koris)
 को इस्लाम धर्म में दीक्षित किया ।^५

-
- २- Massignon : Kitab Al Tawasin . Introduction P.V.
 २- Campbell : Gazetteer of Gujrat, Surat and
 Bharoch P558 and note.
 ३- Forbes O.P. Vol I P344
 ४- Arnold : Preaching of Islam : Chapter on India
 ५- R.A. Nicholson

महमूद गज़नी के आक्रमणों के पश्चात् अनेक मुस्लिम उलैमा विद्वान तथा कुलानि दीन (धर्मात्मा) भारतवर्ष प्यारे । उन सबकी एक ससंपूर्ण सूची सम्पादित करना तो एकदम असम्भव है किन्तु उन्हीं से कुछ महत्वपूर्ण हस्तियाँ (व्यक्तियाँ) का उल्लेख निम्नलिखित है-

सन् १००५ ई० शेख इस्माइल साहौर आये, वे बहुत अधिक योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे । उनकी वक्तवताओं के बलीभूत होकर अनेक लोग मुसलमान बन गये ।

तत्पश्चात् सन् १०३६ ई० में बहुवर्षीय एवं सुप्रसिद्ध सूफी साधक तथा धर्म प्रचारक ख़रत अली बिन उस्मान अल- बुज्जिरी का आगमन साहौर में हुआ । वे गज़ना के निवासी थे, उन्होंने सूफियों से सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ "क़फ़ुल-महजुब" की रचना की जिसमें तख़्ज़ुफ़ की सुन्दर विवेचना के साथ-साथ प्रसिद्ध सूफियों का उल्लेख किया गया है। अल-बुज्जिरी ने समस्त ईस्लामी देशों का प्रमण किया था, वे साहौर में स्थायी रूप से रहे लगे थे तथा वहीं पर उन्होंने (सन् ४६५ ई० अथवा ४६९ ई०) में इस मशहूर संसार से विदा ली । १

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शेख इस्माइल बुज्जारी भारत आये तथा उन्होंने इस्लाम धर्म का प्रचार किया ।

बारहवीं शताब्दी में ख़रत फ़रीदउद्दीन अख़ार भारत प्यारे। उन्होंने "मन्ति कुशीर" तथा "तज़निरुल्ल अलिया" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की ।

२. Nicholson: Kashful Mahjoub. Introduction

बहाउल लख, मल्लूम-ए-बहागिया जहमद कबीर आदि ने फंजाक में धर्म प्रचार का कार्य बहुत उत्साहपूर्वक किया। उधर काश्मीर में बुलबुलशाह ने धर्म प्रचार कार्य किया तथा वहाँ के राजा को मुसलमान बनाया। इराक से आये हुए शिया सुफ़ी शम्सुद्दीन के प्रभाव से अनेक काश्मीरी मुसलमान हो गये।

सन् ११९७ ई० में ख्वाजा मुहम्मदुद्दीन विशी भारत प्यारे तथा उन्होंने राजस्थान में अजमेर को अपना प्रचार केन्द्र बनाया। आपके प्रभाव में आकर सर्वप्रथम मुसलमान बननेवाला व्यक्ति वहाँ के राजा का गुरु एक योगी था। ख्वाजा मुहम्मदुद्दीन विशी का जन्म खोस्तान, अफगानिस्तान में हुआ था। ये भारतवर्ष में हिन्दू-मुसलमानों में समान रूप से मद्धा के पात्र हैं, सुफ़ियों में जितनी प्रसिद्धि इनकी प्राप्त हुई उतनी अन्य किसी की नहीं। ये एक अत्यन्त उच्चकोटि के साधक थे। इनका एक लोकप्रिय नाम ख्वाजा गरीब नवाज़ भी है। इनकी मृत्यु अजमेर सन् १२३४ ई० में हुई तथा वहाँ आपका मजार शरीफ़ है जहाँ आज भी प्रत्येक वर्ष उर्स होता है जिसमें देश-विदेश से लाखों की संख्या में लगभग सभी धर्मों के लोग शरीक होते हैं। इनके शिष्यों में ख्वाजा तुलबुद्दीन व फारोबुद्दीन शहरगंज उर्फ़ बाबा फ़रीद प्रसिद्ध सुफ़ी साधक हैं।

इसका जो चारहवीं व तेरवीं शताब्दी में सुफ़ी साधकों ने अत्यधिक उत्साह द्वारा धर्म प्रचार किया। परिणामस्वरूप इस्लाम धर्म सम्पूर्ण भारत में फैल गया तथा बहुत बड़ी संख्या में भारतवासियों मुसलमान हो गये तथा होने लगे।

इस लीग का कथन है कि इस्लाम का प्रचार तत्काल द्वारा हुआ किन्तु कम से कम भारतवर्ष में तो इस्लाम सुफ़ियों द्वारा प्रेम-

व्यवहार के कारण हुआ क्योंकि अधिकतर मुसलमान वाणिज्यकारियों ने भारत में लुटमार की और वापिस चले गये किन्तु उन्होंने तत्पश्चात् भारत किसी को मुसलमान नहीं बनाया । वास्तव में ये सूफी साधक ही थे जिनकी प्रभावशाली प्रेरणाओं ने भारतीय जनता को अपना ब्रह्मात्म बना लिया तदुपरान्त वे मुसलमान हो गये ।

तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में ख़रत शैख जलालुद्दीन तबरज़ी तथा ख़रत शताब्दीन सहरवदी बंगाल में पधारे तथा वहाँ इन लोगों ने इस्लाम का प्रचार-कार्य किया ।

सन् १२४४ ई० में शेख जलालुद्दीन बुहारो उ च्छ (भावल-पुर) में जाकर फ़रीद शहरगंज पाकपटन में जाकर बसे । जलाली शताब्दी (सन् १३०० ई० में) में अब्दुल करीमी जलाली ने भारत यात्रा की । उन्होंने हब्सुल-अरबी तथा तसव्वाफ़ के प्रसिद्ध रिसालह (पुस्तिका) इंसान-कामिल की रचना की ।

पूना तथा बेलगाँव में शेख मुहम्मद गैस दर्राज़ ने बहुत से लोगों को मुसलमान बनाया ।

पन्द्रहवीं शताब्दी ईस्वी में कुजाह सम्प्रदाय के प्रवर्तक पीर सदरुद्दीन, मौमनाह सम्प्रदाय के प्रवर्तक शेख युसुफ़ुद्दीन तथा पीराना के इम्मानशाह भी भारत में जाकर रहने लगे तथा धर्म प्रचार करने लगे।

१- १० सहरवदी- सिलसिला-ए-इश्राक़िया के जनक

अन्य उल्लेखनीय सूफ़ी वादिया (साधक) जो यात्रा बंधा निवास हेतु भारत जाये निम्नलिखित हैं-

- १- कैयद शाह भीर
- २- क़रत हैत अब्दुल क़ादिर जोतानी (बड़े पोर शाह, प्रसिद्ध खिलजिहा क़ादरिया)
- ३- कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी
- ४- बहाउद्दीन ज़क़रिया (जल मुत्तफ़ी १२६६ ई०)
- ५- जलालुद्दीन सुलैमानी (जल मुत्तफ़ी १२९९ ई०) मुस्तान १३०६ में रहते थे।
- ६- मुहम्मद ग़ौस (ज०मु० १५६२ ई०) जो हुमायूँ के गुरु थे।
- ७- शाहमदार (११वीं सदी ई०)
- ८- सती सरवर जैसे स्वतन्त्र क़समदार भी भारत जाये थे ।
- ९- पोर ख़मदायत (सन् १३०४ ई० में भारत जाये तथा उन्होंने जीजापुर के जैनिर्वा की मुसलमन बनाया)

यौदा सूफ़ी सन्त -

यौदा की चौदहवीं शताब्दी में यौदासूफ़ी सन्तों से सम्बन्धित अनेक किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। इन यौदा सन्तों में शिष्यसालार मसूद गाजी उर्फ़ गाजी मियां बहुत प्रसिद्ध हुए । उनका मक़बरा उज्जप्रदेश के ज़िला बहराच में है जोकि १४वीं शती ईस्वी से आज तक एक प्रसिद्ध लोकप्रिय स्थान है । सुलतान मुहम्मद बिन तुग़लक़ जबकि-जुलता के साथ सालार मसूद के मज़ार के दर्शन हेतु स्वयं गया था । उसके बाद अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने वहाँ की यात्रा की । सालार मसूद की साधारण जनतावाले मियां, बड़े पोर,

हटेली ()पीर बादि नामों से भी याद करती है। इन्होंने
अनेक युद्ध किये, विजय प्राप्त की तथा इस्लाम का प्रचार किया।

बंगाल के यौद्धा सन्त शैब जलाल, खिलजियासो का नाम भी
बहुत प्रसिद्ध है। शैब जलाल अथवा शाह जलाल एक अच्छे यौद्धा के साथ-साथ
सर्वगुण सम्पन्न साधक एवं तपस्वी थे। वे बहुत लोकप्रिय थे, न केवल मुसल-
मानों में अपितु हिन्दू तथा बौद्ध भी उनका बहुत सम्मान करते थे तथा उनके
प्रति बड़ा रक्त थे। उनके व्यक्तित्व के चमत्कार द्वारा अनेक लोगों ने
इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय सन्त ये हैं-

- १- शैब बदरुद्दीन अथवा पीर बद्री-२-आलम (चिटागॉंग, बिहार)
- २- शैब मदार अथवा शैब बदौउद्दीन (मकनपुर, कानपुर)
- ३- शैब बाबा रतन अथवा हाजी बाबा रतन (पंजाब)
- ४- अब्दुल्लाह चिंल (गुजरात)

(अन्तिम पाँचों संत इज़रत मुहम्मद साहब के सम्कालीन बड़े जाते हैं।)

उपरोक्त समस्त सुफी तपस्वियों, साधकों एवं संतों से सम्ब-
न्धित अनेक चमत्कारपूर्ण विविधान्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जो भी हों, पर यह
एक अटूट सत्य है कि ये लोग सुफी विश्वासों को लेकर आते तथा इन्होंने
इस्लाम धर्म का प्रचार किया। इन्होंने महात्माओं के अथक् परिश्रम, साधना
तथा श्रेष्ठताओं के द्वारा सम्पूर्ण भारत में इस्लाम का प्रसार बिना किसी
रक्तपात के ही किया। ये लोग सीधे-साधे, सरल स्वभाव के थे। जो मिल
जाता था लेते, उन्हें केवल तम ठुकराने के लिए पहनते, मानव जाति के प्रति

प्रेम, स्नेह, सहानुभूति व भयत्व रखते, सत्य तथा सदाचार को महत्व देते, अन्य धर्मों का विरोध न करते, सभी को अपना मित्र मानते थे। इन्हीं विशेषताओं के कारण वे लोग न केवल मुसलमानों की बल्कि हिन्दुओं, बौद्धों तथा जैनों को बड़ा के पात्र थे।

तीर ज्यों सताव्दी इसवी के प्रारम्भ होते होते- मुसलमानों ने उत्तरी भारत पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली तथा इस्लामो सेना ने हिन्दू से पंजाब तथा पंजाब से आसाम व काश्मीर से विन्ध्य तक सम्पूर्ण देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। ऐसा इस लिए सरलतापूर्वक संभव हो सका था कि भारत के हिन्दू राजाओं में वैमनस्य एवं शत्रुता थी, वे आपस में एक-दूसरे से युद्ध करते थे, बल्कि अनेक ऐसे राजा थे जिन्होंने स्वयं मुसलमानों के देश पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया था तथा उनसे सहायता भी की थी। परिणामस्वरूप राजपूत शासक अकस्मात ही चारों ओर से घिर कर परास्त हो गये। उन्हें आत्मरक्षार्थ तथा देश रक्षा के लिए अवसर प्राप्त नहीं हो सका। कहीं-कहीं पर मुसलमानों का विरोध किया गया। युद्ध हुआ। किन्तु न हीन के बरफ़ बराबर। देखते-देखते केवल एक ही वर्णों के मोतर हो भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य काश्मीर से लेकर मैथिल तक फैल गया।

मुसलमानों की विजय का प्रभाव भारत में प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा। चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक हो अथवा चाहे वह सांस्कृतिक हो। ऊपर से देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानों के आगमन से भारतीय हिन्दू संस्कृति का लगभग समाप्त हो गया। किन्तु वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है। वास्तव में जब दो धर्म तथा दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे के

संस्कृत उपस्थित होते हैं तो प्रारम्भ में उन्हें संघर्ष एवं टकराव होना अनिवार्य है किन्तु जब वे स्थायी रूप से एक-दूसरे के निकट आते हैं तो दोनों को एक-दूसरे की समझने का अवसर प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप दोनों पर एक-दूसरे का प्रभाव पड़ता है तथा एक मिली-जुली संस्कृति तथा समाज का निर्माण होता है तथा वे एक-दूसरे को शत्रु तथा शोषक न होकर मित्र तथा पौष्पाक बन जाते हैं ।

हिन्दू तथा मुसलमान एक-दूसरे के निकट आये तो उन्हें एक-दूसरे की समझने-बखाने के अवसर प्राप्त हुए- परिणामस्वरूप वहाँ से एक गंगा-जमना संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ, भावात्मक एवं रागात्मक स्वभाव का उन्मेषण हुआ। धर्म, संस्कृति, सिद्धा, साहित्य, ज्योतिष, विज्ञान, काव्य आदि सभी में आदान-प्रदान हुआ । हिन्दुओं ने फारसी तथा अरबी भाषा का अध्ययन किया तो हिन्दुओं से मुसलमानों ने हिन्दी तथा संस्कृत की सिद्धा ग्रहण की ।

उपर राजनीतिक क्षेत्र में अनेक हिन्दू-मुस्लिम शासकों की सेना में तथा अन्य महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हुए । यहाँ तक कि महमूद गज़नी जैसे हिन्दुओं का सबसे बड़ा शत्रु कहा जाता है, जो सेना में अनेक हिन्दू सैनिक थे जिन्होंने उसके लिए भारत से बाहर जाकर युद्ध किये । महमूद गज़नी के दरबार में फिरदौसी (शाहनामा) तथा बत्तैस्नी के साथ ही साथ, सुन्दर तथा विजयराम आदि हिन्दू विद्वानों की भी बाहर सम्मान एवं स्नेहपूर्वक उच्च पदों पर नियुक्त किया था। वह अनेक विद्वानों

2- Dr. Tarachand : Influence of Islam on Indian Culture p. 225

की प्रेरणा देना था कि वे हिन्दी में काव्य रचना करें जैसे मसऊद ने न
सलमान (दीवान-ए-हिन्दी १७००-१०८०) । जब तुलसीदास ऐक ने
भारत में रहकर राज्य करने की योजना बनाई तो उसे यहाँ के सिंहासियों
की अपने शासन में उच्च पदों पर नियुक्त करना पड़ा क्योंकि उसके बिना
उस का शासन उचित रूप से नहीं चल सकता था- हिन्दुओं के लिए निम्न
बनाते सम्यक् मुस्लिम शासक ब्राह्मणों से परामर्श करते थे । उनके लिए भवन
निर्माण में हिन्दू कारीगरों ने सहायता दिया- इसी प्रकार अन्य सभी क्षेत्रों
में मुसलमानों ने हिन्दुओं से सहायता ली तथा उन्होंने सांस्कृतिक सहायता एवं
सहायता प्रदान किया ।

जो मुसलमान भारत में आये उन्होंने भारत को अपना वतन
अपना देश बना लिया । हिन्दू तथा मुसलमानों ने एक-दूसरे के पड़ोसी होने
के नाते आपस में धनिष्ठता उत्पन्न की जिसके द्वारा एक नवीन भारतीय
संस्कृति का निर्माण हुआ जो न एकदम हिन्दू संस्कृति थी तथा जो न शुद्ध
इस्लामी । वास्तव में यह हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति थी, न केवल यह कि
मुसलमानों ने हिन्दू धर्म, कला, साहित्य तथा वैश्व ने मुस्लिम तत्त्वों को
आत्मसात् किया अपितु स्वयं हिन्दू संस्कृति को आत्मा में जो अपूर्व परि-
वर्तन आये तथा उन्होंने मुसलमानों से नैतिक प्रभाव ग्रहण किये । मुसलमानों
का प्रभाव भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा । यह आदान सम्पूर्ण
भारतवर्ष में हुआ । चौदहवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी भारत, बंगाल,
महाराष्ट्र, गुजरात, अजमेर, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश में धार्मिक नेताओं ने
प्राचीन मान्यताओं एवं मतों को सौच-विचार कर त्याग दिया तथा कुछ
पर विशेष जोर दिया । इस हिन्दू धर्म तथा इस्लाम धर्म में एकता
स्थापित करने की चेष्टा की । इसके साथ ही उस युग में हिन्दुओं ने मुसल-

मानों की अनेक विशेषताओं की ग्रहण करी अन्य विश्वासों को दूर करने का मरुतक प्रयत्न किया तथा मुसलमानों ने हिन्दुओं की अनेक विशेषताओं की ग्रहण किया। यहाँ तक कि कुछ तो ऐसे मुसलमानों लेखक व कवि हुए जिन्होंने देवों-देवताओं का अपने काव्य में यशोगान किया।

यह पारस्परिक सख्योग वास्तुक्ता, मित्रता, ज्योतिष, वैषक आदि के साथ ही साथ विशेष रूप से साहित्य के क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है। उस युग में संस्कृत का स्थान उधरी भारत में हिन्दो ने ले लिया था। उपर परिचय में मराठी तथा कंता में कंता साहित्यिक भाषाओं के रूप में उन्नति कर रही थी तथा हिन्दी, मराठी व कंता को इस प्राति में हिन्दू-मुसलमान दोनों ब्राह्मण के भागीदार थे। इसी युग से एक नई भाषा का निर्माण होता है-- मुसलमानों ने तुर्की तथा फ़ारसी का मोह-होड़कर हिन्दी भाषा को अपनाया तथा धीरे-धीरे उसमें कुछ परिवर्तन करके बरबी फ़ारसी और तुर्की शब्दों से युक्त यह साहित्यिक भाषा को अपनाया वही जाने चलकर "उर्दू" के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिसे हिन्दुओं ने हाथों हाथ लिया। उपर मुसलमानों ने हिन्दी में एक उत्कट साहित्य का निर्माण किया जिसे जाने चलकर "सूफी साहित्य" का नाम दिया गया। मुसलमानों ने हिन्दी की महती सेवा की है तथा उनका हिन्दी पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक शासन, लोधी शासन तथा भुल शासन में उधरीकर हिन्दू-मुस्लिम है नव भावना हुई होती गई, विशेष रूप से साहित्य के क्षेत्र में।

भारतवर्ष में सुफी फैल गये -

भारतवर्ष में सुफियान् अवन्तों को तरह आया, शास्त्रियों को तरह रक्षा और धर्मों को अपने वश में करने वमर रूप धारण कर गया और एक अलग राज्य होड़ गया ।

सुफियान्-किराम के फ़ैसाम की नारवाहियों से अधिक ग्रामवासियों ने तथा उच्च जाति वालों से अधिक निम्न जाति ने ध्यान-पूर्वक सुना और स्वीकार किया । इसका कारण यह था कि-

“उन लोगों के लिए, जिनमें दरिद्र, भौरे, बासेटक, जुलाहे और निम्न वर्गों के कृषक थे, ‘हस्ताम’ एक अवतार था जो उनके लिए आकाश से उतरा था, वह शासक वर्ग का धर्म था, उसके प्रचारक धर्मार्थी थे, सुफी सन्त थे, जिन्होंने तीक्ष्ण (सकेश्वरवाद) और मत्तावत (समाजवाद) का शुभ संदेश ऐसी जाति को सुनाया जिसकी उच्च जातियों के लोग हीन और पददलित समझते थे, अतः उन लोगों ने स्वयं जागे बढ़कर सत्ता हस्ताम धर्म स्वीकार कर लिया ।”²

सुफियों की संगति, आदेश, शिक्षा-दीक्षा और कर्मों द्वारा कक्षाधारण एवं विशिष्टवर्गों को एक नवीन शिक्षा, एक नवीन जीवन की प्राप्ति छु । सुफियों की कृपा एवं परीपकार का दायरा किसी एक वर्ग अथवा जाति के लिए विशिष्ट नहीं था और न ही उनकी दया का दायरा सीमित था अपितु इतना व्यापक था कि उसमें हर एक के लिए गुंजाहश थी । आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा आचरण सम्बन्धी

सुधार का जो सुफियों को ध्यान आता तो वे समस्त मानवों को सुत-सम्पन्नता, वैभव तथा वैद्वत्ता की तलवारें सोचते थे। उनका पूर्ण आनंद था, रंग, नस्ल, जाति-पाँति तथा उच्च-नीच को भावनाओं से वे परे थे। वे इस्लामी महावात (समानता का आदर्श या समाजवाद) के समर्थक थे।

सुफियों ने अपने कर्णों द्वारा, अपने कर्णों द्वारा तथा अपने चरित्रों द्वारा भारतवर्ष के रहस्यवालों के सम्मुख एक "उच्च एवं गैष्ठ जीवन" का उन्मेषादि का आदर्श प्रस्तुत किया। जीवन का प्रत्येक विमल, चाहे धर्म ही, साहित्य ही, चाहे राजनीति ही, ने सुफियों के प्रभावों को ग्रहण किया और इस प्रकार भारत में काश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक तख्तबुजा और इस्लाम पहुँच गये।

सितखिलों (सम्प्रदायों) का संगठन -

खिलों का प्रारम्भिक शताब्दियों में इस्लाम धर्म के महा-त्माओं को "लोक - ए-कुदा" रहता था, वे इस भाषाओं मशर संसार को विषय वासनाओं से दूर रहने के लिए अधिकतर यात्राएँ किया करते थे। एक मगर से दूसरे मगर, एक देश से दूसरे देश, उनका जाना-बाना बना रहता था। उनके सच्चाप्री भी होती थी। इस प्रकार उनको एक "जमाअत" बन जाया करता था और महात्मा को पीर या मुहिद कहा जाता था तथा उनकी अनुयायियों या पैतों को मुरीद। ये जमाअतें (मंडलियाँ) आगे चलकर "सित-खिलों" के नाम से प्रसिद्ध हुईं। भारतवर्ष में भी ये सितखिलें प्रचलित हुए। उनका विवरण प्रस्तुत करने से पूर्व पीर व मुहिद और मुरीद के सम्बन्ध में कुछ बातें बताना आवश्यक है-

पीर-

प्रत्येक राह करने वाले को एक पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है, मार्ग बिना पथ प्रदर्शक के तय करना दुष्कर है, अतः "राह -ए- दीन" को तय करने और "बालम-ए-यकीन" में पहुँचने के लिए "कामिल शैख" "शाहज-ए-विलायत" और "शाहज-ए-तत्तलफ" दूसरे शब्दों में पूर्ण "पमार्मा" की आवश्यकता है, अतः मुरीद को भी पथ-प्रदर्शक अपना पीरी-मुखि की आवश्यकता होती है।

पीर उसी समय मुरीद को "राह - तरीक्त व हकीक्त" दिखाने के योग्य हो सकता है जब उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हों-

"हल्के - तरीक्त" से पूर्णरूपेण अलग हो ,
 पुनोत्तात्मा एवं अद्वा का पात्र हो,
 बुद्धिमान हो,
 उल्ककौटि का दानी एवं परीक्षारी हो,
 वीरता एवं दूरता में कम न हो,
 पवित्र-वरिष्ठ-आत्मा के साथ-साथ "पाक नफ़स" भी हो,
 साहसी हो,
 सबके प्रति प्रेम रखता हो,
 विवाह से परिपूर्ण हो,
 शत्रुओं को दामा कर देता हो,
 "सुल्क" को ख़ुशी हो,
 निस्वाधी हो,
 सभी पर कृपा करता हो,

“वितायत” (बली या कृषि होने) का सीमाग्य मुरीदों
 को प्रदान करे,
 “तस्मीम बी रज़ा” का पैर हो,
 प्रतिष्ठा एवं मान-भयादे का बनाये रखे
 उसमें ठहराव का गुण हो,
 ही प्रता न करता हो,
 तेजवान एवं प्रतापी हो ।

मुरीद के लिए निम्नलिखित गुणों का होना परम
 आवश्यक है-

“त्वण्नीह”

- ज़ौहद - संसार तथा सांसारिक वंशवर्षों से विमुक्त हो जाये,
 तज़रीद - समस्त पारिवारिक व सांसारिक बन्धनों को छोड़ दे,
 बज़ीदह - ईश्वर में विश्वास रखता हो,
 तक्वह- परहेज़गार हो,
 सज़- प्रत्येक वस्तु में सज़ करे,
 मुज़ाहिदह-
 मुजावत- वीर हो और साहसी हो,
 बज़ल- दूसरों के लिए अपना बड़े से बड़ा स्तार्थ त्याग दे,
 क़तल- सत्यप्रिय तथा न्यायप्रिय हो,
 सिद्क- झूठ तथा लोभ से दूर रहे,
 इत्म- विद्या एवं ज्ञान का हथकूट हो,
 निमाज़ - विनम्र हो,

- हौशियारी- कदम संभाल कर उठायें,
 मलामत-
 बकल - बुद्धिमान ही तथा कौह भी कार्य पौर को इच्छा
 एवं आदेश के बिना न करे,
 बदन-
 हुल्क की खुशी- सदैव प्रसन्नचित रहै,
 तस्लीम-
 तफवीज़- मुरोद को चाहिए कि स्वयं की राहें-बुद्धा में समर्पित कर दे,

जो व्यक्ति उपर्युक्त गुणों से युक्त होते हैं वे ही सूफो
 साधना के अन्तर्गत पौर, मुशिबे तथा मुरोद बनने के योग्य समझे जाते हैं ।

तसब्बुफ के अन्तर्गत जो "सिलसिले" (सम्प्रदाय) स्थापित
 हुए, उनमें से कुछ ने अपने पंथों का मूल श्रोत पैगम्बर मुहम्मद शाह्व को माना
 तथा अधिकतर ने चौथे खलीफा "इब्न अब्दुल्ला" को अपने पन्थ का मूल श्रोत
 माना ।

१- चिरती सिलसिला-

भारतवर्ष के चार प्रमुख सूफो-सिलसिलों में चिरतिया
 सिलसिला सर्वप्रथम है, चिरतिया सिलसिले का भारतीय तसब्बुफ में अत्यन्त
 महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

अधिकतर विद्वान् चिरतिया सिलसिले का प्रवर्तक अबु
 इस्हाक शामी चिरती को मानते हैं, वे ख़्वासान के चिरत नगर के निवासी

वे, अतः चिरतो वृक्षताते वे । किन्तु कुछ लोग उन्हें शिष्य स्वाजा अबु अब्दुल चिरतो (मृ० सं० १६६ सं० १०२३) को उस सिलसिले का प्रवर्तक एवं प्रचारक मानते हैं ।

भारतवर्ष में चिरित्वा सिलसिले के प्रवर्तक एवं प्रचारक स्वाजा मुहम्मद चिरतो हैं। वे १३७ हिजरी में सीस्तान के संजर नगर में उत्पन्न हुए थे । स्वाजा मुहम्मद चिरतो (११९९-१२९३) ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग प्रमत्तता में व्यतीत किया तथा अनेक घमाटे-माओँ जैसे सैतु सहायुद्दीन सहरवदी, सन्मुद्दीन और स्वाजा जीहदुद्दीन खिमानो आदि से भेंट करने के परचातु लाहौर प्यार, जहाँ वे खुरत दाता गंज बस्त्र के प्यार पर हयादत करते रहे । उसके परचातु वे दिल्ली जाये और वहाँ से अजमेर (सं० १२२२) में जाकर रहने लगे तथा वहाँ से वे प्रचार कार्य करते रहे । उनकी सुलतानुल हिन्द तथा "गुरीब नवाज़" की उपाधियाँ प्रदान की गयी हैं। अजमेर में आज भी उनकी दरगाह शरीफ जहाँ देश-विदेश से लाखों की संख्या में बहालु प्रतिबन्ध एकत्र होकर उस में भाग लेते हैं, वे सभी घमों के होते हैं। भारतवर्ष के सुफियों में स्वाजा मुहम्मद चिरतो का एक अत्यधिक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

चिरित्वा सिलसिले के सज़ाने अपने पंथ का मूल द्वाँत पैगम्बर मुहम्मद साहब को मानते हैं -

१- ग़ली० पं० द्वा०का० (प्रथम लण्ड), पृ० १२७

छात्र मुहम्मद शाह

छात्र अली

छात्र अली अली

छात्र अब्दुल वाहिद

छात्र कुवेत जिन अयाज

छात्र इब्राहीम जिन अयम

छात्र अली अली अली

छात्र अली अली अली

छात्र अब्दुल मन्सूर

छात्र अब्दुल हसन अली अली

छात्र अब्दुल अहमद अब्दुल अली

छात्र मुहम्मद ज़ाहिद मन्सूर अली

छात्र युसुफ नासिरुद्दीन अली

छात्र अली अली अली

छात्र अली अली अली

छात्र अली अली अली

छात्र अली अली अली

(छात्रों में अलिखित चिलखितों के प्रत्येक एक प्रचारक)

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि चिरित्या सिलसिले को निम्न-निम्न धाराओं से प्रेरणा प्राप्त हुई और इस सिलसिले को शिष्य परम्परा किस प्रकार चली ।

चिरित्या सिलसिले को निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

चित्ता-

सूफी साधक को चालीस दिन तक किसी मस्जिद में अपना किसी अन्य स्थान में बंद रहकर उपासना करना होती है ।

वस्त्र-

साधक को रंगीन वस्त्र धारण करना होते हैं ।

केश-

उसे सिर पर सम्मो काकुलें रहती होती हैं ।

संगीत-

चिरित्या सिलसिले में संगीत को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। जबकि इस्लाम में संगीत वर्जित है किन्तु त्वाजा फुनुद्दीन चिरती "मासीकी की गह की गिज़ा" कहते हैं ।

त्वाजा फुनुद्दीन चिरती को शिष्य में भी प्रमुख सूफी साधक हुए हैं-

- १- फुनुउद्दीन क़ासिमियार काकी
- २- शेख फारीदुद्दीन उकरगंज
- ३- निजामुद्दीन औलिया
- ४- अलाउद्दीन अली अहमद साधिर तथा
- ५- शेख सलीम चिरती

वे हमो माने हुए बुद्ध हैं, किसी दरगाहों पर प्रति
वर्ष उर्स हुआ करे हैं तथा साहों की संख्या में हिन्दू-मुसलमान और कर्मों
के लीगमें अपनी जगह व्यवस्थित करने आते हैं ।

चिरित्ता सिलसिले के सूफ़ी साधकों ने अपने प्रेम भाव
तथा चारित्रिक प्रभाव द्वारा अनेक लोगों की अपना अनुयायी बना लिया
और इस्लाम धर्म के प्रचार में अत्यधिक योगदान किया ।

२- सुहरावदी सिलसिला -

सुहरावदी सिलसिले के पैदावा इज़रत सहाब्उद्दीन सुहरावदी
हैं किन्तु वे कभी भी भारतवर्ष नहीं आये अपितु सुहरावदी सिलसिले की
यहां लाने वाले उनके अनेक शिष्य थे । भारतवर्ष में इस सिलसिले का प्रवर्तक
मुस्तान्नासी बहाउद्दीन ज़क़रिया हैं। वे इज़रत सहाब्उद्दीन सुहरावदी के
अत्यधिक प्रसिद्ध एवं प्रभुत शिष्य थे ।

बहाउद्दीन ज़क़रिया एक उच्च कौटि के सूफ़ी महात्मा
थे तथा खगुणा सम्पन्न थे । उन्हीं द्वारा किये गये कर्मकार्यों की अनेक
कहानियां प्रसिद्ध हैं ।

सुहरावदी सिलसिले के अन्तर्गत अनेक सिलसिले हुए जिनमें
बाहरव तथा बेहरव शाखाएं अधिक प्रसिद्ध हैं ।

१- बाहरव सुहरावदी सम्प्रदाय-

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत निम्नलिखित शाखाएं आती हैं-

- (क) कलाती शाखा - इसके पैशा रैयद कलातुदीन शाह मोर सुत
पौत थे ।
- (ख) मलदूमी शाखा- इस शाखा के प्रवर्तक रैयद कलातुदीन शाह मोर सुत
पौत के पौत अहमद खोर मलदूमी-बशानिया थे ।
- (ग) मीरान शाही शाखा- इस शाखा के प्रवर्तक मीरान मुहम्मद शाह थे।
- (घ) हस्माउले शाही शाखा- इस शाखा के पैशा हाफिज़ मुहम्मद हस्माउले थे।
- (ङ) दाँलतशाही शाही शाखा - इसके पैशा थे दाँलतशाह ।

उपरोक्त सभी शाखाओं के प्रवर्तकों ने अपने-अपने पंथ की बाहरव रूप
में हो खाने का प्रवास किया अथवा दूरे शब्दों में इन लोगों ने सनातनपंथी
हस्ताम धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर ही अपने सम्प्रदायों को खाना
और हस्ताम के आदेशों का उत्तर्धन नहीं किया ।

२- बैरव सुहरावदी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के जननी वैवल दाँ शाखार प्रसिद्ध हैं और वे हैं-

(क) लाल शाह वाफिया शाखा-

इसके प्रवर्तक रैयद लाल शाह वाज़ थे जोकि बहाउद्दीन ज़करिया के
प्रमुख शिष्य थे । वे हस्ताम में मतामती कहे जाते हैं क्योंकि उन्होंने हस्तामी
शरव का उत्तर्धन किया और हस्तामी आदेशों का पालन न करते हुए स्वतंत्र
विचारों की प्रस्था किया ।

विवारों को ग्रहण किया ।

(ख) रसूल शाही शाखा-

इसके पैशवा रसूलशाह थे, वे मो शरब के विनाश कार्य करते थे तथा भावक प्रज्यों का सेवन करते थे ।

उनके ज्ञाता एक शाखा और मो थे जिसे मूला सुहाग ने ज्ञाता या और जो स्त्री वेश में रहता था। उस शाखा का नाम है सुहागिया ।

सुहरावदी सितधिले के प्रसिद्ध एवं प्रमुख सन्तों के नाम निम्नलिखित हैं-

- १- शेख महाद्वीन ज़करिया
- २- शेख सदरुद्दीन
- ३- शेख अहमद नाशुक बादि

कादिरी सितधिला-

इस सितधिले के पैशवा बड़े पौर साहब इज़रत अब्दुल कादिर जोतानो थे । वे अत्यधिक सम्माननीय महात्मा थे । उनके अनुयायी एवं बहालु उम्मा अनेक उपनामों से सम्बोधित करते हैं जिनमें प्रमुख हैं गीरी- बाज़म । वे बड़े ज्ञाता महात्मा थे ।

भारतवर्ष में कादिरी सितधिले को ज्ञाने वाले मुहम्मद गीस थे । कादिरी सितधिले को प्रमुख शाखारं इस प्रकार हैं -

(क) कुमेशिया शाखा- इसके प्रवर्तक शाह कुमेश थे ।

(स) बख्तुल शाही शाखा- इसके पैतृक शाह ततोज़ा बारी के शिष्य
बख्तुल शाही थे ।

(ग) नौशाही शाखा- इसके पैतृक थे हाजी मुहम्मद ।

जादिकी सिलसिले में संगीत का प्रचलन नहीं है। उनके कपड़ों का
रंग गेरखा होता है और वे छि पर हर रंग की फाड़ी बांधते हैं ।

४- नज़्ज़बन्दी सिलसिला -

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे ख्वाजा बहाउद्दीन नज़्ज़बन्द ।

भारतवर्ष में इस सम्प्रदाय के पैतृक हुए ख्वाजा बाकी बिस्ताह
बेरंग ।

यह सिलसिला बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। इस सिलसिले का
भारतवर्ष में प्रचार कार्य अहमद फ़ाज़की सरहिन्दो ने किया जोकि एक
अत्यधिक प्रतिभापूर्ण महात्मा थे । उन्होंने सुन्नी शायकों को बादलों में
सुधार कार्य किया और सुन्नी शाखा को विशाल बनाने के लिए अहमद फ़ाज़की
ने लिया शाखा वालों का विरोध किया तथा उनको बंदु बालीचना की ।
उन्होंने बुद्धिया तथा सुबुद्धिया विचारधाराओं को एक करने का पौ प्रयास
किया ।

अहमद फ़ाज़की का ज़्यादातर सम्बन्धी सिद्धान्त अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

प्रथम ज़ूम (इन्सानुल-कामिल से उच्च) स्वयं अहमद फ़ाज़की हुए ।
दूसरे ज़ूम उनके पुत्र मुहम्मद मासूम थे जिनके मुरीद थे - बावशाह बोरंगेवा।

तोहरे इम है खाजा हुजतुल्ला । ये मुहम्मद मासूम के दूसरे पुत्र है ।

चौथे इम है खाजा हुजतुल्ला के पौत्र जुबैर ।

उपर्युक्त चार प्रमुख सिलसिलों के अतिरिक्त भारतवर्ष के कुछ अन्य प्रमुख सुफ़ी सिलसिले निम्नलिखित हैं-

१- शचारी सिलसिला -

इसके पैशवा अब्दुल शचारी है ।

२- उवैसी सिलसिला-

इसके प्रवर्तक उवैसुल करनी है ।

३- मदारी सिलसिला-

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक शाह मदार है ।

४- क़स्तन्दरिया सिलसिला-

इसके प्रवर्तक नज़ोमुद्दीन क़स्तन्दर है ।

५- मलामती सिलसिला-

इसके पैशवा है जुन नून भिन्नी ।

भारतवर्ष के सुफ़ी साधक अधिकतर तसव्वुफ़ की इरानी परम्पराओं के मानने वाले हैं । इन सुफ़ी साधकों ने अपनी तपस्या में प्रेम भावना तथा सत्पुरुषों के वाद्यों को समाहित करके इस्लाम धर्म की अत्यधिक लोकप्रिय बना दिया तथा उसके प्रचार एवं प्रसार में अमूल्य योगदान किया । इन

सूफ़ी धर्मोपदेशकों, महात्माओं तथा कवियों के प्रवासों से ही भारतवर्ष में सर्वप्रथम हिन्दू-मुस्लिम एकता का सूत्रपात हुआ । जगै क़ादर सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य को एक अमूल्य निधि प्रदान की, वह है प्रेममार्गी सूफ़ी काव्य ।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी सुफ़ी साहित्य

हिन्दी सुफ़ी साहित्य

पृष्ठभूमि

भारत में सुफ़ी सिलसिलों का सम्प्रदायों का पूर्ण उत्थान मुग़ल शासन-काल में हुआ। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि सम्राट अकबर और सम्राट जहाँगीर व अन्य मुस्लिम शासक, पीरों के पुरोद थे। सम्राट शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने तो सुफ़ीमत और वेदान्त का अत्यधिक गहन अध्ययन किया था एवं दोनों मतों की विवेचना तुलना करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि मूलतः इन दोनों में केवल स्वर का अन्तर है किन्तु आत्मा एक ही है और इनमें कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। दाराशिकोह वास्तव में मुस्लिम और हिन्दू रहस्य ज्ञान का एक बहुत अच्छा विद्वान् था। बहादुरशाह के काव्य में भी सुफ़ीमत के उच्च सिद्धान्तों की बड़ी विस्तृत व्याख्या उपलब्ध होती है।

मुसलमानों ने जिस समय भारतवर्ष में प्रवेश किया था, उस समय वहाँ पर शिवोपासना का अधिक प्रचार था और साथ ही सिद्ध तथा नाथ योगी भी उस युग में बहुत अधिक प्रभावशाली रूप धारण किए हुए थे। वह युग भक्ति के प्रादुर्भाव का समय था, भक्तिप्रवाह सगुण एवं निर्गुण भक्तिधारा रूप में प्रवाहित हो रहा था। वेदान्त का प्रतिपादन भी विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैत, सुद्वैत और द्वैताद्वैत रूप में हो रहा था।

इसी बीच मुसलमान और हिन्दू एक-दूसरे के सम्पर्क में आये। दोनों धर्मों में अनेक मतभेद थे, सबसे बड़ा तो यही कि मुसलमान तोहीद अथवा एकेश्वरवाद में विश्वास रखता है, जबकि हिन्दू निर्गुण एकेश्वरवादी होने के साथ ही साथ सगुण अनेकेश्वरवादी एवं अस्तारवादी भक्त भी है। किन्तु मतभेदों के रहते हुए भी ये दोनों जब एक-दूसरे के निकट आये तो दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया।

भारत में सूफियों ने सम्पर्क बाल बिछा रखा था । सूफी संतों की चरत्कार प्रवृत्तियों की प्रवृत्ति हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में अत्यधिक सफल सिद्ध हुई । जिस प्रकार सूफियों का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा उसी प्रकार हिन्दुओं से सूफी मुसलमान भी प्रभावित हुए, जैसे दाराशिकोह हिन्दुओं के धर्म और प्रतिष्ठानों की ओर आकर्षित हुआ तथा ब्राह्मणों, योगियों और संन्यासियों की संगति में रहने लगा था । बुल्लेशाह पर भारतीय विचारधारा का प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि वे परमात्मा को अवतारों में देखने लगे । इसी प्रकार सूफियों का प्रभाव ज्ञानाब्धी संतों पर पड़ा, कबीर के निगुणवाद में तसब्बुफ का गंभीर निष्पत्ति है। किन्तु यह कहना एकदम असत्य है कि भारत में रहस्यवाद होनेवाले सूफी साधक थे, क्योंकि सम्पूर्ण उपनिषद् साहित्य में रहस्यवाद के दर्शन होते हैं, आगे चलकर इन्हीं उपनिषदों से निःसृत अंत का प्रभाव सूफियों पर पड़ा, जिसने सूफीवाद को एक नया और निश्चित रूप दिया था । इसी तरह प्रणयवाद को भी सूफी साधकों द्वारा लाया जाना अथवा इसका मूल स्रोत तसब्बुफ को ही मानना अनुचित है क्योंकि भागवत में गोपी-कृष्ण की लीला के रूप में प्रणयवाद के सुन्दर दर्शन होते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रहस्यवाद और प्रणयवाद भारत के लिए एकदम नये नहीं थे, बल्कि सूफी संतों ने जितने भी प्रेमस्थान लिये वे सभी हिन्दू कथाओं के आधार पर भारतीय संस्कृति के रंग में ही लिये, किन्तु यह अवश्य है कि भिकारोपासना में प्रणय की पद्धति सूफियों के ही अनुकूल है और हिन्दी साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है ।

भारतवर्ष के सूफी कवियों का मूल आध्यात्मिक स्रोत फारस का प्रेम-काव्य और नवों से पूर्णतः प्रभावित हैं। सूफी और निगुण संतों की प्रवृत्ति सदैव परोपकारी रही है, अतः जनसाधारण पर इन दोनों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इन्हीं के प्रभाव स्वल्प हिन्दू और मुसलमानों की आपसी बेर-भावना की समाप्ति हुई और वे एक-दूसरे के रीति-रिवाज तथा रहन-सहन को ग्रहण करने लगे । दोनों

ही एक-दूतरे की कड़ या नज़ार और सभाधि पर अदापूर्वक नतमस्तक होने लगे । सूफ़ियों ने अपनी उदारता एवं विशाल हृदयता से हिन्दू और मुसलमान साधकों के बीच की अदरता एवं घृणा की छाल को पाट दिया । इन्हीं के प्रयास से दोनों को मानवता के मूल्य का पता लगा और हिन्दू-मुस्लिम दोनों के बीच यस्तिष्क एवं मानस दोनों ही दृष्टियों से विचारों एवं तबों के जादान-प्रदान का द्वार खुल गया ।

सूफ़ियों की वास्था और साधना के बल से तत्त्वों का भारतीय वास्था और साधना से गहरा सम्बन्ध है । सूफ़ियों में परम तत्त्व सम्बन्धी कई सिद्धान्त प्रचलित हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण "इश्क़-अरबी" का "वहदतुल-वुजूद" सिद्धान्त का है, "वहदतुल-वुजूद" का भारतीय "लोपनिषदिक" विचारधारा से गहरा सम्बन्ध है । इसी प्रकार सूफ़ियों की "सुद् दिया" विचारधारा से "विशिष्टाद्वैतवादी" दर्शन की गहरी समानता दिखाई देती है ।

सूफ़ी साधना में "पीर" या "गुरु" का विशेष स्थान है । गुरु सम्बन्धी धारणा जैसी भारत में प्राचीनकाल से रही है, वैसी अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती । "कुरआन शरीफ़" में कहीं भी "पीर" का अनुसरण करने का संकेत नहीं है। किन्तु, भारत में सभी साधना मार्गों में गुरु के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। योगियों में "गुरुवाद" विशेष रूप से विकसित हुआ है, योगियों और सूफ़ियों में "गुरु" के प्रति एक जैसी सम्मान भावना तथा नवदीक्षितों को गुरु रहस्यों से अज्ञात कराने की समान प्रणाली उद्घात होती है ।

भारतीय वातावरण का सूफ़ी कवियों पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अल्लुअल भावों के मिश्रण के साथ ही साथ भाषा को भी अपना लिया । प्रारम्भिक सूफ़ियों की भाषा फ़ारसी थी । ख़ुरत खीर सुबानी (१४वीं शताब्दी) की

कवि-वंश रचनाएं फारसी में ही हैं किन्तु उन्होंने भी हिन्द की भाषा को अपनाया था और उसमें काव्य रचना की थी। तदुपरान्त मुसलमानों के साथ विविध भाषा-भाषी भारतीयों के सम्पर्क ने एक नयी भाषा को जन्म दिया था, जिसमें अवधी, फारसी, पंजाबी एवं लड़ी बोली का मिश्रण था, इस भाषा को "हिन्दवी" के नाम से सम्बोधित किया जाता है, इसी "हिन्दवी" भाषा में "कबीर सुरा" ने अपना काव्य रचा। यही हिन्दवी बहिष्णी भारत पहुंच कर "दक्कनी" भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई और इसमें सूफ़ी साहित्य की रचना हुई। इस सूफ़ी साहित्य में मसनवियों का विशेष स्थान है।

सूफ़ियों ने सिद्धों और योगियों के "हयोग", "साधन" एवं "तांत्रिक" विद्या की बहुत-सी बातें गृह्य की थीं, परन्तु उन्होंने कबीर आदि संत कवियों के लण्डन-मण्डन को नहीं अपनाया। वास्तव में सूफ़ी सच्चे-प्रेम मार्ग के अनुयायी थे, जिसमें अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष और लण्डन-मण्डन के लिए कोई स्थान नहीं था।

हिन्दी सूफ़ी कवियों ने भारतीय दर्शन और साधना का कुछ प्रभाव तो अवश्य गृह्य किया था, परन्तु विद्वानों द्वारा व निर्विष्ट सीमा तक नहीं। सूफ़ी काव्य में प्रवृत्त दर्शन और साधना का मूल रूप सूफ़ी मत के ही अनुरूप है।

हिन्दी में सूफ़ियों की रचनें विविध प्रान्तीय एवं प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध होती हैं। किन्तु "अवधी" में लिखित सूफ़ी साहित्य सबसे अधिक उच्चकोटि का है। अवधी सूफ़ी साहित्य में प्रायः प्रेमगाथाएं लिखी गई हैं, जो फारसी की मसनवी "लेली" पर आधारित हैं। मुक्तक काव्यों में भी सूफ़ी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, किन्तु जितना नमस्पर्शी और हृदयग्राही चित्रण सूफ़ी प्रेमाख्यानों द्वारा साधना मार्ग में "प्रेम की पीर" जाकर जाकर ईश्वर के प्रति "रति-भाव" में प्रस्तुत किया गया है, अनिर्वचनीय है। सूफ़ी कवियों ने इन प्रेमाख्यानों को केवल प्रेम-काव्य मात्र न मानकर ईश्वरीयप्रेम का साधन बना दिया है।

उन्होंने कथा प्रसंगों में आध्यात्मिक संकेत प्रस्तुत उन्हें दिव्य रूप दे दिया है। सूफियों द्वारा वर्णित कथाएं इतिहास व लोककथाओं पर आधारित हैं और हिन्दू शासक काल से सम्बन्धित हैं, यह इस बात का सबीब प्रमाण है कि सूफी कवि मुसलमान होते हुए भी कितने उदार, समन्वयवादी और क्लापेदी थे, उन्होंने अपनी कथाओं में हिन्दू देवी-देवताओं को यथोचित सम्मान दिया है। किन्तु यह प्रसंग क्लौकिक कर्ण के उन्मत्त ही जावे हैं। इन बातों से ज्ञात होता है कि भारत में सूफियों ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच के व्यवधानों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया और वे सफल भी रहे।

हिन्दू 'वेदान्त' और 'तसव्वुफ' में अनेक समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि सिन्ध प्रदेश पर अरब मुसलमानों का वं प्रभुत्व एवं अधिकार होने के पश्चात् 'मुल्तान' सूफियों का केन्द्र बन गया था, अरब अरब भारत के अन्य प्रदेशों में जाने जाने लगे और भारतीय मुसलमान तथा अन्य लोग भी अरब जाने-जाने लगे, वापसी आदान-प्रदान बढ़ा। सूफी वेदान्त से प्रभावित हुए। तसव्वुफ और वेदान्त के साम्य को देखते हुए ही भारतीय साधकों ने सूफी का स्वागत किया। सूफियों का 'अल-इक़' और वेदान्त का 'वेत्तु ब्रह्मात्मि' दोनों समानार्थी हैं। दोनों ही 'ईश्वरिय-प्रेम' को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं।

सूफी साधक 'बल्लाह' या 'बुदा' (परमात्मा) के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता को स्वीकार नहीं करते, समातनी मुसलमानों और सूफियों का निर्गुण, निराकार, सर्वज्ञातिमान, सर्वगुण सम्पन्न और सर्वक्षीय है। किन्तु सूफी इससे भी कुछ और आगे बढ़कर बल्लाह के सौन्दर्य को पूर्ण विकसित रूप में देखते हुए कहते हैं कि 'बुदा' का 'नूर' 'जुरे-बुरे' में जलवागर होता है, वह हम में भी विद्यमान है, इसलिये 'इह' भी बुदा का ही एक अंग है- 'यह बात भारतीय 'अद्वैतवाद' के एकदम निम्न बैठती है यहाँ पर भी भक्त, परमात्मा को कण-कण में व्याप्त मानता

है, शरीरिय सौन्दर्य अणु-परमाणु सभी में दृष्टिगोचर होता है, आत्मा-परम फ़िदायह परमात्मा का ही एक अंश है, जो कुछ समय के लिए उससे बिलग हो गई है, किन्तु अन्तोगत्या इस आत्मा को उसी परमात्मा में जाकर पिछीन हो जाना है। इस प्रकार सुफ़ी और येवान्ती एक-दूसरे के बहुत निकट आ जाते हैं।

यद्यपि 'क़ुरआन शरीफ़' में 'बुदा की ज़ात' को 'बहदु-उल-शरीफ़ा उदु' (ज्यादा बड़ अकेला है और कोई भी उसके साथ शिरकत नहीं कर सकता है) माना है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बुदा 'मतलिबुल-अनान' ज्यादा स्वाधि-पति शहसाह है, जिसके ऊपर कोई शासक नहीं। वही अकेला इस विश्व का निर्माता, पोषक और संहारक है। विश्व की प्रत्येक गतिविधि उसी के संकेत की मौजूदा है। प्रत्यक्षा है कि सुफ़ी सिद्धान्त इस सनातनी बात से मेल नहीं खाते। सभी अनेक सुफ़ियों को अपने-अपने युग के अद्वैत सनातनी मुस्लिम शासकों की अनेक यातनाएं झेलनी पड़ी थीं।

भारत में आनेवाले सुफ़ियों को भारतीय वैयक्तिक साधना और शुद्धाचरण से बहुत प्रभावित किया। सुफ़ियों ने 'फ़ैस' को अधिक महत्त्व दिया, ज़ा: शरीर को भी 'फ़ैस' स्वरूप ही माना। वे बुदा की प्राप्ति का मार्ग फ़ैस को ही मानते हैं। भारतीय सुफ़ी साहित्यकारों ने जहां भारतवर्ष के तत्कालीन प्रभाव को ग्रहण किया है, वहीं वे फ़ारस के सुफ़ियों और वहां के साहित्यकारों से भी पूर्णतः प्रभावित रहे हैं।

सुफ़ी साहित्य-

सुफ़ी निबन्ध-

प्रारम्भिक सुफ़ी साहित्य अरबी और फ़ारसी भाषाओं में उपलब्ध होता है। इस सुफ़ी साहित्य की रचना सुफ़ी मत के विकास के द्वितीय युग में प्रारम्भ हुई

और तृतीय युग में उसका पूर्णरूपेण विकास हो गया । प्रारम्भ में चाहे किसी देश का रहनेवाला सूफ़ी हो और यदि वह रचना करना चाहता था तो वह "कुरआन शरीफ़" की पवित्र भाषा "अरबी" को ही अपनाता था और उसी भाषा में अपना साहित्य सृजित करता था । प्रारंभिक सूफ़ी साहित्य अधिकतर "निबन्धों" पर आधारित था, जिनमें सूफ़ी साहित्यकार तसव्वुफ़ की बातों को स्पष्ट करते हुए स्वयं को अन्यो से पुष्टि दिलाने की चेष्टा करते प्रतीत होते हैं । "तल्लाव" का प्रसिद्ध ग्रंथ "किताबुलवासीन" अरबी भाषा के तुकान्त गद्य के २२ प्रकरणों में लिखा है ।

"इबनकुल-अरबी" ने अपने काल के प्रतिपादन के लिए "फ़तूहात मजिदा" और "फ़ुसूख़ हिम" नामि ग्रन्थों की रचना अरबी में की ।

इसी प्रकार "सुहरावर्दी" ने "अवारिफ़ुल्ल - मुबारिफ़" नामा द्वारा जागे जागे वाले सूफ़ियों के लिए एक प्रामाणिक ग्रन्थ प्रस्तुत कर दिया । "महमूद हबिस्तारी" ने "गुलशने-रास" नामक रचना फ़ारसी में की थी । इस ग्रन्थ की गणना भी सूफ़ी निबन्ध साहित्य के अन्तर्गत होती है ।

सूफ़ी जीवन-वृत्त -

सूफ़ी साहित्य के अन्तर्गत आता है सूफ़ियों के "जीवन वृत्त" से संबंधित है, इन ग्रन्थों में अत्यधिक प्रसिद्ध सूफ़ियों का परिचय कराया गया है। उन सूफ़ियों के जाचरणा, उनके रहन-सहन, उनके अमालात (चमत्कार) को वर्णित किया गया है। इस प्रकार की रचनाओं में सबसे अधिक सुन्दर रचना "तज़किरतुल-बांठिया" है जिसे "फरीदुद्दीन अठार" ने लिखा है। "हुज्विरी" की रचना "कश्फ़ुल-महजुब" में भी प्रसिद्ध सूफ़ियों का संक्षिप्त परिचय देकर उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है । "जामी" का बह्वर्षिक ग्रन्थ "नफ़ाहतुल उन्स" भी उसी प्रकार का ग्रंथ है।

सूफियों से सम्बन्धित रचनाएं प्रस्तुत करने की परम्परा काफ़ी दूर तक चली है।

“अब्दुल-क़दिर-ग़िलानी” ने “तक्कत-अल-सूफ़ियन” पुस्तक के द्वारा सनातन इस्लाम और तसव्वुफ़ में मेल कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसी ग्रन्थ के आधार पर - “अज़ारी” ने “तक्कत-अल-सूफ़ियन” और प्रसिद्ध कवि बापी ने “नफ़ाक़ात-उन्ना” की रचना की थी।

“अल इयबहानी” ने “ख़िमत अल बांदिवा” नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की जिसमें सूफ़ी साधकों की जीवनी और उनकी व्यक्तिगत सधना के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत किया है।

“अब्दुल क़ासिम अल कुंदरी” ने “रिवाज” नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें रचनाकार ने सूफ़ी सिद्धान्तों को बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

“अब्दुल क़लाह अल अज़ारी” ने “पीर-ए-अज़ार” नामक काव्य की रचना की और इससे बहुत प्रसिद्धि पाई। अज़ारी ने अपनी काव्यरचना में “ग़ज़ल” और “रूबाई” दोनों का प्रयोग किया।

सूफ़ी रचनाकारों में एक बड़ा नाम है “अल-ग़ज़ाली” का, इनका पूरा नाम था “अब्दुल-हामिद मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़ज़ाली”। उन्होंने सर्वप्रथम तसव्वुफ़ को एक निश्चित दार्शनिक रूप प्रदान किया। अल ग़ज़ाली ने अपनी रचनाओं द्वारा तसव्वुफ़ और इस्लाम में एकता की स्थापना की। अल ग़ज़ाली ने सिद्ध किया कि इस्लाम के द्वारा एक ब्रह्मा या परमात्मा की उपासना और सूफ़ियों के एकेश्वरवाद में कोई अन्तर नहीं है, अल ग़ज़ाली के अनुसार सूफ़ी पद्धति के द्वारा ही ब्रह्मा की इबादत की जा सकती है, अन्यथा संभव नहीं है। अल ग़ज़ाली की आत्मकथा “अल मुकिज़ बिन अल-क़ाल” एक प्रसिद्ध रचना है। अल-ग़ज़ाली ने धर्म, दार्शनिकता, नीति, शांति और उपासना आदि पर बड़े प्रभावशाली विचार व्यक्त किये और अपनी

रचनाओं से इस्लामी एवं सुफ़ी साहित्य को अत्यधिक समृद्धशाली बना दिया है।

“इल्हा उलूम अल-दीन” अल ग़ज़ाली की एक बहुत उत्कृष्ट की रचना है। अल-ग़ज़ाली ने सुफ़ियों की उद्वेगता पर अज़ुज़ ला दिया और उनके प्रभाव से परवर्ती सुफ़ी केवल ज़बानी साधक बन गये। अल ग़ज़ाली के कारण ही सुफ़ी मत में स्थिरता आई।

जैसे ही “रुबाई” शब्द ज्ञान पर जाता है वैसे ही मस्तिष्क में “उमर ख़याम” का नाम कौंध जाता है। उमर ख़याम एक ऐसा सुफ़ी कवि था जो इस्लाम में व्यक्ति “शराब” को अपने लिए अपेक्षित मानता था। इसी प्रकार उसकी अनेक बातें तसव्वुफ़ और इस्लाम के विरुद्ध होती थी। उमर ख़याम को पारचात्य विद्वानों ने बहुत अधिक महत्त्व दिया। जान संखर की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसमें ख़याम की रुबाइयात का अनुवाद न हुआ हो। उमर ख़याम का पूरा नाम “गयासुद्दीन-अबु फ़तह उमर बिन इब्नाहीम अल ख़यामी” था। ख़याम कर्मकाण्डों का त्याग करके आन्तरिक शुद्धता एवं पवित्रता पर अल जाता है।

“मुहीउद्दीन अब्द अल क़ादिर ग़िफ़ि अब्द अल्लाह अल ज़िली” (जिन्होंने क़ादिरि सिलसिले की स्थापना की थी) ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की स्थापना की जिनमें बहुमूर्ति ग्रन्थ है “अल-गुन्य लि-तालिबी तरीक-अल-हक” जिसमें उनके उपदेश और प्रार्थनाएं सुरक्षित हैं।

“सनाई” ने अपनी रचनाओं में गुज़ल और क़सीदह के साथ ही साथ “मसनवी” और “रुबाई” का भी प्रयोग किया “हकीकत - अल-हकीक” सनाई की प्रसिद्ध रचना है। सनाई बहुत समय तक भारतवर्ष में रहा था इसलिए उसकी भाषा में अनेक हिन्दी शब्द उपलब्ध होते हैं। सनाई ने “सैर अल इबाद” रचना भी की। सनाई ही यह सबसे पहला सुफ़ी कवि है जिसने गुज़लों में धार्मिक भावनाओं से परिपूर्ण बहुत अधिक संख्या में रचनाएं प्रस्तुत की हैं।

तसव्युक्त में प्रेमात्मानक काव्य का बीजारोपण करनेवाले कवि 'मोहाना कुरीदुदीन जमी' हैं, वे फ़ारस के सबसे महान् अध्यात्मवादी कवि थे। मोहाना जमी ने मसनवी शैली को अपनाते हुए जुदा तक पहुँचने का रास्ता अनुराग द्वारा माना है। जमी का काव्य कृपग्रही इसलिए है कि उनकी मसनवियाँ सुन्दर, सरल, चित्ताकर्षक और प्रवाहपूर्ण हैं। उन्होंने अपनी काव्य साधना द्वारा 'मे' और 'तू' का भेद दूर करने का प्रयत्न किया है, अतः उनका काव्य आत्मा का संगीत है इसीलिए मर्म-स्पर्शी है। मोहाना जमी के काव्य में इस्लामी आध्यात्मिक विचारों का पूर्ण विवेचन किया गया है। ब्रह्म को सत्य और मातृ को मिथ्या मानते थे, इसीलिए 'मे' और 'तू' का भेद मिटा कर 'मे' को ही महत्त्व देते थे और एक साधक के रूप में लौकिक तथा अलौकिक सभी चीज़ों में 'मे' के दर्शन करते थे। उन्होंने लौकिक एवं अलौकिक प्रेम को एकपक्ष ऐसा एकमेक कर दिया था कि उनको जुदा करना एकदम संभव है।

'भारतीय तसव्युक्त' के लिए 'फ़रीदुदीन अख़ार' का नाम अत्यधिक महत्त्व रखता है। क्योंकि भारतीय हिन्दी सुफ़ी कवि तथा भारतीय सुफ़ी साधक अख़ार के ज़रूरी हैं, अख़ार द्वारा निर्मित बेनुमियाद पर ही लोगों ने अपने काव्य एवं साधना का विशाल प्रासाद बढ़ा दिया है। अख़ार के 'मन्सिक अल तैर' नामक एक मसनवी के पदों 'हुद हुद' के आधार पर ही जायसी ने अपने पद्मावत में 'हीरामन तोते की घोषणा बनाई' है। 'मन्सिक अल तैर' में अख़ार ने एक द्वारा परमात्मा से एकता के भाव को प्रस्तुत किया है। अख़ार का 'असरारनामा' नामक एक मसनवी काव्य-ग्रन्थ है जो कि सुफ़ी सिद्धान्तों पर आधारित है। उनका एक अन्य ग्रन्थ 'इलाहीनामा' भी प्रसिद्ध है जिसमें आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया गया है। अख़ार ने अपने 'तज़क़िरत अल बांलिया' में बड़ी रीतिशैली को अपनाया है। फ़रीदुदीन अख़ार ने अपने प्रेमात्मानक काव्य के द्वारा फ़ारस के कवियों के लिए प्रेमाधारित लिखने का मार्ग प्रशस्त किया किन्तु अख़ार के बाद के सुफ़ी कवि परमात्मा के प्रेम को सर्वथा लौकिक रूप में देखने लगे और उन पर से अध्यात्मवाद का सुन्दर रूप

धीरे-धीरे लौकिक रूप में परिणत होने लगा । फ़ारसी काव्य में प्रिय को "माशूक" कहा जाता है जो लौकिक (परमात्मा के लिए) और लौकिक दोनों रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। परिणामस्वरूप सन् १२४० के बाद के तसव्वुफ़ का वह पुराना रूप नहीं रह गया जिसमें सुफ़ी पहले साधक होता था और अध्यात्मवादी रूप धारण करके काव्य रचना करता था ।

उपर्युक्त विवरण को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि सुफ़ी साहित्य का निर्माण न हुआ होता तो तसव्वुफ़ का कोई नाम ठेका तक न होता । जिस प्रकार सुफ़ी साधक-कवियों ने इस्लाम और तसव्वुफ़ के सिद्धान्तों का स्वीकरण करके साहित्य का निर्माण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन सुफ़ी कवियों ने अरबी और फ़ारसी भाषाओं अपनी साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। शुद्ध व्यक्तिगत प्रेम अथवा ईश्वरीय प्रेम के प्रतीकात्मक वर्णन की परम्परा फ़ारस या ईरान देश की एक बहुत बड़ी विशेषता के रूप में अग्रसर हुई ।

फ़ारसी के प्रतिभावाद् कवियों ने ग़ज़लों के माध्यम से गंभीरतम प्रेम-भाव का प्रस्फुटन किया और उन्होंने अपनी मसनवियों के द्वारा ईश्वरीय प्रेम को प्रकट किया । मसनवी पद्यति सुफ़ी कवियों के काव्य का एक सशक्त माध्यम बनी । प्रेम भावना को भक्तों के हृदय से स्पर्श कराने के लिए मसनवी पद्यति ने अभूतपूर्व कार्य किया ।

सुफ़ी कवियों ने ईश्वरीय प्रेम के शुद्ध भाव की अभिव्यक्ति के लिए फुटकर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनको संगृहीत करके "कुत्लियात" और "दीवान" नाम दिया गया है । इन रचनाओं में कवि का अथवा किसी अन्य व्यक्ति का प्रिय जिसे "मशबूब" या "माशूक" कहा जाता है और जो अधिकांशतः ईश्वर का प्रतीक माना जाता है, उसे स्त्री रूप में स्वीकार न करके पुरुष रूप में स्वीकार किया जाता है और ऐसा करना व्यक्तिगत भी लगता है क्योंकि वह परमात्मा का प्रतीक है । सुफ़ियों का प्रेम भाव "इश्क-ए-मनावी" (लौकिक प्रेम) से ही "इश्क-ए-इलही" (

(ईश्वरीय प्रेम या लौकिक सात्विक प्रेम) की ओर झुसर होता है। सूफियों की फुटकर रचनाएं रुबाइयात के रूप में उपलब्ध होती हैं। उनमें खैयाम ने अपने प्रेमभाव को प्रकट करने के साथ-साथ अपनी रुबाइयों में कर्म-काण्ड की आलोचना भी प्रस्तुत की है।

अन्य सूफियों ने भी कर्मकाण्डों की आलोचना की है और रुबाइयात के साथ ही साथ गुज़लों का भी प्रयोग किया है। मोलाना जलालुद्दीन रूमी ने अपनी गुज़लों के दीवान को अपने भिन 'इश्क़ तबरेज़' के नाम समर्पित किया था, उसका नाम 'कुलियात इश्क़ तबरेज़' है जिससे कभी-कभी हम भी पंदा होता है। मोलाना रूमी के अतिरिक्त 'हाफ़िज़' और 'सादी' जैसे महान् कवियों की गुज़लों के दीवान भी उपलब्ध होते हैं। इन कवियों ने अपनी गुज़लों से फ़ारसी साहित्य की श्रीवृद्धि के साथ ही साथ तसव्वुफ़ को भी अत्यधिक महत्ता प्रदान की है।

फ़ारसी सूफ़ी साहित्य में उनमें खैयाम अपनी रुबाइयात के कारण प्रसिद्ध हुए, हाफ़िज़ अपनी गुज़लों के द्वारा और मोलाना रूमी को ख्याति प्राप्त हुई उनकी मसनवियों के द्वारा। मोलाना रूमी की भाषा-शैली बहुत सरल और प्रवाहपूर्ण है अतः उनके कथनों का प्रभाव सर्वसाधारण पर पड़ना अवश्यम्भावी था।

अरबी तथा फ़ारसी के सूफ़ी साधकों एवं कवियों ने वास्तव में अपनी रचनाओं, गुन््यों, गुज़लों, रुबाइयों, मसनवियों और निबन्धों के रूप में जाने वाली नस्लों के लिए एक बहुमूल्य निधि, अथवा एक खज़ाना खोड़ा है। वास्तव में यदि यह सूफ़ी साहित्य न होता तो भावी सूफ़ी साहित्य की इतनी सुन्दर रचनाएं हमें उपलब्ध न होतीं बल्कि आज हमें प्राप्त हैं। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत हिन्दी और उर्दू सूफ़ी काव्य निश्चित रूप से अरबी फ़ारसी सूफ़ी काव्य से प्रभावित हैं। अतः इन दोनों भाषाओं के सूफ़ी साहित्य का अध्ययन उस समय तक संभव नहीं जब तक कि अरबी-फ़ारसी सूफ़ी साहित्य से परिचय प्राप्त कर लिया जाय।

भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा -

यह एक निर्विवाद सत्य है कि भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा अत्यधिक प्राचीन है और इसके दशम स्तरीय सर्वप्रथम "ऋग्वेद" में "यम-यमी" के संवादों में उपलब्ध होते हैं। उसके बाद "ऋग्वेद" में ही "सर्वज्ञी-पुरुषा" प्रेम सौधान प्राप्त होता है। वेदिक साहित्य के अतिरिक्त पौराणिक साहित्य भी अनेक प्रेमाख्यानों से जोत-प्रोत है जिसमें प्रमुख हैं - "उषा-अनिरुद्ध" प्रेम कानि, "राधा-कृष्ण प्रेम कथा" और "प्रभाक्षी-प्रद्युम्न प्रेमाख्यान" आदि। संस्कृत साहित्य में "भैरव रथी", "सुमनोहरा" और "वासवदत्ता" आदि प्रेमाख्यान उपलब्ध होते हैं। संस्कृत के कालिदास द्वारा "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" नाटक द्वारा "शकुन्तला-दुष्यन्त" की प्रेमगाथा तो आज काव्य-प्रसिद्ध है। "वाण भट्ट" की "कादम्बरी" द्वारा संस्कृत साहित्य तथा उसके परकी साहित्यों में प्रेमगाथाओं की एक अटूट परम्परा चल पड़ी। उपनिषद्ओं में भी अनेक प्रेमगाथाएं भरी पड़ी हैं जैसे "गागी" और "वाज्रवल्क्य", "सत्यकाम और वावालि", "अहल्या और इन्द्र प्रभृति" आदि की मनोहर प्रेमगाथाएं उपनिषद्ओं को सुन्दर बना देती हैं। रामायण और महाभारत में तो अनेकानेक प्रेमाख्यान वर्णित हैं। महाभारत में "अर्जुन-सुभद्रा", "भीम-हिडिम्बा" तथा "दुष्यन्त - शकुन्तला" के प्रेम-प्रसंग प्राप्त होते हैं।

अपभ्रंश साहित्यमें बंन मुनियों द्वारा रचित चरित काव्य भी पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानोंक रूप ही हैं। वास्तव में प्रेमाख्यानोंक काव्यों की परम्परा भारतवर्ष में अत्यधिक प्राचीन है- संस्कृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत "कथा सरित् सागर", "गुह्यादय की वृक्षकथा", "वृक्षकथा-श्लोक संग्रह", "पञ्चतन्त्र", "पेंताल पंचविंशतिका", "लियोपदेश", "शुक सप्तति", "वृक्षकथामञ्जरी", "सिंहासन दात्रिंशतिका", "वृक्षकथा कोण", "कादम्बरी", "पेंताल कथा", "वासवदत्ता", "फुलीकथा" आदि ग्रन्थों का अत्यधिक महत्त्व है।

संदोष में हम कह सकते हैं कि प्रेमात्मानों की प्रेम परम्परा कवेद से प्रारम्भ होकर उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत, नीति मञ्जरी, भागवत, वेदार्थ-दीपिका, ब्रह्मदेवता आदि संस्कृत के हिन्दू-धार्मिक ग्रन्थों में प्रवहमान होकर संस्कृत साहित्य में पूर्णरूपेण सुषमा एवं सौन्दर्य को प्राप्त होती हुई मुद्रित हुई तथा उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया कविवर जालिदास ने ।

प्रेमात्मानों (भारतीय) की एक सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इन गाथाओं में विवाह-पूर्व स्वच्छन्द प्रेम का निरूपण हुआ है, इस प्रेम के अन्तर्गत नायक-नायिका एक-दूसरे के प्रेम में इतने अधिक तल्लीन रहते हैं कि उन्हें इच्छोक और पराङ्मुखि की चिन्ता और खबर नहीं रहती, वे विवाह की उपेक्षा करते हुए स्वप्नित, आल्पनिक और उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द प्रेम पूर्ण जीवन व्यतीत करने के इच्छुक प्रतीत होते हैं। इन सभी गाथाओं में नायिका को प्राप्त करने के लिए नायक को अनेक संघर्षों, समस्याओं, कठिनाइयों और बाधाओं को झेलना पड़ता है । यहाँ तक कि अपनी प्रेयसी की प्राप्ति के लिए नायक स्त्री प्रती को युद्ध तक करना पड़ता है।

भारतीय प्रेमगाथाओं के अन्तर्गत केवल 'सतीता और राम' की कथा ही ऐसी है जोकि विवाह की मर्यादाओं का पालन करती है और अनेक भारतीयों की दृष्टि में एक आदर्श प्रेमगाथा है जिसमें भारतीय हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का पूर्ण-रूपेण निवाह हुआ है । किन्तु रामायण का सतीता-राम प्रेमात्मान एक अपवाद है जब स्वयं कीर्तुणा की प्रेमगाथाएं स्वप्न-वर्णन तथा स्वच्छन्दता पर आधारित हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो भारतीय प्रेमात्मानों में केवल सतीता-राम प्रेमगाथा को ही पूर्ण भारतीय मानते हैं। अन्य गाथाओं पर उन्हें विदेशी शाप दृष्टियोंपर होती है ।

भारतीय प्रेमात्मानों की परम्परा का सूत्रपात वेदों से हुआ था और आगे चलकर इसकी धारा निरन्तर अन्य भाषाओं के ग्रन्थों एवं साहित्यों में प्रवा-

लित होती रही। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य में प्रेमाख्यानों का विकास भरपूर विद्यमान है। इसी धारा का प्रारंभ रूप लें जाने सहज हिन्दी प्रेमाख्यानों तथा सूफी प्रेमाख्यानों में दृष्टिगोचर होता है।

बाण भट्ट की कादम्बरी में जन्म-जन्मान्तर तक रहनेवाले कलदाण एवं कालावयुक्त प्रेम का वर्णन किया गया है।

“प्रेम एक ऐसी अनुभूति है जिसमें ‘प्रेमी’ सब कुछ भूलकर केवल ‘प्रेयसी’ को ही स्मरणा करता है। उसे प्रत्येक वस्तु, कार्य, जिन, दृश्य, अवस्था में केवल प्रियतमा के ही दर्शन होते हैं, यहां तक कि वह अपनी प्रेयसी की याद में सारे संसार को यहां तक कि स्वयं तक को विस्मृत कर बैठता है। किसी ठावर ने ठीक ही कहा है—

“याद में तेरी दुनिया को भूलता जाता हूं मैं।

भूलने वाले कभी तुझको भी याद आता हूं मैं ॥”

अथवा

“छिछ के आइने में है तस्वीर-ए-बार।

जब ज़रा गदर्न भुकाई देल ली ॥”

यही मनःस्थिति या कैफ़ियत लें काठियास के ‘मेघदूत’ के ‘यदा’ में उपलब्ध होती है जब वह निर्व्यासित होकर अपनी प्रियतमा से हजारों कोस दूर है और मेघ को देखता है तो प्रेमावेश में यह तक भूल जाता है कि मेघ एक निर्जीवि वस्तु है यह कैसे उसका संदेश उसकी प्रियतमा तक पहुंचाएगा? इसी प्रकार के उन्मत्त प्रेम से परिपूर्ण है भारतीय प्रेमाख्यान। काठियास की ‘कुमार संभव’, ‘अभितान शाकुन्तल’, ‘किष्कीयणीय’ आदि महान् रचनाओं में ऐसे ही उत्कट एवं स्वच्छंद प्रेम या रोमांस को चित्रित किया गया है।

ऐसा नहीं है कि काठियावाड़ के साथ ही यह प्रेम प्रसंग समाप्त हो गया हो, हम देखते हैं कि पौराणिक प्रेमास्थानों में भी एक से एक सुन्दर एवं उत्कृष्ट प्रेम प्रसंग जैसे पुरुरवा-उर्वशी, कल-दमयन्ती, दुष्यन्त-सन्तुता, उषा-अनिरुद्ध के अतिरिक्त श्रीकृष्ण-रुक्मिणी, प्रद्युम्न-मायावती, अर्जुन-सुभद्रा, विजय-उलूपी, भीम-हिडिम्बा जैसी प्रेमगाथाएं एवं प्रेम प्रसंग उपलब्ध होते हैं जिनोंने अपने परवर्ती साहित्य को बहुत प्रभावित किया है।

पाणि की प्रसिद्ध "वातक-कथाओं" में भी प्रेम प्रसंग उपलब्ध होते हैं जैसे- "कटुहारि-वातक", "मणिचौर वातक", "वासक वातक", "महापद्म वातक" आदि। बाँद "धेरी गाथा" में भी अनेक नारियों की प्रेमगाथाएं वणिक्ति की गई हैं।

ज्ञान पंचमी कथा, कुवलयमाला, सुरसुन्दरीचरित आदि जैन कवियों की प्राकृत भाषा की रचनाओं में भी प्रेम की अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं।

अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत सभी ग्रन्थों जैसे- "कण्व्या", "सरस्वा", "परमान्वत्पा प्रकाश", "भोगसार", "पाहुं दोहा", "सिद्धेश", "सन्देश रासक" आदि प्रभाव हिन्दी के प्रेमास्थानक काव्य एवं साहित्य पर अवश्य ही पड़ा है। अपभ्रंश चरित काव्यों- जैसे "फडन सिरिठ चरित", "महापुराण", "फडन चरित", "नेमिनाह चरित", "हरिवंश पुराण" आदि एक न एक प्रमाणात् तो अवश्य ही वणिक्ति की गई हैं।

भारतीय प्रेमास्थानों की यह परम्परा वैदिक युग से लेकर अपभ्रंश युग तक निरन्तर अग्रसर रही। समय-समय पर इस परम्परा में अनेक रूप परिवर्तन होते रहे, नवीन प्रवृत्तियों का समावेश होता रहा, किन्तु प्रेमास्थान धारा अविच्छिन्न ही बनी रही। इसका प्रचलन अनेक भारतीय भाषाओं में हुआ, जिनमें गुजराती, राजस्थानी, अवधी, ब्रज, मैथिली और कंठा प्रमुख हैं। इसका आधुनिकतम रूप

सही जोड़ी हिन्दी तथा उर्दू में भी उपलब्ध होता है।

प्रेमाख्यान का अर्थ-

फ़ारसी सूफ़ी प्रेमाख्यानों के सम्बन्ध में कुछ कहने से पूर्व "प्रेमाख्यान" का अर्थ समझ लेना आवश्यक है।

शब्दकोशों ने "आख्यान" शब्द के निम्नलिखित अर्थ प्रस्तुत किए हैं-

- १- कथा
- २- कथन
- ३- निवेदन
- ४- कहानी
- ५- आख्यायिका आदि।

संस्कृत में आख्यायिका, कथा, गाथा और आख्यान आदि शब्द विद्यमान हैं जो कहानी के ही पर्याय हैं। संस्कृत में इन शब्दों का प्रयोग विशिष्ट ग्रन्थों के लिए होता है। प्राचीन समय में कथा शब्द का प्रयोग कल्पित प्रेमाख्यान के लिए होता है था, ऐतिहासिक प्रबन्धों के लिए आख्यायिका शब्द का प्रयोग किया जाता था, पौराणिक गाथाओं के आख्यान शब्द प्रयुक्त होता था- इन पौराणिक कथाओं में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय रहता था। हिन्दी के प्रेम-प्रबन्धात्मक ग्रन्थों में इन तीनों रूपों को अपनाया गया, किन्तु सबसे अधिक लोकप्रिय "आख्यान" ही हुआ। "आख्यान" शब्द प्राचीन काल में पुराण के लिए भी प्रयुक्त होता था। इन पुराणों के बीच जाने वाली अन्तर्कथाओं को "उपाख्यान" कहा जाता था। आख्यानों में वर्णित कथाओं का रूप प्रायः इतिवृत्तात्मक होता था। प्राचीन आख्यानों में वर्णित कथा की विषयवस्तु बहुधा प्रेम-प्रधान होती थी। इन प्रेमाख्यानों में

झुंगार वर्णन अधिक होता था और वे अधिकतर सुज्ञान्त होते थे, किन्तु कुछ रचनाकार दुःखान्ता "आत्मान" भी प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार के प्रेमात्मानों के दर्शन कामे लकर सुफली साहित्य में होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऐसी कथाएं जिनमें उत्कट प्रेम-प्रसंग वर्णित किए गए हों तथा जिनमें "झुंगार" "संयोग" और "वियोग" दोनों पदों का निर्वाह हो और जिनका उपसंहार या अन्त या तो सुज्ञात्मक हो या दुःखात्मक-प्रेमात्मानों की कोटि में आती है। ये प्रेमात्मान भारतीय साहित्यिक परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ होकर आज तक जारी है, प्रेमात्मानक साहित्य का स्वर्णयुग हिन्दी काव्य का "सुफली युग" था।

ऐसा नहीं है कि प्रेमात्मान केवल भारतीय साहित्य में लिखे गये अपितु विश्व की लगभग सभी भाषाओं में हमें प्रेमात्मान उपलब्ध होते हैं, किन्तु सबसे सुन्दर रचनाएं जो अरबी और फ़ारसी सुफली साहित्य में उपलब्ध होती हैं और जिनका प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में हमारे हिन्दी सुफली काव्य पर अवश्य ही पड़ा है।

फ़ारसी सुफली प्रेमात्मान और कवि

फ़ारस अथवा ईरान वह देश है जहां सुफली साधना का अत्यधिक विकास हुआ। इसी देश से अनेक सुफली साधक अन्य देशों को गये और उन्होंने तसव्वुफ़ के साथ ही साथ इस्लाम धर्म का भी प्रचार एवं प्रसार किया। किन्तु विश्व के अन्य देशों के इसी हास की भांति ईरान में भी सन् 200 ई० से सन् १५00 ई० तक विदेशी आक्रमणकारियों ने नरसंहार किया तथा स्वयं ईरानीयों ने स्वतंत्रता-प्राप्ति हेतु अनेक संघर्ष किये और इस देश की राजनीतिक दशा के साथ ही साथ सामाजिक एवं धार्मिक दशाएं भी अस्त-व्यस्त रहीं। ऐसी परिस्थितियों में प्रत्येक देशवासी सब कुछ त्याग कर राष्ट्र-कल्याण के सम्बन्ध में ही विचार करने लगता है और स्वार्थ-

परता त्याग देता है। वही कारण है कि हीरान में भी धीरे-धीरे "सूफ़ी साधना" का स्थान "सूफ़ी-काव्य" ने ले लिया। इस प्रकार "तसव्वुफ़" के वर्यायियों ने साधना के मार्ग को त्यागकर "जानन्क़ागी" काव्य-साधना का चरण कर लिया।

फ़ारस के सूफ़ी-काव्य को स्वभावतः फ़ारसी भाषा मिली, जो विश्व की प्रमुख साहित्यिक भाषाओं में से एक है। शाहीनता, व्यंगना सौन्दर्य, कोमलता, भाव गाम्भीर्य आदि इस फ़ारसी भाषा के प्रमुख गुण हैं। फ़ारसी के सूफ़ी कवियों ने सुन्दर एवं आकर्षक रूपक, सूक्ष्म उपमाएं तथा अच्छे व्यंग्यों द्वारा अपने क काव्य को सजाया-संवारा है।

जैसा कि पीछे भी उल्लेख किया जा चुका है कि सूफ़ी साहित्य के तीन प्रमुख रूप - सिद्धान्त निरूपण, साहित्य, सूफ़ियों की जीवनियां और काव्य-साहित्य - हैं। वास्तव में सम्पूर्ण सूफ़ी-साहित्य में सर्वाधिक गुण सम्पन्न सूफ़ी काव्य ही है। इसी सूफ़ी काव्य के द्वारा ही तसव्वुफ़ एवं सूफ़ियों को कृतार्थ स्वाति प्राप्त हुई है। यदि यह कहा जाये कि "सूफ़ी-काव्य" में जो "सत्य" प्रतिपादित हुआ है वह "हस्तामी-साहित्य" में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता तो कोई अत्युक्ति न होगी।

सूफ़ी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अनेक कट्टरफंसी उनको "काफ़िर", "बेदीन" और "मुल्लि" मानते हुए भी उनकी तथा उनके काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। सूफ़ी काव्य में जिस जानन्द की प्राप्ति होती है या जो प्रेम-प्रसंग आते हैं वे अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। सूफ़ी काव्य की नींव "इश्क" है। उनका यह इश्क "अथवा" प्रेम "अनिर्वचनीय" है और "ब्रह्मानन्द-सहोदर" है। उनके काव्य का प्रेम प्रवाह अतमय है जोकि लोगों को बेसुद (जात्मविमूत) बना देता है।

सुफ़ी काव्य में 'इश्क' या 'प्रेम' की अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। सुफ़ियों के अनुसार 'ब्रह्माह' (परमात्मा) से 'इश्क' (आत्मा) का मिलन 'इश्क' (प्रेम) द्वारा ही हो सकता है। सुफ़ी कवि 'लौकिक प्रेम' द्वारा 'लौकिक प्रेम' की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। उन्होंने अपने इस वर्णन में रहस्यात्मक ढंग को अपनाया है। सुफ़ी कवियों ने अपनी कविता में 'शाकि', 'साकु', 'लव', 'जान', 'साकी', 'फैना', 'शराब', 'सबाब', 'बुलफ़' आदि शब्दों का बहुत प्रयोग किया है, इन शब्दों को बाद के सुफ़ी कवियों ने 'साकेतिक रूप' में प्रस्तुत किया। सुफ़ी साधक अपनी साधना के दौरान इतने अधिक मस्त हो जाते थे कि वे 'हलोक' और 'परलोक' सबको भूलकर भ्रमने लगते थे, उनको अपना 'होश' बिल्कुल भी नहीं रहता था, उनकी यह अवस्था 'सा' के द्वारा होती थी और उनकी इस दशा या अवस्था को 'हाल' (भावविष्टावस्था) कहा जाता है। जब किसी सुफ़ी को 'हाल' हो जाता है तो इस्लाम मतलब यह लिया जाता है कि वह सब कुछ भूल कर 'बेतुदी' के आलम में है और यही 'इश्क' की परम पराकाष्ठा है।

सुफ़ी कवियों ने अपने काव्य को कुछ ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया है कि उसको पढ़ने या सुननेवाला व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप उसके अर्थ को समझ कर आनन्द विभोर हो उठता है- जैसे 'बुलफ़' शब्द का अर्थ साधारण व्यक्ति 'क्या' लेता है किन्तु सुफ़ी साधक इसका साकेतिक अर्थ 'ब्रह्माह' से सम्बन्धित 'रेख्य', 'लव' का साधारण अर्थ 'गाछ' विशिष्ट अर्थ 'दृष्टि' (कायनात), 'साकी' का साधारण अर्थ 'नदिरा फिलाने वाला' - विशिष्ट अर्थ - 'पीर', 'मुहिद' या 'गुरु' आदि को अपने संस्कारों के अनुसार ग्रहण करके रसिक या सङ्ख्य भाव-विभोर होता है। फ़ारसी साहित्य बहुत व्याख्यात्मक है, इस भाषा के कवि रत्न, अतिशयोक्ति, उपमा, अपह, प्रतीक आदि अंकारों का सुंदर प्रयोग करते हैं। सुफ़ी काव्य में लौकिक प्रेम एवं शब्दों के पीछे एक लौकिक अर्थ

एक गुप्त संदेश छिपा रखा है। फ़ारसी कवियों की एक अन्य प्रमुख विशेषता उनकी शैली है। फ़ारसी के सूफ़ी कवियों ने भी इस विशिष्ट शैली को अपनाकर अपने काव्य के द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय केवल सूफ़ी सिद्धान्तों का प्रदर्शन किया है, उनकी व्याख्या की है। उनकी कविता का उद्देश्य मनोरंजन के साथ कोई-न-कोई संदेश देना भी था। सूफ़ी कवियों ने अपने काव्य को फ़ारसी काव्य परम्परा के अनुकूल मसनवियों, रुबाइयों और गुज़लों में प्रस्तुत किया है।

‘मसनवी’ का आकार बड़ा होता है। इसके शब्दों के पद पूर्ण स्वतंत्र और तुकान्त होते हैं। प्रेमाख्यान, उपदेशात्मक तथा धार्मिक ग्रन्थ मसनवी में ही लिखे जाते हैं। आध्यात्मिक भावों से प्रेरणा प्राप्त करके अनेक मसनवियाँ लिखी गई हैं। बसवविश्व मसनवी पद्धति पर लिखे हुए ग्रन्थ समृद्ध होते हैं। इनमें सर्वप्रथम ‘हुदा’ (परमात्मा) का गुणानुवाद रखा है और फिर ‘फैसल मुहम्मद’ सात्वत का स्मरण और उनके फ़तारों का उल्लेख किया जाता है। तत्पश्चात् शहशाहे-बक या कि ‘बुल्ल’ की प्रशंसा की जाती है जिसके नाम पर कवि द्वारा रचना को समर्पित किया जाता है। मसनवी प्रत्येक लण्डों में विभक्त रहती है और प्रत्येक लण्ड का शीर्षक वणिक्ति विषय, व्यक्ति, घटना या स्थान से सम्बन्धित रहता है। काव्य के अङ्ग में कवि अपने उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए रचना या मसनवी के मूल भाव को स्पष्ट करता है। यदि कोई कवि एक ही कृति में पाँच मसनवियाँ लिख दे तो उस मसनवी ग्रन्थ माला को ‘हुम्स’ कहा जाता है। फ़ारसी में ‘लैला-मजनूँ’, ‘शीरी-सुसरो’, ‘बायिक - अरार’ और ‘युसुफ - जुलैसा’ की कथाओं पर आधारित मसनवियों की रचना हुई है। इन मसनवियों को फ़ारसी प्रेमाख्यान की संज्ञा दी जाती है।

उपरोक्त कथाओं में प्रसिद्ध कवि ‘निज़ामी’ ने ‘सुफ़ियाना’ रंग भरकर अपनी प्रतिभा का परिचय था। निज़ामी ने पाँच प्रसिद्ध मसनवियों की रचना की है—
१- शीरी-सुसरो २- लैला-मजनूँ ३- मसज़ुल-अरार ४- लफ़्त फैर, और

५- इस्कन्दरनामा । ख़रत जमीर ख़ुरो ने निज़ामी को अपना आदर्श माना है ।
 अनेक फ़ारसी और भारतीय कवियों पर "निज़ामी" का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर
 होता है। "निज़ामी" ने ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित क्लृप्तांग प्रेम के छोटे-छोटे
 गीतों की रचना भी की है ।

फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि ज़ामी "ने भी "निज़ामी" को अपना आदर्श
 माना है ।

मुहम्मद इब्न मुस्लेह बिन अक्कल ह "सादवी" फ़ारसी साहित्य में एक
 विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होंने बड़े पीर साहब मोलान अक्कल काबिर बीलानी
 से शिदा ग्रहण की थी । उक्त शताब्दीन सुहरवर्दी के सम्पर्क में भी वे आये। उन्होंने
 इराक, अरब, सीरिया, भारत आदि अनेक देशों का उनभा तीस वषों तक भ्रमण
 किया । सन् १२५६ में वे वापिस शीराज़ लौटे । तत्पश्चात् उन्होंने दो प्रसिद्ध ग्रन्थों
 की रचना की जिनके नाम हैं- १- गुलिस्तां और २- बोस्ता । ये दोनों ग्रन्थ
 फ़ारसी का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करनेवालों के लिए आवश्यक पाठ्य ग्रन्थ हैं। "बो-
 स्तां" सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ है जबकि "गुलिस्तां" गवकाव्य की कोटि में आता है।
 सादवी ने अत्यन्त लोकप्रिय ग़ज़लों की रचना की है ।

तेरकी ज़ताब्दी में ही "महमूद शबिस्तारी" भी हुए । उन्होंने ग़ुलशन-
 राव "नामक मसनवी की रचना की । यह एक छोटी सी दार्शनिक सिद्धान्तों पर
 आधारित मसनवी है। इसमें "मैं" और "तू" (साक और परमात्मा) के बीच
 लभेद स्थापित किया गया है ।

स्वाजा शम्सुद्दीन "हाफ़िज़" समान रूप से फ़ारस और भारत में प्रसिद्ध
 हैं। इनकी रचनाओं में लौकिक प्रेम से सम्बन्धित प्रतीकों और सांसारिक प्रतीकों का
 कुछ ऐसे अन्दाज़ से प्रयोग हुआ है कि अनेक विद्वान् उन्हें तसव्वुफ़ के रंग में रंगा
 नहीं मानते । "दीवाने- हाफ़िज़" की कवितारं स्थूल रूप में तो सुरसि और सुरा

में दूरी कुं दिलाई' होती हैं, पर सुफ़ी उन्हें आध्यात्मिक पदों निकाल सकता है। हाफ़िज फ़ारसी के सर्वश्रेष्ठ एवं सच्चे कवि थे। उनकी 'लिस्सानुल ग़ुब' भी कहा जाता है। उनकी रचनाओं से उनके आलोचक भी प्रभावित होते थे। हाफ़िज ने ही ग़ज़ल को उसका सही स्थान दिखाया है। उन्हें सबसे अधिक प्रेरणा 'दुर्रान शरीफ़' से प्राप्त होती थी। उन्होंने अपने काव्य में स्वर्गिक रहस्यों तथा रहस्यवादी एवं दार्शनिक तथ्यों का मिश्रण प्रस्तुत किया है।

'बख़्शी' भी एक अच्छे सुफ़ी कवि थे, किन्तु उनके काव्य में तसव्वुफ़ के आध्यात्म सम्बन्धी स्वरूप के दर्शन नहीं होते हैं। 'बख़्शी' के काव्य में उत्कृष्टोक्ति का प्रकृति चित्रण हुआ है। वे अपनी ग़ज़लों के द्वारा प्रेम-अग्नि के दलितों के रूप को प्रस्तुत करते हैं। बख़्शी की मसनवी का नाम 'फ़रहाद-शीरी' है।

प्रसिद्ध कवि 'जामी' का नाम मुल्ला मूउद्दीन अब्दुल रहमान था। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। 'नफ़ाहलुल उंस' में जामी ने सुफ़ी साधकों के जीवन वृत्ति के साथ ही सुफ़ी सिद्धान्तों की भी चर्चा की है। जामी ने अनेक मसनवियों की रचना की जिनमें सबसे उत्कृष्ट एवं प्रसिद्ध है- 'यसूफ़-ओ-ज़ुलैखा'। जामी ने रहस्यवाद, कर्मशास्त्र, अरबी, व्याकरण और इन्हीं का परिचय प्रस्तुत करनेवाले अनेक ग्रन्थ लिखे। जामी के गीतों के तीन दीवान भी उपलब्ध हैं। जामी 'बख़्शी' को 'परम-सौन्दर्य' मानने के साथ ही यह भी कहते हैं कि उस 'परम सौन्दर्य' तक पहुँचने का एकमात्र साधन लौकिक सौन्दर्य है। जामी के अनुसार लौकिक सौन्दर्य वास्तव में परम-सौन्दर्य (बख़्शी/परमात्मा) का व्यक्त रूप है। अतः संसार की सुन्दरता को सर्वप्रथम प्राप्त करना चाहिये, विषय-वासना आदि से विमुक्त होकर ही इस सौन्दर्य की प्राप्ति की जा सकती है और इसी लौकिक सौन्दर्य को प्राप्त कर के ही साधक उस परम सौन्दर्य तक पहुँच सकता है।

सुफ़ी प्रतीक -

ऊपर संक्षेप में फ़ारसीभाषा के प्रमुख सुफ़ी कवियों और फ़ैसलानों का उल्लेख किया गया है। इन सुफ़ी कवियों के परिचय के साथ ही साथ यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम उन सुफ़ी कवियों द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष प्रतीकों से भी अवगत हों तथा उनके साधारण एवं विशिष्ट सांकेतिक अर्थों को समझने का प्रयास करें। १७वीं शताब्दी के एक फ़ारसी भाषा भाषी सुफ़ी विद्वान् ने अपने लघु ग्रन्थ "रिसालह-ए-मिशवाक" में फ़ारसी सुफ़ी कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के सांकेतिक अर्थ प्रस्तुत किये हैं। इन विद्वान् का नाम था "मुहसिन फ़ैज काशानी।"

हम यहाँ पर निम्नलिखित सांकेतिक अर्थ "सुफ़ीहिज़्म" के पृष्ठ संख्या ११३-११५ और "सुफ़ी मत साधना और साहित्य" के पृष्ठ संख्या ५२४ के आधार पर प्रस्तुत कर रहे हैं-

- शब्द - **रुख** साधारण अर्थ- बुल, गाल, कपोल, चेहरा
 सांकेतिक अर्थ- परम सौन्दर्य (जलाह), ऐश्वर्य ज्वाहिर कृपा कृपा, क्या कृता, सरलता, जीवन, दान, उदारता, प्रकाश, पथ-प्रदर्शन, परम सत्य आदि की अभिव्यक्ति।
- शब्द - **कुत** साधारण अर्थ- गाल में पड़ने वाला गद्दा।
 सांकेतिक अर्थ- वाक्यात्मिक ढंग से सत्य की अभिव्यक्ति।
- शब्द - **हाल** साधारण अर्थ- तिल
 सांकेतिक अर्थ- एकत्व का वास्तविक एवं निश्चित बिन्दु, जो गुप्त होने के कारण काला प्रकट किया जाता है।
- शब्द- **बुलफ़** साधारण अर्थ- लट, लटक
 सांकेतिक अर्थ- परम - ऐश्वर्य के सर्वशक्तिमान् स्वरूप की अभिव्यक्ति, ज्वाहिर उसका सकीन ही, सकीनही, महाकाल, अंधकार, परम सत्य का क्षिप्त होने वाला, ऐन्द्रजालिक गुण आदि।

- शब्द - चरम साधारण अर्थ- बाँस, नेत्र
 सांकेतिक अर्थ- परमात्मा का अपने वासों के लम्बान को फैलना।
- शब्द- ज्वर साधारण अर्थ- भौंह , चितवन ।
 सांकेतिक अर्थ- कलहाह (परमात्मा) की सिफ़ूस (गुण) को उसकी ज्ञात (सत्त्व) को बिपाये रहता है ।
- शब्द- गुम्फ साधारण अर्थ- बाँस से इतारा करना
 सांकेतिक अर्थ- संताप के परचाह का ध्यात्मिक ज्ञान्ति की परमात्मा द्वारा स्वीकृति क्यवा ज्ञान्ति के परचाह-संताप का प्रतिपादन करना ।
- शब्द - लव साधारण अर्थ- हाँठ, जोँड
 सांकेतिक अर्थ- परमात्मा का जीवनदायक और मानव चरितत्व की रक्षा करने का स्वभाव ।
- शब्द - तंग दहन साधारण अर्थ- संकुचित मुह
 सांकेतिक अर्थ- ये तात्पर्य होता है कि मानव का उद्गम कदुरय है ।
- शब्द - शराव साधारण अर्थ- मधिरा, सुरा ।
 सांकेतिक अर्थ- प्रियतम के कर्न-अन्य अनुभव से उस भावा-विष्ठावस्था का उत्पन्न होना जिसमें तर्क सक्ति का लोप हो जाता है।
- शब्द- साकी साधारण अर्थ- शराव पिलाने वाला
 सांकेतिक अर्थ- सत्य , जो स्वयं को सभी व्यक्तियों में प्रकट करना पसन्द करता है ।

शब्द - ज्ञान	साधारण अर्थ- प्याला
	सांकेतिक अर्थ- देवी गुणों का प्रकाशन
शब्द - चुन्द, कुम	साधारण अर्थ- घट, कलश
	सांकेतिक अर्थ- परमात्मा के नामों और गुणों का प्रकाशन ।
शब्द- बसर, कुलपुत्र	साधारण अर्थ- समुद्र, महासागर
	सांकेतिक अर्थ- परम-सत्य का प्रकाशन
शब्द- सुमरवानह	साधारण अर्थ- गुम्बद
	सांकेतिक अर्थ- समस्त दृश्य और अदृश्य जगत्, जो परमात्मा की सेवा की श्राव तथा परमात्मा के प्रति बन्धनात् प्रेम धारण किये हुए हैं। जगत् का कण-कण अपनी भाव-शक्ति-शक्ति एवं प्रवृत्ति विशेष के अनुसार परमात्मा की प्रेम-मदिरा से उवाळकर भरा हुआ "पैमाना" है ।
शब्द- तुरावात	साधारण अर्थ - मधुशाला, सराव ।
	सांकेतिक अर्थ- शुद्ध सत्त्व ।
शब्द- तुरावाती	साधारण अर्थ- मधुशाला का पथिक
	सांकेतिक अर्थ- वह अन्य प्रेमी जो विवेक की शृंखला से यह समझ कर मुक्त हो कि प्रत्येक पदार्थ के सभी गुण-कर्म देवी गुण-कर्मों में लय हो जाते हैं ।
शब्द - बहक्त	साधारण अर्थ - सक्ता
	सांकेतिक अर्थ- जेद और गुणारक्ति
शब्द - कुत	मूर्ति
	सांकेतिक अर्थ- परमात्मा को झोड़कर अन्य उपास्य। कभी-कभी इसका प्रयोग देवी-साम्बन्ध की ओर संकेत करने के लिए

भी दिया जाता है। कभी इसका अभिप्राय कामिल (पूर्ण मानव) से तो कभी उस मुर्शिद (गुरु) से होता है जो अपने धर्म का "कुतुब" (ध्रुव-स्तम्भ) होता है।

शब्द- गुन्नार

साधारण अर्थ- मेतला, कटिसूत्र

सांकेतिक अर्थ- जाहा-पाठन और सेवा भाव स्वीकार करने का प्रतीक है।

शब्द- कुफ़-ए-
झकीकी

साधारण अर्थ- सच्ची नास्तिकता

सांकेतिक अर्थ- परमात्मा के विभिन्न रूपों की सत्ता में एकता और अन्वेष प्रकट करना।

शब्द - तरसाई

साधारण अर्थ- परमात्मा का भय, परमात्मा की भक्ति

सांकेतिक अर्थ- पाठण्ड पूर्ण पारस्परिक विश्वासों (तकलीद) के बन्धन से मुक्ति अर्थात् रिवाजों और लाकड़ों की जंजीर तोड़ देना।

उपरोक्त प्रतीकों के सांकेतिक अर्थ मुहसिन फ़ौज़ जाहावी ने अपने अनुमान के आधार पर ही प्रस्तुत किये। कोई आवश्यक नहीं कि ये सभी अर्थ एकदम सही हों। हो सकता है कि सुफ़ी कवियों ने कोई अन्य सांकेतिक अर्थ इन प्रतीकों के किये हों। अतः सुफ़ी काव्य का अध्ययन बड़ी सतर्कतापूर्वक करना चाहिये।

चौदहवीं शताब्दी में तसव्वुफ़ के फतन के उदात्त विचार देने लगे थे जबकि तेरहवीं शताब्दी में सुफ़ी साधना अपने चरमोत्कर्ष पर थी। धीरे-धीरे सुफ़ी साधकों ने शारीरिक साधना का त्याग करके वाणी-साधना के द्वारा ही क़ुसर होना प्रारम्भ किया। पन्द्रहवीं शताब्दी में तसव्वुफ़ का एकदम फतन हो गया।

इस प्रकार सूफ़ी-साधना का पार्थिव शरीर तो नष्ट हो गया किन्तु उसकी आत्मा फ़ारसी और उर्दू काव्य में व्याप्त हो गई। फ़ारसी काव्य की परम्परा ही भारतीय उर्दू काव्य को प्राप्त हुई इसीलिए उर्दू शायरी सूफ़ियाना बन्दाबु लिये हुई है। भारतवर्ष के डाक्टर 'इक़नाउ' ने फ़ारसी सूफ़ी काव्य-पद्धति का अनुसरण करके 'अरार-ए-बुदी', 'रमू-ए-बेबुदी', 'क़ूर-ए-अक़म', 'अक़ीन-ए-हिबान' आदि मसनवियां लिखी हैं। भारत के उर्दू शायरों ने भी फ़ारसी शायरों की भांति सादी, सराव, मयताना, कुकु आदि का प्रयोग कर भाषों को उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी साहित्य में प्रेमास्थान -

भारतीय प्रेमास्थानों की जो धारा बौद्ध साहित्य से प्रभूत हुई थी वह निरन्तर क़सर होती रही। हिन्दी में भी संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि की भांति अनेक प्रेमास्थानों की रचनाएं हुईं जो हिन्दी-सूफ़ी प्रेमास्थानों से पूर्व की रचनाएं हैं। इन रचनाओं का भी यहां पर उल्लेख करना आवश्यक है।

अपभ्रंश में अनेक उच्छकोटि के प्रेमास्थान लिखे गये। 'स्वयंभू' रचित 'रामायण' (पद्य चरित) एक बृहत् महाकाव्य है जिसमें कवि ने वाक्य चरित्रों स्थापना की है। स्वयंभू ने अपनी इस रचना में नारियों का सौन्दर्य वर्णन अत्यधिक मार्मिक एवं जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया है। अपभ्रंश काव्यों अथवा प्रेमास्थानों का प्रभाव बाद के हिन्दू मुसलमान प्रेमास्थान अ रचयिताओं पर तथा उनकी कथाओं पर कृत्यन्त व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी के आदिकाल में रचित 'संदेश रासक', 'हमीर-रासो', 'बीसलदेव रासो' आदि रचनाएं प्रेमास्थान ही तो हैं। इन काव्यों में प्रेमास्थान के प्रभूत तत्त्व जैसे प्रोणित पतिका का संदेश, विरह निवेदन, आह्वान वर्णन आदि दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी में प्रेमास्थानों की परम्परा डोला माक़ बहा 'सक्य

सं० १७०० से प्रारम्भ होकर "प्रेमसोनिधि" सं० १६१२ तक निरन्तर जारी होती दृष्टिगोचर होती है। मध्ययुगीन मुसलमान कवियों की भांति हिन्दू कवियों ने भी अपना काव्य-साहित्य ऐतिहासिक, काल्पनिक, पौराणिक और लोककथाओं के आधार पर लिखा है।

हिन्दी में बहुचर्चित पौराणिक प्रेमालयान जैसे "उषा की कथा", "नल दमयन्ती कथा", "बेलि विष्णु लक्ष्मिणी री", "नल-चरित्र", "लक्ष्मिणी मंगल" आदि भी उपलब्ध होते हैं।

लोककथाओं तथा काल्पनिक आधार पर निर्मित प्रेमालयानों में प्रसिद्ध हैं- "मधुमालती", "प्रेम विमल", "ढोलानाद दूहा", "कामरूप चन्द्रकला कथा", "रमण साह", "हकीली भट्टिमारी कथा", "कामरूप-कथा", "मृगावती की कथा", "राजा चिन्मकुट की कथा", "चन्दनमलयगिरि वाता", "वातसायणी चारणी री" आदि।

ऐतिहासिक कथाओं में "रूप मंजरी" और "माधवानन्द कामकंठ" आती हैं।

जायसी ने अपने पञ्चाक्षर में कुछ प्रेम-कथाओं का उल्लेख किया है-

"बहु तन्ह रस जीउ पर लेला । तू जोगी केहि मांह लेला ॥
विजुन लेला प्रेम के बारा । सपनावति कह गल्ल पतारा ॥
सुदेवचन्द मुखावती लागी । कनपुरि होइ गा बरानी ॥
राजकुंवर कनपुर गल्ल । भिरगावती कह जोगी भरु ॥
साधा कुंवर मनोहर जोगू । मधुमालती कह कीन्ह विमोगू ॥
पेमाकी कह सुर सुर साधा । उरवा लागि अनिरुध बर बाधा ॥"

मलिक मुहम्मद जायसी की उपर्युक्त पंक्तियों से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, पं० ज्योत्सनासिंह उपाध्याय "हरिबोध" जैसे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जायसी द्वारा की गई सूची उनसे पूर्व लिखित हिन्दी के प्रेमाख्यानों की है। "विजयामृत", "उषा अनिरुद्ध", "सुधाकती", "मृगाकती", "मधुमालती" आदि की कहानियाँ इस देश में सुनों से लोक-प्रचलित हैं और इनमें से अनेक लिखित रूप में उपलब्ध हो चुकी हैं। कुछ रचनाएँ अभी तक अप्राप्त हैं किन्तु आशा है कि शीघ्र ही उनकी पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हो जाएंगी।

डा० हरिजनान्त जीवास्तव ने अपनी रचना "भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य" में भारतीय प्रेमाख्यानों को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया है -

- १- शुद्ध प्रेमाख्यान
- २- आन्यापदेशिक काव्य, और
- ३- नीति-प्रधान प्रेमाख्यान।

इन गून्चों की सूची यहाँ पर प्रस्तुत करना बहुत ही समीचीन है, क्योंकि इससे यह ज्ञात होता है कि ऐसा कहना या सोचना सरासर गलत है कि सूफियों ने ही सर्वप्रथम प्रेमाख्यान लिखे।

(क) शुद्ध प्रेमाख्यान -

- १- डोला माँ दूला - मूल रचनाकार अज्ञात है, कुल्लुभ नामक कवि ने इसमें चौपाइयाँ जोड़ कर इसे सुधारा है। इसका रचनाकाल सं० १००० से सं० १६१८ कि० है।
- २- बेलि छिछणा रुक्मिणी री- कवि महाराज भुवनेश्वरीराज, रचनाकाल १६४७
- ३- रस रतन - कवि मुकुन्द, सं० १६७५
- ४- द्वितीयां वाता- नारायणदास- जायसी से पूर्व रचित।

- ५- माधवानलकामकंदला - धिरधारीसिंह, बोधाकृत - सं० १८०६ - १८१५
 ६- माधवानलकामकंदला - गणपति, समय अज्ञात
 ७- माधवानलकामकंदला - दामोदर, सं० १७३७
 ८- माधवानलकामकंदला - राजकवि जेठ (नाटक), सं० १७१७
 ९- माधवानलकामकंदला - संस्कृत हिन्दी मिश्रित
 १०- बीसलदेव रासो - नरपति नारद, सं० १२१२
 ११- प्रेमविलास प्रेमलता कथा - बटमल नारद, समय अज्ञात
 १२- चन्द्र कुवारी की बात - सं०, संवत् १७४०
 १३- राजा बिष्णुकुट रानी चन्द्र किरन की कथा - अज्ञात
 १४- उषा की कथा - रामदास, सं० १८६४
 १५- उषा हरण - जीवनलाल नागर, सं० १८८६
 १६- उषा चरित - मुरलीदास, सं० १८१८
 १७- उषा चरित - बमकुंज, संवत् १८३१
 १८- रमणादास इक्कीली भठियारी की कथा - अज्ञात, सं० १६०५
 १९- बात सवाणी चारिणी की - अज्ञात
 २०- नल-दमयन्ती कथा - अज्ञात
 २१- प्रेम पयोनिधि - मुनेन्द्र, सं० १६१२
 २२- लक्ष्मिणी परिणय - महाराज रघुराज सिंह बूदेव, सं० १६०७

(ब) आन्यापदेशिक प्रेमालोक-

- २३- पद्मावती - अज्ञात, सं० १७२६
 २४- नल चरित्र - मुकुन्दसिंह, सं० १७६६
 २५- नल दमन - सूरदास, सं० १७१४
 २६- नल दमयन्ती चरित - सेवाराज, सं० १८५३
 २७- लला यजन - सेवाराज, अज्ञात

२८- रूप मंजरी - नन्ददास, सं० १६२५

(ग) नीतिप्रधान प्रेमाख्यान -

२९- मधुनालसी - कतुभुजदास, सं० १८३७

३०- माधवानलकामकंदता चौपाई- कुशलदास, सं० १६१३

३१- सत्यवती की कथा - हरिवरदास, सं० १५५८

३२- माधवानल आख्यान - ज्ञानन्दधर, अज्ञात

३३- माधवानलकामकंदता- जालन, सं० १६४०

उपर्युक्त सूची में कुछ प्रमुख प्रेमाख्यानों का ही उल्लेख किया गया। इसके अतिरिक्त भी हिन्दी में अनेक प्रेमाख्यान उपलब्ध होते हैं। जैसे-

- १- माधवानलकामकंदता - जालन
- २- स्वामि सनेही - जालन
- ३- प्रेम रसावली - गुलाम मुहम्मद
- ४- सुन्दरकली की कहानी - सुन्दरकली
- ५- कलक मुहुरी - कली कुतुबशाह
- ६- गुलशन-ए-हरद - नुसरती
- ७- बरकत फूलदान - इब्ने निहाती
- ८- मुहुफु कलक - निसार
- ९- किस्सा संफुलमुख कलीउज्जमान - गवासी
- १०- प्रेम रतन - फाकिह शाह
- ११- प्रेमवान जोत निरंजन - राजन
- १२- उषा चरित - मुल्ता गान्धीबख्त

इन स्वतंत्र रचनाओं के अतिरिक्त अनेक "जान" कवि ने "रत्नावली", "लता मंगल", "कलकमन्ती", "मुहुफुचरिता", "कनिकावती", "इबिलगर मौलानी",

“विश्व नां” “व” “देवल दे की कहानी”, “कामलता”, “रूप मंजरी”, “झीता”, “कनकाकती”, “मधुर मालती” का कवि बनेक प्रेमकथाएं लिखी हैं। इन कथाओं में वे कुछ तो सूफ़ी विद्वान्तों पर आधारित हैं किन्तु अधिकतर शुद्ध प्रेमास्थान हैं।

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमास्थान तथा उनका महत्त्व

वाचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य के आधिकांश का प्रारम्भ संवत् १०५० से मानते हैं तथा उनके अनुसार यह युग संवत् १३७५ तक चलता है। हिन्दी साहित्य के इस प्रारम्भिक युग को वीरगाथा काल के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस युग में कवि एवं रचनाकार अधिकतर इतिहास व कल्पना सम्मिश्रित रचनाएं लिखा करते थे। इस युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियां अपने साहित्य पर पूर्णरूपेण प्रभावित हो रही थीं। सत्काळीन कवि अपनी रचनाओं में जिस प्रेम-पद्धति का वर्णन करते थे वह अधिकतर वात्सलात्मक रूप लिए हुए होता था। राजा अपने अन्तःपुर में बनेक रानियों के रखे हुए भी दूसरे राजाओं की पुत्रियों का अपहरण करते थे, किसी भी सुन्दर नारी को वे अपनी वादना की तृप्ति का साधन मानते थे। सुन्दरियों की प्राप्ति के लिए क्यासामान युद्ध होते थे। ऐसे युद्धों में घोड़ा अपने पराक्रम का परिचय देते थे और इन सब काव्यों में उस राजा की कीर्ति यत्र-तत्र-सर्वत्र फैलती थी।

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमास्थानों की रचना उपर्युक्त युग के पूर्णरूपेण समाप्त हो जाने के उपरान्त ही हुई। भक्तिकालीन प्रेम पद्धति तथा वीरगाथायुगीन प्रेम-पद्धति में आकाश-पाताल का अन्तर है। सूफ़ी प्रेम पद्धति के अन्तर्गत सूफ़ी कवि एवं साधक आध्यात्मिकता को लेकर खड़े थे। उनके प्रेम का आदर्श अत्यधिक उच्च रूप लिए हुए होता था। हिन्दी साहित्य का मध्य युग एक उच्च एवं आदर्श भक्तिभावना से

परिपूरित है जिसमें निगुणोपासना के साथ ही गुणोपासना के भी दर्शन होते हैं और दोनों प्रकार की भक्ति के अन्तर्गत किसी न किसी प्रकार का प्रेम-भाव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है। सूफ़ी काव्य की प्रेम-पद्धति ईश्वरोन्मुखी है।

प्रारम्भिक सूफ़ी प्रेमात्मानों पर गत युग में लिखे गये प्रेमात्मानों का किसी न किसी रूप में थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य ही पड़ा है। वह सूफ़ी प्रेमात्मानों ने धर्म-विषय प्रेम और शौच का समावेश किया गया है जो हिन्दी के प्रारम्भिक प्रेमात्मानों के एकदम निकट है। किन्तु सूफ़ी प्रेमात्मानों की ऐसी एकदम भिन्न है जो कि सूफ़ी काव्य की अपनी एक मौलिक विशेषता है।

सूफ़ियों ने "प्रेम" और "प्रेम की पीर" को अत्यधिक महत्व दिया है, उनका यह प्रेम "परमात्मा" के प्रति है जो लोक-आवरण के रहते हुए भी एकदम अलौकिक है। सूफ़ी कवियों ने सर्वत्र इसी प्रेम को दर्शाया है।

हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी सूफ़ी प्रेमात्मान उपलब्ध होते हैं जैसे बंगाल के सूफ़ी कवियों ने सोलहवीं शताब्दी ई० में अपनी सुन्दर पांचाली रचनाएं लिखनी प्रारम्भ कर दी थीं। इनमें से कुछ प्रमुख रचनाएं निम्न-लिखित हैं-

- १- लैला मजनूं - मुहम्मद शान
- २- गुमावती - मुहम्मद शान
- ३- मनोहर मालती - जमीर खान
- ४- पद्मावती - कलाबोल
- ५- लोह चन्द्राणी - दाउद काशी

उपर्युक्त रचनाओं में सूफ़ी सिद्धान्तों के साथ ही सूफ़ी प्रेम पद्धति का भी पूर्ण निर्वहण हुआ है। इन प्रेमात्मानों की भाषा बंगाली है। इनमें परम्परागत

सूफ़ी रचनाशैली को अपनाया गया है।

इसी प्रकार पंजाबी भाषा में भी सूफ़ी साहित्य का निर्माण हुआ है। पंजाबी के मुस्लिम कवियों ने बड़े सुन्दर काव्य रूपक प्रस्तुत किये हैं जिनमें से उल्लेखनीय निम्नलिखित हैं-

- | | |
|------------------|-----------------------|
| १- हीरों-फ़ारहाद | २- छेला मजनू |
| ३- ससि -पन्नू | ४- हीर रांफा |
| ५- सालिनी महिवाल | ६- मिर्जा साहिबा आदि। |

बंगला और पंजाबी सूफ़ी कवियों की भांति उर्दू के सूफ़ी कवियों ने भी फ़ारसी की बख़्ख़ मसनवियों का अनुकरण किया है।

दक्कनी हिन्दवी (दक्षिणी उर्दू साहित्य) में भी अनेक प्रेमास्थान लिखे गये हैं। इन हिन्दवी प्रेमास्थानों पर सूफ़ी प्रेमास्थानों की शैली और कथा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। 'कमली', 'तख़्क', 'गवासी', 'शाहनी' आदि कवियों की 'हिन्दवी मसनवियों' का सूफ़ी साहित्य में अपना एक अलग महत्त्व है। दक्कनी हिन्दवी के सूफ़ी काव्य में 'कुली खुश साह' का नाम भी उल्लेखनीय है। 'कदम राव व पवन' और 'ख़ुश मुरतरी' दक्कनी हिन्दवी के प्रसिद्ध प्रेमास्थान हैं। दक्कनी हिन्दवी वाले सूफ़ी कवि अधिकतर राज दरबारी कवि होते थे। इसलिए उनकी रचनाएं अधिकतर अपने आश्रयदाताओं को प्रशन्न करने के लिए ही होती थीं। वे रचनाएं अधिकतर अरबी-फ़ारसी साहित्य को आधार बनाकर लिखी जाती थीं। अतः उनमें फ़ारसी शैली के ही यत्न अधिक होते हैं।

उर्दू साहित्य में भी उर्दू के सूफ़ी तथा अन्य कवियों ने अनेक उच्चकोटि के प्रेमास्थानक काव्य, मसनवियां, गज़ले, नज़्में और रुबाइयां लिखी हैं। उर्दू के सूफ़ी कवियों ने फ़ारसी काव्य शैली का ही अनुकरण किया है। उर्दू के आदि-कवि 'कली' एक सूफ़ी साधक थे। उनसे पहले के उर्दू कवि 'कुली खुश साह' और

‘मुहम्मद बखरी’ भी सूफ़ी ही थे। उसी युग के अन्य उर्दू कवि ‘जाराबू’, ‘आबक’, ‘मजहर’, ‘दर्द’, सोदा ‘जोर’ ‘मीर’ भी मूलतः सूफ़ी कवि थे। इनमें सूफ़ी का छिलछिला सा कब्र प्रसिद्ध सूफ़ी साधकों से मिलता है। उर्दू के उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त ‘अल्लामा’, ‘फ़ानी’, ‘अज़ीज़’, ‘ग़ालिब’, ‘फ़िर’, ‘अकबर’, ‘शेफ़ा’, ‘मीरख़ान’, ‘नासिब’, ‘ज़ाकि’, ‘आसिब’, ‘रासिब’, ‘कादम’ आदि कवियों ने सूफ़ी सिद्धान्तों पर आधारित प्रेमात्मक काव्यों की रचनाएं की हैं।

उर्दू के कवियों की रचनाओं में आध्यात्मिक गाम्भीर्य और ईश्वरीय प्रेम के स्पष्ट चरित्र होते हैं। उर्दू के कवि ज़र्रे-ज़र्रे में ‘सुदा’ का ‘नूर’ देखते हैं-

‘का में आकर इधर उधर देता ।

तू ही जाया नज़र बिधर देता ॥’ - (दर्द)

इस प्रकार उर्दू ने भी बहुत उच्चकोटि का सूफ़ी काव्य लिखा गया है। हम आगे उर्दू पर सूफ़ी प्रभाव तथा उर्दू के सूफ़ी कवियों पर व्याख्यापूर्वक चर्चा करेंगे। यहां पर तो हमें यह बताना आवश्यक था कि हिन्दी में जिस समय सूफ़ी प्रेमास्थान तथा सूफ़ी काव्य लिखा गया उसी समय या उसके पश्चात् भारत की अन्य भाषाओं कन्नडा, पंजाबी, बंकिनी हिन्दवी (उर्दू) और उत्तरी भारत की उर्दू में भी सूफ़ी साहित्य की रचना हो रही थी। किन्तु हिन्दी के सूफ़ी साहित्य और अन्य भाषाओं के साहित्य में काफी अन्तर है।

अन्य भाषाओं के सूफ़ी साहित्य को हिन्दी की सूफ़ी साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है क्योंकि वे साहित्य किसी एक प्रवृत्ति विशेष को ही लेकर चले हैं और उनके रचनाकार फारसी शैली का अनुकरण करते हैं। जबकि हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने फारसी शैली से बहुत कुछ अपनाते हुए भी अपने साहित्य को भारतीय परम्पराओं के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किया है। इन कवियों ने

अपनी रचनाओं के लिए भारत के उत्तरी प्रदेश की जनसाधारण-भाषा अवधी को ही अपनाया। अवधी में साहित्य सुनने से इन हिन्दी सूफियों की दूरदर्शिता का परिचय प्राप्त होता है। वे अपनी बात को अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुंचाना चाहते थे और ऐसा 'जनभाषा' के प्रयोग द्वारा ही संभव हो सकता था। इन कवियों ने 'दोहा-चोपाई' में कविता की ओर साथ ही साथ भारतीय वातावरण को सजीव बनाये रखा। हिन्दी सूफी प्रेमास्थानों द्वारा 'प्रेम-तत्त्व' के व्यापक रूप को समझने में सरलता हुई। इन ग्रन्थों की ही बसोझ थी, सम्प्रदाय और अन्य भेद-भावों को दूर करके एक अच्छे तथा आदर्श समाज की स्थापना में सहायता मिली। हिन्दी के सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा मनोरंजन तो किया ही किन्तु उनका सबसे बड़ा उद्देश्य लोक कल्याण था। 'शिकैरदातये' की इसी भावना को ध्यान में रखते हुए ही आचार्य सुलताने हिन्दी के कविानों ने मुसलमान सूफी कवियों द्वारा रचित प्रेमास्थानों को एक विशिष्ट स्थान हिन्दी साहित्य में प्रदान किया है।

हिन्दी के सूफी कवियों ने अपने प्रेमास्थानों में प्रमुख पात्र 'नारी' को रखा है और उसी के माध्यम से 'परम तत्त्व' का प्रतिनिधित्व कराया है। यही 'जल्लाह' के प्रति 'हकीकी इश्क' का 'केल्वा' है। नारी के प्रति पुरुष की आसक्ति एक स्वाभाविक बात है। विश्व के लगभग सभी ज्ञान-माने, साहित्यों के प्रसिद्ध प्रेम प्रधान ग्रन्थों में जो प्रेमगाथाएं उपलब्ध होती हैं, वे नर-नारी संबंधी हैं। किसी नारी प्रेयसी के प्रति आकर्षित होकर प्रेमी, पुरुष सब कुछ करने को उत्तम हो उठता है। यहां तक कि अपनी प्रेयसी की प्राप्ति के मार्ग में अनेक बाधा-नालों, बाधाओं, व्यवधानों का वीरतापूर्वक सामना करते हुए या तो उसकी प्राप्ति कर लेता है या उस के लिए अपने प्राणों की बलि तक चढ़ा देता है। सूफी कवियों ने 'नारियों' का सम्मान किया है, उनको केवल भोग्य वस्तु नहीं माना है बल्कि उनको अपनी प्रेम-साधना का साथी रूप बनाया है। प्रेमास्थानक काव्यों में

‘नारी’ को एक उच्च आदर्श रूप प्रदान किया गया है ।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में यह दिखाने का प्रयास किया है कि ‘वैयर्थिक प्रेम’ के अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार भेदभाव तिरोहित हो जाते हैं । एक राजा को भी राजपाट छोड़कर योगी बन जाना पड़ा है, प्रेम पन्थ पर चलते हुए ऊँच-नीच की भावना का त्याग करना पड़ता है और प्रेम के जाने नत-मस्तक हो जाना पड़ता है। प्रेमी-प्रेमिका एक समान एक स्तर पर सुफ़ियों द्वारा प्रस्तुत किये गए हैं । जायसी का ‘पद्मावत’ इन सब बातों के प्रमाण के लिए एक आदर्श उदाहरण है।

हिन्दी सूफ़ी कवियों ने भारतीय लोकपदा को भी अपने प्रेमाख्यानों में बहुत महत्त्व दिया है। उन्होंने भारतीय लोककथाओं, गाथाओं, लोकगीतों, लोकोक्तियों, कहावतों और मुहावरों को अपने प्रेमाख्यानों में सुलभ प्रयोग किया है। सुफ़ियों के इन प्रयोगों से तत्कालीन भारतीय जन-जीवन से सामान्य परिचय स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। उन्होंने कारुणिक कथाओं को अपनाते हुए कथा-त्मक कदियों के प्रयोग से परिपूर्ण लोकगाथात्मक परम्परागत शैली का अत्यधिक पूर्ण एवं सुन्दर निर्वहण किया है ।

हिन्दी सूफ़ी काव्य का विकास

हिन्दी में सूफ़ी कवियों द्वारा प्रेमाख्यान उजरी भारत के उत्तरप्रदेश में हिन्दी के आधिकारिक के संप्राप्त होने के पश्चात् लिखे जाने लगे थे । ज्ञातः यह सिद्ध होता है कि ‘दक्कनी हिन्दवी’ या ‘उर्दू’ में प्राप्त सूफ़ी साहित्य से लगभग एक शताब्दी पूर्व तथा बंगला, पंजाबी में प्राप्त सूफ़ी साहित्य से लगभग द्वाह शताब्दियों पूर्व ही हिन्दी में मुसलमान सूफ़ी कवियों ने ‘तिसव्युफ़’ तथा ‘इस्लाम’

के सिद्धान्तों के आधार पर भारतीय परम्परा के अनुरूप साहित्य सुजन प्रारम्भ कर दिया था ।

हिन्दी में प्राप्त सबसे प्राचीन और सबसे पहला प्रेमास्थानक काव्य 'चन्दावन' है । इसके रचयिता माँछाना दाऊद हैं । चन्दावन की रचना ७३६ ज़िरी (सन् १३७७ ई०) है । इससे यह ज्ञात होता है कि इसी की चौदहवीं शताब्दी से सूफ़ी साहित्य की आकाशवा रचना प्रारम्भ हो चुकी थी और जो आज तक जारी है। जो सूफ़ी प्रेमास्थान उपलब्ध हुए हैं उनकी संख्या पैंतीस या चालीस के आस-पास है। इनमें हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थान तथा बिहार में लिखे गए ग्रन्थ भी सम्मिलित किये जाते हैं ।

हिन्दी-साहित्य के पूर्व मध्यकाल से ही सूफ़ी प्रेमास्थानों की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी । हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने भारतीय परम्परा तथा आदर्शों को ध्यान में रखते हुए अपने काव्य का निर्माण किया है । यह उनकी अपनी मौलिक विशेषता है कि उनके काव्य का शरीर तो एकदम भारतीय है और उस काव्य की आत्मा 'इस्लामी तसव्वुफ़' है । यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है । दो विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और सिद्धान्तों को एक ही क्लेवर देना, एक ही रंग में रंगना और उसमें पूर्णरूपेण संफुल्ल होना एक आश्चर्यजनक अमूल्य कार्य है ।

हिन्दी सूफ़ी साहित्य के विकास का पूर्ण विवरण देने से पूर्व हम 'माँछाना दाऊद' के चन्दावन से चली जा रही सूफ़ी प्रेमास्थानों की परम्परा 'प्रेम दर्पण' (सन् १६१८) तक जारी रही । लगभग ५५० वर्षों की इस सुदीर्घ परम्परा के महत्त्वपूर्ण कवियों और ग्रन्थों की सूची श्री शिक्षाहाय पाठक ने निम्न रूप में प्रस्तुत की है-

- १- मोलाना दाऊ - चन्दायन, ७८१ हि, १३७७ ई०
- २- राजन - प्रेमवनजोत निरवन - अज्ञात
- ३- शेर कुतुबन - मृगावती, ६०६ हि, सन् १५०६ ई०
- ४- मलिक मुहम्मद जायसी - पद्मावत , ६४७ हि, सन् १५४० ई०
- ५- मलिक मुहम्मद जायसी - चित्ररेखा , अज्ञात
- ६- मकन - मधुमालती , ६५२ हि, सन् १५४५ ई०
- ७- ज्ञानकवि (दो दर्जन से अधिक प्रेमाख्यान)
- ८- सूरदास - नर कन , सन् १६५७ ई०
- ९- शेर नवी - ज्ञानदीप , १०२६ हि, सन् १६१८ ई०
- १०- हुसैन खली - पुष्पावती , ११३७-३८ हि, सन् १७२५ ई०
- ११- कासिमशाह - संजवाहिर, ११४६ हि, सन् १७३६ ई०
- १२- नूर मुहम्मद - इन्द्रावती , ११५७ हि, सन् १७४४ ई०
- १३- नूर मुहम्मद - कुराग बांसुरी, ११७८ हि, सन् १७६४ ई०
- १४- शेर निहार - युसुफ कुलेखा , १२०५ हि, सन् १७६० ई०
- १५- शाह नजफ खलीस छोनी - प्रेम चिनगारी, १२६१ हि, सन् १८४५ ई०
- १६- ख्वाजा अहमद- नूरबहा , १३१२ हि सन् १६०५ ई०
- १७- शेर रहीम - भाषा प्रेम रस , १३३३ हि, सन् १६१५ ई०
- १८- खली मुराद - कथा कुंवरावत - अज्ञात
- १९- नसीर - प्रेमदर्पण , १३३५ हि सन् १६१७-१८ ई०

उपरोक्त कवियों में से कई ने अन्यग्रन्थ लिखकर अनेक कवियों ने सूफी काव्य की जीवृद्धि की है, जिससे हिन्दी सूफी साहित्य का एक विशाल प्रासाद बढ़ा हुआ है। जैसे-

- १- मलिक मुहम्मद जायसी - अलरावट, जाद्विरी कलाम, कहरानामा, मसलानामा

२- उस्मान	निवाकरी
३- नूर मुहम्मद	इन्डावती, कुरान बांधुरी
४- निजावी	कदमराव पदमराव
५- मांठाणा ववही	कुसुम मुरतरी
६- मांठाणा गुवाची	
७- सेत वल्लभ जुनेवी	मा ह फेर
८- मांठाणा नुसरती	गुलशन-२-इश्क
९- इश्क-२-निशाती	फूल वन
१०- मांठाणा तवर्	बहराम व गुल वन्दान
११- सेयद मीरां हासमी	युसुफ कुंठा
१२- सेयद मुहम्मद इशरती	दीपक पंग
१३- गुलाम	पद्मावत
१४- सेयद वल्लभ	कुनर, तेहदपंग
१५- सिराज औरंगाबादी	बस्तान-२-इयाल
१६- बजीरुद्दीन ववदी	मेसुन -२- इश्क
१७- जाकिर	छा मजनु
१८- मिर्जा मुहम्मद मुक़ीम सलमी	चन्दरवन, महिबार
“मुक़ीमी”	
१९- कमीन और दोलत	हाक़्कहराम, कुन बा नो
२०- इडाहीन सक्ती	मसनवी गुलबस्ता सनती, मसनवी बेनबीर
२१- मलिक सुलतुद	हस्त बहिरत
२२- कमीन	युसुफ कुंठा
२३- काज़ी महमूद “वहरी”	मनलान
२४- सेत दाऊद “कुंफ़ी”	शिवायतनामा हिन्दी
२५- फ़ायज़	रिजवान हा ह इह अफ़्ज़ा

मोलाना दाऊद

चन्दायन -

हिन्दी के सुफ़ी काव्य परम्परा के अन्तर्गत ग़ुन्थ कब तक प्राप्त हो चुके हैं उनमें सबसे पहला ग़ुन्थ चन्दायन है, जिसके रचयिता मोलाना दाऊद हैं। "चन्दायन" का रचनाकाल ७८१ हिजरी अथवा सन् १३७९ ई० माना जाता है।

हिन्दी के विद्वान् चन्दायन के अनेक नाम मानते हैं जैसे - "गुरुक चन्दा", "कन्दावत", "चन्दावत", "चन्द्रेनी" आदि। किन्तु, जब प्रोफेसर खान कस्कारी ने अपने निबन्ध "रेखर फ़ोगेनेण्ट्स आफ़ चन्दायन एण्ड मुनावती" में यह उल्लेख किया कि उनको वास्तविक चन्दायन की एक त्रुटित प्रति "मनेरशरीफ़" की जानकारी से प्राप्त हो गई है और मोलाना दाऊद के इस प्रेमाख्यान का मूल नाम वास्तव में चन्दायन ही है, तो लोगों ने अटकलवायियाँ बनाकर इसके इस ग़ुन्थ को "चन्दायन" के रूप में स्वीकार कर लिया।

रचनाकाल -

प्रस्तुत ग़ुन्थ के रचना-काल के सम्बन्ध में भी अनेक मतभेद हैं-

- चन्दायन का रचनाकाल अक़बदख़्ख़ानी ७८१ हि० (सन् १३७९ ई०) मानते हैं।

- मिश्रबन्धु के अनुसार "चन्दायन" का रचनाकाल सन् १३२७ ई० अथवा संवत् १३८५ वि० है।

- डा० रामकुमार वर्मा इस ग़ुन्थ की रचना संवत् १३५३ से संवत् १३७५ के बीच मानते हैं।

- पं० परसुराम कर्जुवेदी सन् १३८९ ई० अथवा सन् १४३६ को चन्दायन की रचना तिथि स्वीकार किया है।

- डा० पीताम्बर दत्त महत्त्ववाल के अनुसार सन् १४४० ई०
वथवा संवत् १४६७ में चन्दावन की रचना हुई ।

- डा० कमल कुलश्रेष्ठ इस प्रेमाख्यान का रचनाकाल सन् १३७०
ई० वा संवत् १४२७ के आसपास मानते हैं ।

मुन्तासिब-उल-तवारीख के रचनाकार अबदायनी ने उक्त ग्रंथ
में एक स्थान पर लिखा है-

“ ७७२ खिरी में वथवा १३७० में तान-ए-जहां जो फ़ीरोज़शाह का बड़ीर था,
मर गया और उसका लड़का ज़ानाशाह उसके पद पर नियुक्त हुआ। चन्दावन जो
हिन्दी की एक मसनवी है और लॉरिक तथा चांदा के प्रेम का वर्णन करती है,
उनके लिए मोलाना दाऊद द्वारा रची गई थी । यह इन प्रदेशों में इतनी अधिक
प्रख्यात है कि इस की प्रशंसा करना अनावश्यक होगा । मसूदा से तकीउद्दीन दाहज़
खानी ने एक अवसर पर इसके कुछ अंश पढ़कर सुनाये, तो उसे सुनकर लोगों को अद्-
भुत आनन्द मिला । कुछ विद्वानों ने उसे से मसनवी को इस प्रकार महत्त्व देने का
कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह पूरी रचना ईश्वरीय सत्य और संकेतों
से भरी हुई है, रोज़क है, ईश्वरप्रेमियों और भक्तों को आनन्दपूर्ण चिन्तन की
सामग्री प्रदान करती है, कुरावान शरीफ़ की कुछ आवश्यकताओं का सर्व समझाने में उप-
योगी है और हिन्दुस्तान के मीठे गीतों का परिचय करने में समर्थ है। ”

स्वयं मोलाना दाऊद ने चन्दावन के स्तुति ग्रन्थ में इस-की
रचना तिथि निम्न रूप में प्रस्तुत की है -

बरिस सात से होई इत्फासी । तिहि याह कवि सरसैऊ भासी ॥

१- मुन्तासिब-उल-तवारीख , पृ० २५०

साहि फ़िरोज़ दिल्ली सुल्तान् । बाना साहि बज़ीर बख़ान् ॥
 छलमऊ नगर बसे नौरंग । ऊपर कोट तले बह गंगा ॥
 धरनी लोग बसहि भावन्ता । गुन गाऊ नगर जसवन्ता ॥
 मलिक बयां फुल उभारन बीर । मलिक नुबारक तहां क्रीर ॥
 दाऊद यह कवि गार्ह, मन मांहि विचारि ।
 बुरत बोले कि राखहु, टूटत लेहु संवारि ॥

- चंदावन, १७वां पद, पृ० १३

मांलाना दाऊद के उपर्युक्त पद की तिथि और जलबदायूनी का विवरण एक-दूसरे का समर्थन करते हैं। आ: चंदावन को ७२ हिमरी अथवा सन् १३७६ ई० की रचना मानना ही उचित है।

मांलाना दाऊद, फ़ीरोजशाह तुग़लक के समय में, पूर्वी उत्तरप्रदेश की रियासत बोनपुर के छलमऊ क़स्बे के निवासी थे। फ़ीरोजशाह तुग़लक के सम्बन्ध में मांलाना दाऊद ने अपनी रचना में उल्लेख किया है। मांलाना दाऊद ने सुफ़ी पद्धति के अनुसार अपनी रचना में सर्वप्रथम सूदा की हम्द (ईश्वर-स्तुति) और शाहे-बक़ (तत्कालीन शासक) की प्रशंसा की है तथा ग्रन्थ के रचना-काल का भी उल्लेख किया है। यह तथ्य महत्वपूर्ण पद्धति के एकदम अनुकूल है।

ग्रन्थ का नामकरण -

मांलाना दाऊद ने अपने गुरु जैनुद्दीन की स्तुति भी अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में की है। साथ ही ज्ञान-ए-बहा की भी प्रशंसा भी की गई है। उसे उन्होंने "सयाना मंत्री" की उपाधि दी है। ज्ञान-ए-बहा शाहे बक़ फ़ीरोजशाह तुग़लक का बज़ीर था।

मांलाना अपनी कृति का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं-

“दाऊद कवि चाँदायन नाई । केँ रे सुना सोना मुलुभाई ॥
 धनि ते बोल धनि ते खलारा । धनि ते बसिर धनि बरसु विचारा ॥
 तउ रे कहा मई यह सँहु नाकाँ । क्या कवि कहि लगे सुनावहु ॥

- चान्दायन, कठक, ३२६)

मालाना दाऊद ने अपनी रचना के प्रारम्भ में ही चन्दा के रूप चन्द का उल्लिखित वर्णन किया है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने सम्पादित चान्दायन की भूमिका में प्रस्तुत ग्रन्थ की नायिका “चाँद” को माना है, जिसको नाम चन्द की आवश्यकताओं के कारण “चाँदा” भी मिलता है। इसलिए इस रचना का नाम “चाँद” या “चाँदा” ही हो सकता है। साथ ही कवि ने अपनी रचना को कथा काव्य कहा है, इसलिए रचना का पूरा नाम चाँद कथा रहा हो, तो भी आश्चर्य न होगा। रचना संभवतः २७ सप्टों में विभक्त थी और चन्द की स्थितियों के नदान भी भारतीय ज्योतिष के अनुसार २७ हैं, साथ ही नायिका को आकाश के चन्द का अवतार कहा गया है। इस प्रकार की उक्तियों का प्रयोग भी रचना में हुआ है जिनमें नायिका आकाश के चाँद के रूप में प्रस्तुत की गई है और नदान के प्रयोग में ज्ञान का अर्थ उनका धृति या मार्ग होता है। इस चाँदायन या चन्दायन नाम भी काफी संभव लगता है।

वास्तव में मालाना दाऊद के इस प्रेमास्थान का नाम “चन्दायन” ही है। फ़ारसी के ऐतिहासिक ग्रन्थों में मालाना की इस कृति का नाम चन्दायन ही दिया गया है। एक हस्तलिखित प्रतिलिपि में लिखा मिलता है- “मुस्तह चन्दायन गुफ्तार मालाना दाऊद क वलमई”। यह फ़ारसी भाषा की प्रतिलिपि है। अनेक प्राण इस बात के बोधक हैं कि इस रचना का नाम “चन्दायन” ही है और डा० माताप्रसाद गुप्त की “चान्दायन” नाम की स्थापना उपयुक्त नहीं है। ये भी चान्दायन और चन्दायन में कोई अधिक अन्तर नहीं है, अपितु “चन्दायन” शब्द का उच्चारण अधिक कर्णाग्र है।

लिपि -

डा० माताप्रसाद गुप्त तथा अन्य लोक कवि के विद्वानों का यह भ्रम है कि बांलाना दाऊद ने चन्दायन की रचना "देवनागरी" लिपि में की है, जबकि कवि ने स्वयं एक स्थान पर लिखा है-

“उधरे नेन लिं उजियारे । पायो लिणिनो कार कारे ॥

पुनि में क-विणर की सुधि पाई । तुकी लिभि-लिणि हिन्दु की गाई ॥”

अर्थात् मैंने (कवि दाऊद ने) शेख मुंसददीन (गुरु) की कृपा से लिखना सीखा और तुर्की (अरबी-फ़ारसी) लिपि में लिखकर हिन्दू या हिन्दुकी गीतों का गान किया । इससे स्पष्ट है कि बांलाना दाऊद ने चन्दायन की रचना अरबी लिपि में ही की थी जो तुर्की, उर्दू, फ़ारसी और सिन्धी भाषाओं में भी प्रचलित है ।

चन्दायन की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ -

चन्दायन की निम्नलिखित हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध होती हैं-

(१) मनोरसरीफ़ ज्ञानकाह से प्राप्त प्रतिलिपि- इसे प्रो० ज़ुन अस्करी ने खोजा था और उनके पास ही सुरक्षित है । यह फ़ारसी लिपि में लिखी गई है । यह १६वीं शताब्दी की प्रति है । इसमें कुल ६४ पृष्ठ हैं ।

(२) फ़्रैंस आफ़ वेल्स पब्लिशिंग, बम्बई में चन्दायन के हस्तलिखित ६४ पृष्ठ सुरक्षित हैं। अरबी लिपि में है ।

(३) भारत कलाभवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में केवल ६ सचित्र पृष्ठ उपलब्ध होते हैं, एक और चित्र दूसरी ओर आव्य। १६वीं शताब्दी की प्रति है। लिपि अरबी है ।

(४) मसान्वसेदस (अरबीका) के फ़्रांसिस होफ़र के संग्रह की प्रति - इसमें केवल

दो पृष्ठ हैं। अरबी लिपि में लिखी गई है।

(५) रालेण्ड्स प्रति - यह हस्तलिखित प्रति मानचेस्टर के रालेण्ड्स पुस्तकालय में रखी हुई है। प्रारम्भ से अन्त तक सुन्दर चित्रों से सज्जित यह प्रति अरबी लिपि में लिखी गई है। १६वीं शताब्दी की प्रति माना जाती है।

(६) शिवदा संग्रहालय में 'चंदायन' की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं- एक प्रति में ६ पृष्ठ हैं और दूसरी में केवल एक ही पृष्ठ है। यह १६वीं शताब्दी की रचना है। लिपि अरबी है।

(७) रत्ना लाइब्रेरी, रायपुर (उत्तरप्रदेश) में 'पद्मावत' की हस्तलिखित प्रतिलिपि के मूल पृष्ठ पर 'चंदायन' शीर्षक से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

(८) बीकानेर में लिखी गई (सं० १६७३।सन् १६१५) 'चंदायन' की हस्तलिखित प्रति अब कें०एम०मुंशी हिन्दी तथा भाषाविवेक विद्यापीठ, आगरा में सुरक्षित है। इसमें ११२ पृष्ठ हैं। इस प्रति का पाठ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

माँझना दालद के चंदायन के अब तक तीन प्रकाशन हुए हैं, ये हैं-

१- चंदायन (होर कहा) सं० फं० शिवनाथप्रसाद, कें०एम०मुंशी विद्यापीठ, आगरा
सन् १९६२ ई० ।

२- चंदायन - सं० फं० परमेश्वरीलाल गुप्त, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई,
सन् १९६४ ई० ।

३- चंदायन - सं० डा० माताप्रसाद गुप्त , प्रासादिक प्रकाशन, आगरा, सन् १९६७

किन्तु ये तीनों सम्पादन ही उचित नहीं मान पड़ते क्योंकि इनमें भाषा और शैली सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ हैं। हो सकता है ऐसा इन महानुभावों का अरबी लिपि से अनभिज्ञ होने के कारण हुआ हो।

चंदायन का अर्थानक-

हिन्दी साहित्य के प्रेमालम्बनों में 'चंदायन' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मोलाना दाऊद ने अन्य सूफियों की भांति प्रेम को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया है। सूफी साधक सब रसों का मूल प्रेम को ही मानते हैं, उनके लिए इस जीवन या ज़िन्दगी में प्रेम ज़थवा इश्क से बढ़कर कोई अन्य वस्तु या भाव हो ही नहीं सकता।

बी चन्द्रकली पाण्डेय ने अपने ग्रन्थ 'तिसव्युक्त ज़थवा सूफी मत' के पृष्ठ ७४ पर ज़िन्दी सूफी के प्रेम सम्बन्धी उद्गार निम्न रूप में प्रकट किये हैं-

“जगर इश्क न होता, इन्तिज़ाम-र-बालम सूरत न पकड़ता। इश्क के कौर जिन्दिगी बवाल है। इश्क की धिल दे देना ज़ाल है। इश्क बनाता है, इश्क कलाता है। दुनिया में जो कुछ भी है इश्क का जलना है। जान इश्क की गमी है। हवा इश्क की बेचनी है। पानी इश्क की रफ़ूतार है। ज़ाक इश्क का क़याम है। मोत इश्क की बेहोशी है। जिन्दिगी इश्क की होशियारी है। रात इश्क की नींद है। दिन इश्क का जागना है। मुस्लिम इश्क का ज़मात है। काफ़िर इश्क का ज़लात है। नेकी इश्क की क़ुरबत है। गुनाह इश्क की दूरी है। बलिश्त इश्क का शोक है। दोऊत इश्क का ज़ाक है।”

इस सूफी कथन से यह बात सिद्ध होती है कि सूफियों के लिए प्रेम या इश्क ही सब कुछ है, प्रेम या इश्क ही इस संसार का सार है। सूफियों का ज़ट्ट विश्वास है कि प्रेम का मार्ग ही सत्य का मार्ग ठठ ठठ है। मोलाना दाऊद ने उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए इस्लामी शरीफत और भारतीय साधना पद्धति के प्रभाव के साथ प्रेमसत्त्व का सम्मिश्रण करते हुए ही 'चंदायन' की रचना की है और यही उनकी साधना पद्धति है। मोलाना दाऊद ने चंदायन की कथा को ज़क

जा ध्या त्विच्छता और वाञ्छनिकता के भार से पूरी तरह स्वतंत्र रहा हो।

चदावन की कथा का सार निम्नलिखित है-

गोंवर नगर के महर राजा सहदेव की चौरासी पत्नियाँ थीं। उसकी महारानी फूलरानी के काफ़ी प्रीतिदा के पश्चात् एक पुत्री हुई जोकि अत्यधिक सुन्दर कन्या थी, अतः उसका नाम चन्दा रखा गया। केवल चार वर्ष की अवस्था में ही चन्दा का विवाह एक कुटुम्ब व्यक्ति वावन धीर से कर दिया गया। सोलह वर्ष की अवस्था में चन्दा को बोध हुआ कि उसका पति कुटुम्ब होने के साथ ही पौरुष से वंचित है और पत्नी के योग्य नहीं है, अतः वह अपनी सास से झगड़कर अपने मायके वापिस लौट आई।

एक दिन चाँद को एक भित्तारी बाजिर ने मछल की जटारी पर लड़े देखा, वह चन्दा के सौन्दर्य को देखकर बेहोश हो गया। सोच में आने पर वह भित्तारी चन्दा के सौन्दर्य का गान करता हुआ राजापुर के राजा रूपचन्द के राज्य में पहुँचा। राजा रूपचन्द ने उससे चन्दा के रूप-सौन्दर्य का मस्त-शित वर्णन सुना और वह भी बेहोश हो गया। तत्पश्चात् उसने चन्दा के प्रसव होकर गोंवर राज्य पर आक्रमण कर दिया। राजा महर के लोके सरदार मारे गये उसकी सेना का साहस घटने लगा। तब राजा महर ने बौद्धा लोरिक को अपनी सहायता के लिए बुलाया। लोरिक ने अपनी वीरता, साहस के द्वारा रूप चन्द को बुरी तरह परास्त किया।

लोरिक की वीरता और रूप पर चन्दा स्वयं मोहित हो गई। विजय-प्राप्ति की खुशी में भोज का आयोजन राजा महर द्वारा किया गया। भोज में लोरिक और चन्दा आपने-सामने हुए, दोनों ने एक-दूसरे को जी भरकर देखा, दोनों ही एक-दूसरे पर पूरी तरह मोहित हो गए। लोरिक चन्दा के हृन् को ताब न लाकर बेहोश हो गया। लोरिक और चन्दा का दूसरा मिलन, चन्दा की सती वृक्षपति द्वारा देव मन्दिर में संभव हुआ। लोरिक चन्दा देखकर एक बार फिर

मूर्खित हो गया । दोनों का एक-दूसरे के प्रति प्रेम प्रादुर्भाव होने लगा ।

चन्दा और लोरिक के इस पारस्परिक प्रेम का पता लोरिक की पत्नी मेना को चला । वह बहुत दुखी हुई । वसन्त पूजन के अवसर पर चन्दा और मेना की भेंट हुई, दोनों में तब विवाद हुआ, बात बढ़ गई और मारपीट की शरणाग्र हो गई । मेना ने चन्दा को बहुत मारा । इस घटना से लोरिक और चन्दा दोनों व्याकुल हो उठे और चन्दा का परामर्श मानकर उन दोनों ने नगर को छोड़ दिया ।

चन्दा के लोरिक के साथ भागने का समाचार चन्दा के पति बावन-वीर को मिला, उसने उनका पीछा किया । युद्ध हुआ और बावनवीर परास्त होकर वापिस लौट गया । चन्दा और लोरिक जागे की ओर बढ़ते गये । मार्ग की अनेक बाधाएं भरोसे हुए वे दोनों कलिंग पहुँचे । इसी बीच चन्दा को दो बार सर्प ने डसा किन्तु एक गृष्णी की कृपा से वह दोनों बार मरते-मरते बच गई । कलिंग में जो कई नामक व्यक्ति चन्दा को प्राप्त करना चाहता था, किन्तु वह असफल हुआ । फिर वे दोनों दंडा योगी के पादाबाल में फँस गए, किन्तु एक सिद्ध पुरुष ने उन्हें उस योगी से मुक्ति दिलाई । इसके बाद एक जुआरी के चक्कर में पहुँचकर लोरिक सब कुछ, यहाँ तक कि चन्दा को भी हार गया । चन्दा अपनी क्षुब्धता से उस जुआरी के छिन्ने से बच निकली और लोरिक उस जुआरी को मारकर जागे बढ़ा और फिर वे दोनों हरदीपाटन पहुँचे और वहाँ सुखपूर्वक रहे ।

उधर लोरिक की विरहिणी पत्नी मेना ने सुरजन नामक व्यापारी के द्वारा लोरिक के पास अपना विरह संदेश भेजा और उससे वापिस लौट जाने का आग्रह किया । इस विरह समाचार को पाकर लोरिक और चन्दा गोबर वापिस लौट आए ।

चन्दावन के अध्यात्म का इसके जागे का अंत अनुपलब्ध है, जागे का हुआ इसका केवल अनुमान ही लाया जा सकता है ।

लोककथाओं में इस कथा के अन्त से सम्बन्धित निम्न रूप मिलते हैं-

(१) लोरिक और मांकर में युद्ध होता है और दोनों- एक-दूसरे के हाथों मारे जाते हैं। लोरिक की विधा पर मेना और चन्दा सती हो जाती है।

(२) लोरिक विषय प्राप्त करता है और काशी में जाकर करवी की अग्नि में अन्न अपने प्राण त्याग देता है।

(३) लोरिक राजा बन जाता है और चन्दा पटरानी, बृहस्पति को मंत्री पद दिया जाता है।

(४) साधन कृत मेनास्त की कथा सुतान्त है, उसमें मेना के सुहाग की प्रशंसा की गई है। अतः अनुमान ही किया जा सकता है कि चन्दायन की कथा भी सुतान्त ही रही होगी।

बो कुछ भी हो, इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि चन्दायन की कथा स्वयं में बड़ी जूठी है। चन्दायन एक नायिका प्रधान काव्य है। अपतौर पर नायक-नायिका पर आसक्त होकर उस अपनाना चाहता है किन्तु इस काव्य में नायिका चन्दा लोरिक को अपने साथ भाग चलने पर विवश करती है। लोरिक की चन्दा रक्षा करती है उसे कोई कष्ट नहीं होने देती। मार्ग की कठिनाइयों में भी कवि ने चन्दा के पात्र को ही उभारा है। छूरी और लोरिक के बदाय मेना के चरित्र को कवि ने अधिक महत्त्व दिया है, विशेष रूप से मेना का पतिक्रता रूप और फिर कणन चन्दायन की प्रमुख विशेषताएं हैं। मांछाना दाऊद के प्रेमालयान चन्दायन की कथा, अपने किसी भी रूप में भारतीय कथा-साहित्य, संस्कृत या अपभ्रंश में नहीं पाई जाती। यह कथा अपने आप में जूठी है और कथा अपने आप में भौतिक है। किन्तु इस पर तान्त्रिका बौद्ध मत और अपभ्रंश के प्रभाव के साथ-साथ फारसी साहित्य का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। चन्दायन किसी निश्चित संली या परिपाटी से बंधी कथा नहीं है। चन्दायन की कथा विशेष रूप से लोक - जीवन में प्रचलित कथा का

साहित्यिक रूप ही है। इस बात की स्पष्टता तब ही हो जाती है जब हम नायक ठोरिक नायिका चन्दा और उपनायिका मैना के ताने-बाने से बुनी गई उन लोक कथाओं को देखते हैं जो विभिन्न रूपों में उत्तरप्रदेश, बिहार, जंगल, इलीसगढ़ आदि प्रदेशों में बिसरी पड़ी हैं। भोजपुरी में ठोरिकी, चनेनी, ठोरिकायन, मिर्जापुरी में ठोरिक-चन्दा की कथा, भागलपुरी में ठोरिक-चांद की कथा, इलीसगढ़ी में बावनवीर की कथा, सन्धाली में चनेनी कथा आदि इसके अनेक रूप हैं।

निश्चय ही ठोरिक-चन्दा की कथा माँलाना दाऊद के समय में बहुत प्रसिद्ध, प्रचलित एवं लोकप्रिय रही होगी। किन्तु दाऊद ने लोककथा से स्थूल रूप तो ग्रहण किया है किन्तु उसके विस्तारों को भिन्न रूपों में भरा है, यह नवीनता माँलाना दाऊद की अपनी विशेषता है। माँलाना दाऊद ने अपने युग के यथार्थ चित्रण को विशेष महत्त्व दिया है।

माँलाना दाऊद के "चन्दायन" की कथा में नायक, नायिका और उपनायिका सभी विवाहित हैं। चन्दा विवाहित होते हुए भी दूसरे पुरुष की ओर आकर्षित होती है। फ़ारसी काव्य में लंका, शीरीं आदि नायिकाएँ विवाहित हैं, उन्हें पुरुष की ओर आकर्षित न दिखाकर कवियों ने पुरुष के प्रेम की तीव्रता दिखाने का प्रयास किया है।

माँलाना दाऊद ने चन्दायन में प्रेम का कारण मार्ग, नर-शत्रु में अलौकिक सांन्ध्य के संकेत, नायक-बाजिर आदि की बेहोशी, विरह घणन में अलौकिकता आदि सभी में सफ़ी प्रेम-दर्शन को उभारने का पूरा-पूरा प्रयास किया है और इस कार्य में वे सफल भी हुए हैं।

माँलाना दाऊद चन्दा को अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। नर-शत्रु घणन और बारखासा घणन- केवल दो के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि

चन्दायन का प्रभाव मुगावती, पद्मावती, मधुसूदनी आदि प्रेमास्थानों पर पड़ा है। चन्दायन की अनेक उपमारं, उक्तियां, कल्पनारं आदि परवर्ती कवियों ने ली हैं।

राजन कवि

प्रेमवान जोत निरंजन-

हिन्दी के सर्वप्रथम सुफुली प्रेमास्थान चन्दायन की रचना के पश्चात् अनेक हिन्दी सुफुली प्रेमास्थानों की रचनाएं हुईं। किन्तु लगभग एक शताब्दी के अन्तराल में 'प्रेमवान जोत निरंजन' से पूर्व कोई विशेष उल्लेखनीय सुफुली ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। हो सकता है कि उनमें से अधिकतर नष्ट हो गई हों अथवा कहीं नहीं छिपी पड़ी हों और कभी कभी कहीं ही सामने आ जाएं।

चन्दायन की रचना अलवरदायनी के अनुसार सन् १३७६ ई० में हुई मानी जाती है और तत्पश्चात् सेल रिज्जु-उल्लाह मुश्ताकी उर्फ राजन या रज्जन (सन् १४६१ ई० सन् १५८१ ई०) द्वारा रचित एक ग्रन्थ प्रेम वान जोत निरंजन प्राप्त होता है। रिज्जु उल्लाह मुश्ताकी फ़ारसी के बड़े विद्वान् थे और उतने ही उच्च कोटि के हिन्दी के रचनाकार थे।

बाबाए उर्दू मौलवी अब्दुल क़ादिर ने अपने ग्रन्थ 'अन्वार-उल-अक्यार' में लिखा है कि सेल बोधन सेल अब्दुल्लाह शन्तारी के वंशज थे, उनके ताऊ सेल रिज्जु-उल्लाह जिन्होंने मुश्ताकी नाम से फ़ारसी में काक्यात-ए-मुश्ताकी और राजन उपनाम से हिन्दी में 'प्रेम वान जोत निरंजन' लिखा है, सेल बोधन के पास गये और उनसे ज़िह्द (दीक्षा) प्राप्त किया था।

मुश्ताकी अथवा राजन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह सुफुली मत का था और हिन्दु में बड़ी योग्यता रखता था।

“प्रेम बान बोल निरंजन” के सम्बन्ध में भी तक कोई विशेष बात ज्ञात नहीं हुई है। न ही यह ग्रन्थ कहीं उपलब्ध हुआ है। इस ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं होता।

कुतुबन

मृगावती-

“मृगावती” नामक प्रेमाख्यान की रचना ६०६ लि (सन् १५०३६०) में हुई। “मृगावती” के रचनाकार कुतुबन सुफ़ी प्रेमाख्यान परम्परा के उत्कृष्ट कवि हैं। कुतुबन को कुछ विद्वान् कुतुबन शेख और कुछ अन्य भिन्न भिन्न कुतुबन नाम से संबोधित करते हैं।

सुफ़ी काव्य परम्परा के अनुसार ही कुतुबन ने अपनी रचना “मृगावती” में “सुदा की हम्द” (ईश्वर-स्तुति) फ़ैज़र मुहम्मद की संयना के परचाह शाह-ए-बक़ (तत्कालीन शासक) का वर्णन निम्न रूप में किया है-

साह सुन बह बड़ राजा । इन्न सिंहासन उन कहं साना ॥

पंखिल और बुधवन्त सनाना । फ़ैज़ पुरान ज़रथ सब जाना ॥

०

०

०

दान के बहु गिनतिन आया । बलि औ कस न सहरि पाया ॥

राज बहां लो मंथ्र रहहीं । सेवा करहीं बार सब चहहीं ॥

उन्ह के राज पारे कस कहें। नो रे नो जो संकर बहें ॥

(- मृगावती, कदवक ६-१३, पृ० ११७-१२०)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहले कुतुबन को जोनपुर के शासक सुनशाह का व्यक्ति माना था और उनके गुरु का नाम विरितया शेख बुरहान बताया था।

१- फ़ैज़ रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १०६

फिर आचार्य शुक्ल ने 'बायसी गुंथावली' की भूमिका में अपने पहले के मत में संशोधन करते हुए लिखा है कि "पूरब में बंगाल के शासक हुसैनशाह शर्की के अनुरोध से, जिसने सत्यपीर की कथा चलायी थी, कुतुबन भिवां एक ऐसी कहानी लेकर जनता के समक्ष आए, जिसके द्वारा उन्होंने मुसलमान होते हुए भी अपने मनुष्य का परिचय दिया।"^१

उस युग में हुसैनशाह नामक दो शासक थे, एक बोनपुर के हुसैन शाह शर्की और दूसरे बंगाल के हुसैनशाह। प्रसिद्ध इतिहासकारों 'फरिश्ता' और 'स्मिथ' ने अपने इतिहासों में लिखा है कि १६०१ खिजरी में सिकन्दर लोदी ने बोनपुर के शासक हुसैन शाह शर्की को हरा दिया था और बोनपुर वाला हुसैनशाह भाग कर बंगाल वाले शहशाह हुसैन शाह की शरण में चले गए। वहीं उसका देहावसान ६०५ खिजरी में हुआ। इस्लामी बंगला साहित्य में एक स्थान पर लिखा है—
"कवि कुतुबन बोनपुर के अनुरा थे, शाह हुसैन शर्की के साथ कवि कुतुबन बंगाल चले जाये थे और वहीं उनके साथ रहे। मुगलवती काब्य ६०६ खिजरी में वहीं गाँड़ देश में लिखा गया।"^२

प्रोफेसर खसम अस्करी के अनुसार हुसैन शाह ८१० खिजरी तक जीवित रहा। हुसैनशाह के सिक्के भी ८१० खिजरी तक चलते रहे।

अन्य साहित्यिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि कुतुबन वास्तव में बोनपुर के हुसैनशाह शर्की के सम्पर्क में जाये थे और बंगाल वाले हुसैनशाह से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था और फिर यह बात भी इतिहास-प्राणित है कि बोनपुर का शासक हुसैनशाह शर्की स्वयं एक कला प्रेमी शासक था, स्वयं कवि एवं

१- ए हिस्ट्री ऑफ़ द रॉयल ऑफ़ मुहम्मदन पावर, जिन्स (फरिश्ता के इतिहास का अंग्रेजी में अनुवाद), पृ० ५३२

२- शर्की आर्किटेक्चर ऑफ़ बोनपुर, फरहरद स्मिथ, पृ० ८

३- इस्लामी बंगला साहित्य, कुमार सेन, पृ० ८

संगीतज्ञ था- अज्ज जोनपुर कागड़ा खाल की देन उसी की है । वह कवियों, कलाकारों, संगीतज्ञों और विद्वानों का सम्मान करता था । स्पष्ट है कि कवि कुबुवन जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति इसी शाह कुंसेन के राज्याभिषेक रहे होंगे । अज्ज कुबुवन ने अपनी रचना मुगावती में शास्त्रेयता के रूप में जोनपुर के शाह कुंसेन शर्मा की ही प्रशंसा की होगी ।

रचना काल -

कुबुवन ने एक स्थान पर लिखा है-

बहिया जो पन्द्रह साठी । तहिया ये रे चौफर गांठी ॥
पहिले पास भावों छठी लाही । सिंह रासि सिन्ध नीरावहि ॥

कुबुवन की उपर्युक्त पंक्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं कवि ने अपनी रचना का काल निर्देष्ट विद्वतीय संवत् में दिया है।

मुगावती प्रेसाख्यान के प्रारम्भ में कवि कुबुवन ने रचना-तिथि के संबंध में निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं-

उन्ह के राज यह रे लम कही । नों से नों जो संवत अही ॥
माह मुहरमे चौदहि चारी । भई सपूरन कही निवारी ॥
दोह रे मास दिन दस यह जो रत यह ओरानेउ जाह ।
एक जो भोति कस पिराया वकता छि मन लाह ॥

उपर्युक्त पंक्तियों से पता चलता है कि अज्ज ६०६ शिवरी के मुहरमे मास की चौथी तिथि को इस काव्य की रचना हुई । इस समाप्त करने में दो मास और दस दिनों का समय ला । निष्कर्ष यह निश्चलता है कि मुगावती रचना का प्रारंभ ४, मुहरमे ६०६ शिवरी अर्थात् अष्टादश शुक्ल ६, संवत् १५६० वि० (२६ जून, सन् १५०३ ई०) को हुआ और इसका अन्त १५ रबी-उल-सानी, ६०६ शिवरी अर्थात् आश्विन

कृष्ण १, संवत् १५६० वि० (उत्तिम्बर, सन् १५०३०) को हुआ ।

मुगावती की हस्तलिखित प्रतियाँ

(१) मजेर शरीफ के सज्जादकुलीन शाह इनायतुल्लाह के पास जो हस्तलिखित प्रति-
लिपि थी, उसे उनके भाई ने प्रो० हसन अस्करी को दिया था। इस प्रति की लिपि
फारसी (उर्दू) है। वास्तव में यह चन्दावन की प्रति है किन्तु इसके हाशिये पर
मुगावती के कदवक दिये गये हैं, इसमें ६३ कदवक हैं। इस प्रति के ३२ पन्ने प्राप्त हैं।
इसका समय १६वीं शताब्दी है।

(२) दिल्ली की प्रति- यह प्रति भी फारसी (उर्दू) लिपि में है। इसमें ६० पन्ने
हैं। मुगावती की इस प्रति में ४२६ कदवक हैं। इसका समय भी १६वीं शताब्दी ही है।

(३) चोखम्भा प्रति- मुगावती की इस प्रति में ३५० पन्ने हैं। इसकी लिपि "कैथी
नागरी" है। यह प्रति बाबू भारतेन्दु पुस्तकालय, चोखम्भा, बनारस में सुरक्षित है।

(४) भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने मुगावती की एक सज्जित प्रति-
लिपि है। इसमें केवल ७ पन्ने उपलब्ध हैं। २५ कदवक हैं।

(५) बीकानेर की मुगावती की प्रति- इस प्रति में ७७ पन्ने हैं। प्रत्येक पन्ने पर ६ कदवक
हैं, अंतिम पृष्ठ पर केवल एक कदवक है। यह प्रति कैथी नागरी लिपि में है।

(६) एकठला की प्रति - यह प्रति अपूर्ण है। इसमें २५३ पन्ने हैं। इस प्रति में २४६
दोहे और १२४५ चोपाइयाँ हैं। यह एकठला ग्राम, जिला फतेहपुर के बोंमप्रकाश सिंह
के संग्रह से प्राप्त हुई थी।

दिल्ली वाली प्रति के सबसे अन्तिम पृष्ठ पर निम्न छंद है-

"शरीफ: हुद व हस्त आन: अज़ मोमिन सहाफ़ अक़्बरावादी मालिक: वा उबीस क़ज़ीक-
उद्दीन बिन काज़ी मुहम्मद आरिफ़ दर सन् ११२१ हिररी ।" क्योंकि यह प्रति अक़्बरा
बाद निवासी मोमिन सहाफ़ से आठ जाने में हुई शरीफी गई। क्रम करने के कारण

इसके पालिक काजी मुहम्मद कारिफ के पुत्र कबीरुद्दीन हैं ।

इस प्रकार यह प्रति अठारवीं शताब्दी के प्रथम दशक से पहले की है ।
प्रो० एमन अस्करी के अनुसार इसकी लेनगंडी के आधार पर यह प्रति १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तैयार की गई होगी ।

इन हस्तलिखित प्रतियों से मुगावती तथा कुतुबन पर काफी प्रकाश पड़ता है ।

मुगावती का कथानक -

सुफ़ी कवि कुतुबन द्वारा रचित मुगावती का कथासार इस प्रकार है-

गणपति देव चन्द्रगिरि का एक अत्यन्त प्रतापी, धार्मिक और धनवान राजा था । उसे संसार के सभी सुख प्राप्त थे, उस केवल एक दुःख उसे भीतर ही भीतर लाये जाता था कि वह संतानहीन था । उसने इस सम्बन्ध में ईश्वर से याचना की, सुख भी सोलकर दान दिया । ईश्वर ने राजा की विनती स्वीकार कर ली और राजा गणपति को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । राजकुमार का नाम ज्योतिषियों के परामर्शानुसार राजकुंवर रखा गया ।

धीरे-धीरे राजकुंवर बड़ा होता गया और वह सम्पूर्ण विश्वों में दहा हो गया । दस वर्ष की अवस्था तक वह प्रत्येक दोष में निपुण हो चुका था । राजकुंवर को शिकार खेलने का बहुत शौक था । एक बार शिकार खेलते-खेलते वह अपने साथियों से ऊन हो गया और उसे एक सतरंगी हिरणी दिखाई दी वह उसका पीछा करते हुए वन में स्थित सरोवर तक पहुँचा और उसके घोंड़े से उतरने से पूर्व ही जूनी सरोवर में कूद कर गायब हो गयी । राजकुंवर भी सरोवर में छुकर जूनी को तोजने लगा किन्तु काफी तोज के बाद भी जब वह नहीं मिली तो वह बाहर निकलकर

रौने लगा । उसे अपनी सुध-बुध जाती रही और उसी सरोवर के किनारे बैठकर मृगी की बात जोहने लगा । धीरे-धीरे समय बीतने लगा । राजकुंवर के पिता को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने सरोवर के पास जाकर अपने पुत्र को बहुत समझाया किन्तु वह वापिस लौटने के लिए तैयार नहीं हुआ तो राजा ने अपने पुत्र के रहने के लिए वहाँ पर एक मकान निर्मित करा दिया । राजकुंवर उसी में रहने लगे मृगी की प्रशंसा करता रहा, इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया । कुछ समय पश्चात् उसी सरोवर में नहाने के लिए सात अप्सराएँ आईं, उनमें से एक "मृगावती" भी थी । राजकुंवर उस अपूर्व सुन्दरी मृगावती को देखकर हतप्रभ हो गया और फिर उसको पकड़ने के लिए उसकी ओर लपका, किन्तु उसके समीप पहुँचने से पूर्व की अ मृगावती सहित अन्य अप्सराएँ उड़ गईं । राजकुंवर मृगावती के चले जाने से अत्यधिक दुखी हुआ । उसे इतना दुखी देखकर उसकी धाय ने उसे एक योजना बताई, उसने कहा कि "मिरिगावती" मिलेला एकादशी के दिन प्रत्येक वर्ष इस सरोवर में अपनी सत्तियों के साथ स्नान करने जाती है । काली बार जब वह वहाँ जाकर स्नान करने के लिए जो वस्त्र उतारे, उन वस्त्रों को तुम उठा लेना । जब वह तुम्हारे वस्त्र में हो जायेगी।

एक वर्ष बाद जब मृगावती वहाँ स्नान करने आई । योजनानुसार राजकुंवर ने मृगावती के चीर उठा लिये । स्नान करने के बाद जब मृगावती सरोवर से बाहर आई तो अपने कपड़े न देखकर फिर बल में डी-ली गई और चिर उड़ाकर देखा तो राजकुंवर को तट पर खड़े पाया । उसने राजकुंवर को उसकी हरकत पर बहुत डाँटा, क्योंकि उसी के कारण मृगावती की सती अप्सराएँ उसे वहाँ छोड़कर उड़ गईं और वह अकेली रह गई । किन्तु जब राजकुंवर ने यह बताया कि वह पिछले दो वर्षों से सब कुछ त्याग कर केवल उसी की प्रशंसा में वहाँ रुका हुआ है और वह उसके प्रेम में पड़ गया है । राजकुंवर के इस प्रेम-प्रदर्शन के पश्चात् मृगावती ने भी स्वीकार किया कि उसने भी राजकुंवर के लिए ही सतरंगी मृगी का रूप धारण किया था । दोबारा भी तुम्हारे लिए ही आई थी और आज भी तुम्हारा प्रेम ही मुझे वहाँ

सींच लावा था । अब तो तुम मेरे वस्त्र दे दो । तब राजकुंवर ने उसके कम्बकारी वस्त्र न देकर उसे साधारण वस्त्र दे दिये बिनमें उड़ने की शक्ति न थी । वे दोनों अपने मछल में जाये । भृगावती ने तभी राजकुंवर से एक प्रण ले लिया जब तक उसकी सलियां वापिस उस के पास नहीं आती तब तक वह उसके साथ स्नान न करेगी, भले ही वे दोनों परस्पर विवाह ही क्यों न कर लें । राजकुंवर ने प्रण कर लिया ।

राजकुंवर ने अपने पिता को शुभ सूचना भेजी। महाराज प्रसन्नतापूर्वक उन लोगों को आशीर्वाद देने पहुँचे और उन दोनों का विवाह-सम्पन्न करा दिया। वे दोनों साथ-साथ रहने लगे । एक दिन माँके से फ़यदा उठाकर भृगावती ने अपने वस्त्र प्राप्त कर लिये और जाने से पूर्व धाय को बताया कि "तुम्हारे कुमार के प्रति मेरे हृदय में स्थाय प्रेम है, किन्तु मैं कुमार ने प्रेम की परीक्षा लेना चाहती हूँ कि वह मुझे से क्या प्रेम करता है। उसे बता देना कि मैं कंचनपुर की राजकुमारी हूँ और मेरे पिता का नाम रूप पुराणी है ।" इतना कहकर भृगावती उड़कर चली गई ।

जब राजकुंवर वापिस लौटा तो भृगावती को न पाकर दुःखी हुआ और मूर्छित हो गया । फिर बोंगी का वेष्ट धारण करके भृगावती को खोजने निकला। मार्ग में कनेक कठिनाइयाँ भेड़ते हुए, सर्प से बचते हुए उसने समुद्र पार किया और क्षराब्ध में पहुँचकर विजयान करने लगा । कुछ देर बाद उतने वहाँ एक भवन सोज निकाला, उसमें प्रवेश करने पर उसे एक सुन्दरी मिली । उसने राजकुंवर को अपना नाम रूप मणि बताया, और कहा कि वह ज्योत्था के राजा देवराज की पुत्री है, इस भवन में एक राक्षस रहता है जो प्रतिवर्ष एक आदमी या औरत की बलि देता है, इस बार मेरी बारी है। राजकुमारी ने कहा आप अपनी रक्षा कीजिए, वहाँ से चले जाइये, किन्तु राजकुंवर ने राजकुमारी को जेला डोढ़कर जाने से इंकार कर दिया। इसी बीच राक्षस वहाँ आ गया जिसके सात सिर और चौदह भुजाएँ थीं।

राजकुंवर ने अपने कड़ से राजास को मार डाला। राजकुमारी रूप मणि उसकी वीरता पर मोहित हो गयी। रूप मणि के पिता राजा देवराय ने इन दोनों का विवाह करा दिया।

कुछ दिन पश्चात् राजकुंवर खोलेट के बहाने से निकला, मार्ग में अपने साथियों को जकड़ कर वह पुनः योगी के वेश में भृगावती को लोभने लगे वहाँ। उसने सागर पार किया। वहाँ पहुँचकर एक नर भट्ठी गहरिया उसके पीछे पड़ गया, बड़ी कठिनाई से नरभट्ठी की जाँच फोड़कर अपना पीछा छुड़ाया।

उधर कंचनपुर में भृगावती के पिता का देशवसान हो गया। भृगावती को राजसिंहासन पर बैठाया गया। तभी जनेक कठिनाइयाँ और बाधाओं का वीरता एवं साहस द्वारा सामना करते हुए राजकुंवर कंचनपुर पहुँच गया। सिंहासन पर विराजमान राजकुमारी भृगावती की शोभा और रूप सौन्दर्य को देखकर राजकुंवर बेसोश हो गया।

फिर राजकुंवर और भृगावती दोनों एक-दूसरे के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। उनके दो पुत्र हुए। कुंवर कंचनपुर में बारह वर्षों तक रहा।

राजा गणपति देव का पुरोहित उनका संदेश और मार्ग में मिली कपडों का संदेश लेकर कंचनपुर पहुँचा। उसने दोनों संदेश कुंवर को दिये, दोनों संदेशों द्वारा उससे लौट जाने का अनुरोध किया गया था। भृगावती के परामर्श पर उसने बड़े पुत्र को कंचनपुर की गद्दी सौंप दी और वे दोनों वापिस चल पड़े। कुंवर मार्ग से अपनी मनी को भी साथ ले लिया। महाराजा गणपति देव ने अपने पुत्र, दोनों बहूओं और पोते का स्वागत - सत्कार किया। बाद में राजकुंवर को अपना राज्य सौंप दिया।

राजकुंवर को शिकार बहुत प्रिय था। जिली ने उसे जंगल के एक भयंकर नरभट्ठी सिंह की बात बताई। कुंवर तत्काल उसे मारने के लिए शिकार पर चल पड़ा। जंगल में उसने सिंह को सोते देखा, सोते हुए सिंहक पशु पर वार करना उसे

बच्चा न लगा । तभी सिंह घोड़े की टापों की आवाज़ से जाग गया । सिंह ने कुंवर पर आक्रमण करना चाहा तभी कुंवर ने सहयोग से सिंह पर वार किया, सिंह का सिर धड़ से अलग हो गया । इसी बीच हाथियों का झुंड भी आ गया । कुंवर ने अपने बाणों से उनको भगा दिया, कुंवर का अपना एक बाण तड़क कर वापिस उसके हृदय में आ लगा और उसने भी वहीं प्राण त्याग दिये और इस प्रकार दोनों ही "सिंह" मर गये । इस समाचार को सुनकर महाराज गणपति देव घोड़े और ठोकर हा गिरे और मर गये । राजकुंवर की चिता गंगा तट पर जलाई गई, उस चिता में दोनों रानियां भूयावती और रूपानी जलकर जाती हो गई ।

चन्द्र गिरि राज्य का सिंहासन राज कुंवर के छोटे पुत्र करनराय को प्राप्त हुआ ।

भूयावती प्रेमाख्यान की कथा का मूल स्रोत

भूयावती प्रेमाख्यान की कथा का आधार भारतीय कथा है। यह कथा कुतुबन की अपनी मौलिक कल्पना नहीं है। इस बात को स्वयं कुतुबन ने भी स्वीकार किया है, उक्त कथन है -

पहिले हिन्दु कथा वही । पुनरे कहानी तुर्की ले कही ॥

पुन ह्म लौलि अर्थ सब कहा । योग सिंगार वीर रस कहा ॥

अर्थात् पहले यह हिन्दुस्तानी या भारतीय कथा थी जिसे किसी विद्वान् ने तुर्की भाषा में अण्वन्तरित कर दिया था। फिर ह्म (कुतुबन) ने इस कथा की पूर्णरूपेण व्याख्या एवं अर्थ प्रकट करते हुए विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है और इस कथा में योग सिंगार तथा वीर रस की योजना की है।

हिन्दु कुतुबन के इस वक्तव्य के रत्ने हुए भी न तो कहीं भारतीय साहित्य में और न ही तुर्की, अरबी, फ़ारसी साहित्यों में इस प्रकार की मौलिक कथा जल्दा

रूपान्तर मिलता है। हो सकता है कि पहले वह कथा भी प्रचलित रही हो किन्तु मौखिक रूप में और फिर बाद में समय के अन्तराल में कहीं नष्ट हो ।

वैसे कुछ विद्वान् इस कथा का मूल अपभ्रंश साहित्य में मानते हैं। किन्तु अपभ्रंश साहित्य में ऐसी कोई कथा उपलब्ध नहीं होती ।

मृगावती चरित्र- देवप्रभ सूरि को एक संस्कृत रचना है, इसी ग्रन्थ से संबंधित विनय समुद्र की मृगावती चोपाह रचना है। जैन साहित्य में भी मृगावती कथा का महत्त्व है । ऐसा प्रतीत होता है कि कुतुबन से पूर्व मृगावती की कथा लोककथा के रूप में प्रसिद्ध रही है क्योंकि जंगला साहित्य में भी मृगावती की कथा उपलब्ध होती है ।

इस कथा का मूल स्रोत कोई भी हो, इसका कथानक अपने विशेष उद्देश्यों के कारण एक सुन्दर कथानक है जिसमें कुतुबन ने लौकिक और अलौकिक तत्त्वों के मिश्रण से एक अत्यधिक सुन्दर रचना की है । यह मृगावती कथा नायिका-प्रधान रचना है । इसमें कोई प्रासंगिक कथा नहीं है और न ही कवि ने कोई उपनायक ही रखा है। यह कथा आध्यात्मिक आभास के साथ पूर्ण लौकिक कथा है ।

इस प्रेमाख्यान के कथानक में मृगावती नायिका सर्वप्रथम एक मृगी के रूप में नायक के सामने आती है। मानवों का पशु-पक्षी रूप धारण करना पूर्णरूपेण भारतीय कथाओं पर आधारित है । रामायण में मारीचि ने सुकर्ण मृग का रूप धारण करके सीता के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट किया था-

अहि वन निकट पसानन गयञ्ज ।

तव मारीचि कपट मृग भयञ्ज ॥ - तुलसी- रामचरितमानस

तुलसीदास जी ने मारीचि के मृग बनने वाली बात वाल्मीकीय संस्कृत रामायण से ली है जिस प्रकार सता सुकर्ण मृग को देखकर व्याकुल हो उठी थीं और वे परमूल्य पर उसे प्राप्त करना चाहती थीं, विलकुल उसी प्रकार कुतुबन का राक्षस

सतरंगी मृगी को पाने के लिए एकदम पागल हो उठता है ।

किन्तु कबुलान ने यहाँ पर अपने उद्देश्य को एकदम दूरा मोड़ दे दिया है- जब एक शिरणी के रूप में नायिका मृगावती राक़ुंवर जिस दृष्टि से देखती है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि नायक को अपनी ओर आकर्षित करते हुए कहना चाहती है- "या अभी तक तुमने मुझे नहीं पहचाना ? मन में आदि पहचान का स्मरण कर दो।" सूफ़ियों का कथन है कि परमात्मा को सृष्टि के द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त करने की इच्छा हुई तब परमात्मा (सुदा) ने अपनी ही ज्योति (नूर) एक ज्योति की रचना की और इस ज्योति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना हुई । सूफ़ी साधना के अनुसार वही वह ज्योति है जिसे सृष्टि की रचना हुई । सूफ़ियों के अनुसार नूर-ए-मुहम्मद अर्थात् प्रथम ज्योति की सृष्टि जब परमात्मा ने की तब उसे देखकर परमात्मा उस पर मुग्ध हो गया और उसी के लिए सृष्टि की रचना की ।

क़ुरआन मजीद के एक प्रसंग के हवाले से सूफ़ी बराबर कहते हैं कि सृष्टि के पहले उन सभी क़रीरी आत्माओं से, जिन्हें धरती पर जाना था, परमात्मा ने कहा, "या मैं तुम्हारा प्रभु नहीं हूँ ? प्रत्येक आत्मा ने "हाँ" कहा ।

सूफ़ी इसे ही "आदि पहचान" कहते हैं और उस परमात्मा की लोभ और उसके पास लोट जाने को परम लक्ष्य मानते हैं। सूफ़ी परमात्मा को प्रेमस्वरूप मानते हैं और अपने आनन्द के लिए ही वह मानव हृदय में प्रेम उत्पन्न करता है। किन्तु मृगावती द्वारा कबुलान यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जो प्रेम पाने का अधिकारी होता है उसी पर परमात्मा प्रेम के रहस्य प्रकट करता है। वह प्रेम परमात्मा की कृपा से ही उत्पन्न होता है। कबुलान ने इस प्रेम को अपनी रचना में लोके रोक पट्टनाओं द्वारा दबाया है ।

कबुलान के प्रेमस्थान के कथानक से यह भी ज्ञात होता है कि वे सूफ़ी विचारधारा के साथ-साथ नाथपंथी योगियों की योग-साधना से भी प्रभावित रहे

हैं। भृगावती के कथानक में कृतुवन ने परमसत्ता को प्रियतमा के रूप में चित्रित किया है। राजकुंवर अर्थात् साधक को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। प्रेमी अपनी प्रियतमा को सोचने निकलता है तो योगी का रूप धारण कर लेता है। सुफ़ियों के अनुसार परमात्मा- परम सौन्दर्यस्वरूप है, परमात्मा का अनन्त सौन्दर्य साधक को अपनी ओर आकृष्ट करता है। ठीक इसी प्रकार साधक इसी राजकुंवर परमात्मा इसी भृगावती के सौन्दर्य और उसके द्वारा उद्भूत प्रेम से अभिभूत होकर सर्वस्व त्याग देता है। उस प्रेम के द्वारा वह अपने आपको भी जो देता है। उसका वह भाव सिद्ध जाता है और वह भृगावती से एकमेक होने की कामना करने लगता है।

मलिक मुहम्मद जायसी -

बाबाबं रामचन्द्र शुक्ल ने अपने बहुचर्चित "हिन्दी साहित्य के इतिहास" में मलिक मुहम्मद जायसी के सम्बन्ध में लिखा है-

"ये (जायसी) प्रसिद्ध सुफ़ी फ़कीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे और जायस में रहते थे। इनकी एक छोटी सी पुस्तक "आहिरी क्लाम" के नाम से फ़ारसी अक्षरों में इसी मिली है। यह ६३६ ख़िरी (सन् १५२८ के लगभग) बाबर के समय में लिखी गई थी। इसमें बाबसाह की प्रशंसा है। इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है-

भा अवतार मोर नो सदी । तीस बरस ऊपर कवि बदी ॥ "

जाने शुक्ल की लिखते हैं-

"जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है- 'पद्मावत', जिसका निर्माण-काल कवि ने इस प्रकार दिया है-

संयम करने मुस्तफा, संयम खान बस्कारी आदि विद्वान् "नवसदी" का अर्थ ६००
 हिजरी मानते हैं, अतः इन महानुभावों के अनुसार जायसी का जन्म ६०० हिजरी
 अर्थात् सन् १४६५ ई० में हुआ था। डा० कमल कुलबेष्ठ "नव सदी" का अर्थ "नई सदी"
 मानते हैं और जायसी का जन्म ६०६ हिजरी मानते हैं तथा जायसी का जन्म की रचना
 ६३६ हिजरी में मानते हैं। नन्दकुली पाण्डेय और सूरकिान्त शास्त्री के अनुसार जायसी
 का जन्म ८३० हिजरी में हुआ था। जबकि मोविन्द गिणायत ८७० हिजरी में जायसी
 की पंदाइश स्वीकार करते हैं। डा० शिवशाय पाठक का कहना है कि जायसी का जन्म
 ८८१ हिजरी में हुआ था ।

उपर्युक्त सभी विद्वानों के मतों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है
 कि यदि जानार्थ शुद्ध के मतानुसार जायसी का जन्म ६०० हिजरी माना जाय तो
 केवल ४७ वर्ष की अवस्था में वे पद्मावत नहीं लिख सकते थे । पद्मावत में जायसी का
 कथन है—

सन नौ सौ सेतालिस वहं । क्या आरम्भ वैन कवि कहं ॥

और न ही ४० वर्ष की लपेटावस्था को वृद्धावस्था कहा जा सकता है जैसा कि
 जायसी का कथन है—

मुकुन्द विरिध बरस अब भई । जोवन हुआ सो अवस्था गई ॥

कल जो गरुड के लीन करीक । दिखिट गई मेनन्ह दे नीक ॥

— पद्मावत, ६५३।१-२

यदि इसका जन्म ६०६ हिजरी में माना जाय तो ६४७ हिजरी में तो
 जायसी केवल ४१ वर्ष की अवस्था के उतरते हैं और जायसी द्वारा पद्मावत के अन्त
 में वर्णित उपर्युक्त वृद्धावस्था का ४१ वर्ष की अवस्था में प्रारंभ ही नहीं उठता।

और यदि ८३० हिजरी को जायसी की जन्म तिथि माना जाय तो पद्मावत की रचना तक उनकी अवस्था ११७ वर्ष हो जाती है। इस अवस्था में पद्मावत की रचना और अपने वार्षिक्य का वर्णन एकदम असंभव सी बात है।

८७० हिजरी में इनका जन्म होना स्वीकार किया जाय तो ७७ वर्ष की बुढ़ावस्था में इतने उत्कृष्ट काव्य पद्मावत का शुभारंभ न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता।

ज्ज्ञा: जन्म में ८८१ हिजरी में ही मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म होना उचित और न्यायसंगत प्रतीत होता है। इस तिथि को स्वीकार करने पर पद्मावत का शुभारंभ करते समय जायसी की अवस्था ६६ वर्ष उतरती है। इसी प्रौढ़ावस्था में उन्होंने पद्मावत की रचना की, जिसमें सुफ़ी सिद्धान्तों के साथ-साथ जीवन और ज्ञान की गहन अनुभूतियों को भी अंकित किया है तथा अपनी बुढ़ावस्था का भी सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। ज्ञा: यह सिद्ध होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म ८८१ हि० तदनुसार सन् १४७६ ई० में हुआ था।

मलिक मुहम्मद जायसी के पिता का नाम मलिक ज़ेनु ममरेज़ था। जायसी अपने बाल्यकाल में बहुत बीमार पड़े, चेचक के मज़ी मर्ज़ में उनकी एक आँख और एक कान जाता रहा -

मुहम्मद बार्ह दिसि तबी । एक सरवन एक आँखि ॥

- पद्मावत , ३३७।८-९

वे अपने बचपन में ही अनाथ हो गए थे ज्ञा: इसका बचपन बहुत ही कष्टनीय अवस्था में बीता। फिर जायसी कुछ समय तक संतों और फ़कीरों के साथ घूमे फिरे। युवा होने पर जायसी ने गृहस्थ जीवन भी व्यतीत किया।

जायसी बहुत संत स्वभाव के ईश्वर भक्त थे। किन्तु उनके कुछ जीवनकाल में कोई ऐसी दुःखद घटना घटी थी जिसके कारण वे भक्तिज्ञान को त्याग जाध्या-

स्विकृता की ओर भुके ओर प्रेम की पीर में उन्मथ होकर एक सुफुली संत के रूप में जीवन खिताने लगे ।

गुरु -

मलिक मुहम्मद जायसी हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में थे । इस परम्परा की दो शाखाएँ हैं- १- मानिकपुर शाखा और २- जायस शाखा । जायसी मानिकपुर शाखा के शेर मुहीउद्दीन को गुरु मानते थे-

गुरु मोह दी सेवक में सेवा । चले उताड़ल बिन्कर सेवा ।
 ज़ुजा भरु सेस बुरहान् । पंथ लाई जेहि दीन्ह गिवान् ॥
 कलहाद भल तिनह कर गुरु । दीन दुनिज रोसन सुखै ॥
 सेयद मोहानद के जोहँ चेला । सिद्ध पुरुष जंग जेहि सेला ॥
 दानिवाल गुरु पंथ छतार । हज़रत स्वाबा बिज़िर तिनह पार ॥
 भर परसन जोहि बरति स्वाबे । लई मेरए जहँ सेयद राबे ॥
 उन्ह सौ में पाई क्व करनी । उधरी बीभ प्रेम कवि बरनी ॥
 जोहँ सौ गुरु हों चेला नित बिनवाँ भाबेर ॥
 उन्ह हुति देखी पावों वरस गोसाईँ केर ॥

- पद्मावत २०।१-६

मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित उपर्युक्त पद से उनकी गुरु परम्परा निम्नलिखित है-

सेयद राजे

|

हज़रत स्वाबा बिज़िर

|

दानिवाल

|

।
सैयद मुहम्मद

।
कलदाद (कलालदाद)

।
शेर बुरखान

।
शेर मुहीउद्दीन मेहदी (मोहदी)

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचनाओं पदमावत, अतरावट, बाबुरी, कलान और बिलोखा में पीर सैयद अहरफ़ बलांगीर का भी उल्लेख बड़ी आदरपूर्वक किया है, इसीलिए कुछ लोगों को यह भ्रान्ति हो जाती है कि सैयद अहरफ़ भी जायसी के गुरु थे। जब कि यह सिद्ध हो चुका है कि पीर सैयद अहरफ़ का देहान्त जायसी के आविर्भाव से बहुत पहले हो चुका था। इसलिये सैयद अहरफ़ तो उनके नहीं थे, बल्कि शेर मुहीउद्दीन मेहदी ही उनके गुरु थे।

जायसी ने बहुत अधिक गंभीर अध्ययन किया था या नहीं, इस सम्बन्ध में कोई बात निश्चित नहीं है। किन्तु उनके ग्रन्थों के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता कि वे बहुतों और बहुविध अवसर थे। उन्हें अपने समय की विविध धर्मों का अच्छा ज्ञान था। इसकी सत्यता के प्रमाण उनके ग्रन्थ हैं -

हिन्दू धर्म से परिचय -

हिन्दू धर्म की उनभा सभी विशेषताओं से वे भली भाँति अवगत थे, उनके ग्रन्थों में वेदों का महत्त्व, हिन्दू धर्म के बहुदेवतावाद, तीर्थ और विविध विधान आदि अत्यधिक आंगोपांग कान उपबोध होता है। जैसे-

१- " वेद पन्थ ने नहीं कही है भूछिं वन पांफ़ । "

२- " पिता तुम्हार राज कर भोगी । पूजे विप्र परावि जोगी । "

३- "तैत्तिरीय कोटि देवता गाथा । आं हानवे मेघक गाथा ॥"

४- "चांसठ तीर्थ के सब ठाऊं । छेत फिरिऊं ओहि फिरिऊं नाऊं ॥"

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने ग्रन्थों में महाभारत, रामायण और पुराणों की अनेक कथाओं- कृष्ण कथा, कर्ण-अर्जुन कथा, रामकथा, नल-वसन्ती कथा, दुष्यन्त-शकुन्तला कथा आदि प्रसंगों को वर्णित किया है। इनके अतिरिक्त भृंहिरि, गोपीचन्द, गोरख, मच्छन्दर आदि लोक कथाओं के सम्बन्ध में भी लिखा है।

जायसी को ज्योतिष शास्त्र, जामशास्त्र तथा शकुनशास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था।

इस्लाम धर्म का ज्ञान-

मलिक मुहम्मद जायसी जन्म से ही मुसलमान थे, अतः इस्लाम धर्म का ज्ञान तो उन्हें प्रारम्भ से ही था किन्तु उनका यह ज्ञान थोड़ा न होकर अत्यधिक गहन, गंभीर और सम्पूर्ण ज्ञान था। उनके ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर इस्लाम धर्म से सम्बन्धित तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने अपने पद्मावत कृतज्ञान शरीफ की पवित्र आयतों का सार अनुचित रूप में प्रस्तुत किया है-

१- सर्वे नास्ति यत्त अह धिर ऐस साज जेहि केर ।

२- की-हेसि प्रथम बोति परगासू ।

की-हेसि तेहि विपरीत कलासू ॥

अथवा

"गुन-अक़ुन विधि पूछव, लोडहि छेत और जोख ।

व बिन उष आगे लोड, करव जगत कर मोख ॥" आदि

उपर्युक्त दोनों पंक्तियों में जायसी ने क़ामाफ्त (फ़रव) के दिन

बुद्धा (परमात्मा) द्वारा जीव का उठा-बोता पूछा जाया, जन्मे के गुणों और सत्त्वों का लिखाव किताब होगा और तभी फाँवर मुहम्मद साहब की सिफारिश पर दामा पिछने के वक़्त को भी जायसी ने इस्लामी सिद्धान्त के संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

साधना की चार अवस्थाओं शरीक, तरीक़्त, हकीक़्त और मजारीक़्त का वर्णन, साधना मार्ग के की कठिनाइयों का चित्रण, ज्ञान की कल्पना, आत्मा की पुरुष रूप में और परमात्मा की स्त्री रूप में प्रस्तुति सुफ़ी साधना के अन्तर्गत है, सुफ़ी साधना भी इस्लामी साधना के अन्तर्गत एक प्रमुख स्थान लिए हुए है।

योग-साधना से परिचय -

“कहां फ़िंठा सुत्तन मारी । सुनि समाधि छागि गई तारी ॥”

इसमूर्त पंक्ति से जायसी के योग-साधना का परिचय प्राप्त होता है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर योगिक-क्रियाओं का वर्णन किया है।

जायसी को भूगोल, इतिहास, दर्शन, पशु-पक्षियों की विविध जातियों का भी सम्यक् ज्ञान था। अतः जायसी प्रतिभासम्पन्न होने के साथ ही साथ व्युत्पन्न भी थे, किन्तु उनकी यह व्युत्पन्नता ज्ञान का परिणाम न होकर सत्संग तथा अनुभव पर आधारित थी। जायसी इतने अधिक ज्ञानी होते हुए निरभिमानी थे।

वे एक किशु, उदार और सज्जन व्यक्ति थे। शरीर से कुंठ

होते हुए भी मन से बहुत अधिक सुन्दर थे । वे सर्व सखियन ब्रह्म के प्रचारक होने के साथ ही सच्चे उपासक भी थे। वे एक सच्चे मुसलमान तथा सहिष्णु भक्त थे । वे प्रेम की पीर के गीत गाने वाले मस्तमौला कवि थे, उनका कण्ठन-मण्डन से तनिक भी सम्बन्ध नहीं था ।

हिन्दू परिवार की कतानी लेकर बध्यात्म रूप का निरूपण करनेवाले रहस्यवादी कवि थे । हिन्दू वीरों के शौर्य, पराक्रम, बोंदा के गुणों का उदात्तन होकर वर्णन करते थे ।

जायसी के व्यक्तित्व के चारों गुण उन्हें सत्य ही मान्यता के उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करते हैं ।

मलिक मुहम्मद जायसी को देहावसान ४ रजब, ६४६ हिजरी तदनुसार सन् १५४४ ई० में हुआ था। उन्होंने ७० वर्ष की आयु व्यतीत की ।

मलिक मुहम्मद जायसी की रचनाएं-

- | | |
|------------|------------------|
| १- पदुमावत | ७- चित्रावत |
| २- अजरावट | ८- सुवानामा |
| ३- सगरावत | ९- मोरावनामा |
| ४- इतरावत | १०- मुकरावनामा |
| ५- मटकावत | ११- मुसरावनामा |
| ६- चम्पावत | १२- पोस्तीनामा |
| | १३- होलीनामा |
| | १४- जागिरी क्लाम |

१५- पद्मावत	२०- कहरानामा
१६- चोरठ	२१- स्फुट कवितारं
१७- जयवी	२२- लहारावत
१८- मेनावत	२३- सहरानामा
१९- मेहरावतनामा	२४- मसला वा मसलानामा

इन रचनाओं में केवल इ: को छोड़कर अन्य ग्रन्थों के केवल नाम ही उपलब्ध होते हैं। प्रकाशित होने वाली रचनाएं हैं -

१- पद्मावत	४- चित्ररेखा
२- कहरावत	५- कहरानामा और
३- आशिरी क्लाम	६- मसलानामा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम "जायसी ग्रंथावली" में पद्मावत, कहरावत और आशिरी क्लाम का सम्पादन एवं प्रकाशन किया। फिर डा० माता प्रसाद गुप्त कहरानामा को भावरी जायसी के नाम से प्रकाशित कराया। डा० शिवसहाय पाठक ने चित्ररेखा का सम्पादन करके उसे प्रकाशित कराया। पाठक जी को ही मसलानामा की भी एक तण्डित हस्तलिपि प्राप्त हुई जिसे उन्होंने अपने "तोष-प्रबन्ध" मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य "के परिशिष्ट में अविलम्ब से प्रकाशित कराया है। कहरानामा और मसलानामा को भी जमर बहादुर सिंह जमरेश ने सम्पादित करके प्रकाशित कराया है।

इस प्रकार जायसी की कुछ मिलाकर केवल इ: रचनाएं ही प्रकाश में आई हैं।

पद्मावत -

मलिक मुहम्मद जायसी के ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना पद्मावत है। इस ग्रन्थ की अब तक लगभग ३३ प्रतियां प्राप्त हो चुकी हैं। किन्तु इसके पितृद्व

संस्करण की आवश्यकता अभी तक बनी हुई है जिसके पूर्ति का सफेद प्रयास डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपनी सम्पादित 'जायसी ग्रंथावली' में किया है। किन्तु फिर भी बोलचाल की बव्बी की प्रकृति तथा ठोक्क्यावों में प्रयुक्त शब्दावली के आधार पर एक नया संस्करण की फिर भी बनी हुई है।

डा० शिवसहाय पाठक के अनुसार आज तक लोध के वालोंक में पद्मावत की ५० से अधिक हस्तलिखित प्रतियों का पता चला है जिनमें से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, मुद्राबद्ध लाहवैरी पटना, पटना म्यूजियम बांदा से प्राप्त दो हस्तलिखित प्रतियाँ, गोरखपुर के डा० भावतीशरण सिंह को प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ का दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। ग्रियर्सन, आचार्य शुक्ल और डा० माताप्रसाद गुप्त आदि के सम्पादकों का अनुशीलन करने के उपरान्त स्पष्ट हो जाता है कि उनके दृष्टियों के होते हुए भी शुक्ल जी का सम्पादन अधिक उपयोगी और उपयुक्त है।

पद्मावत का रचनाकाल और लिपि -

पद्मावत की रचना ६४७ खिरी में हुई। ऐसे इस ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मतभेद रहे, क्योंकि हस्तलिखित प्रतियों में अलग-अलग तिथियाँ जैसे ६२७ हि, ६३६ हि, ६४५ हि, ६४७ हि और ६४८ रचना तिथि रूप में प्रस्तुत की गई हैं। किन्तु वास्तविकता यही है कि इस महान् सूफी प्रेमालयान की रचना मुहम्मद जायसी ने ६४७ हि तदनुसार सन् १४४० ई० की थी।

जायसी के पद्मावत की मूल प्रति फ़ारसी (बर्बी) लिपि में है। बव्बी भाषा का ऐसा नमूना और 'सस्पसी' रूप पद्मावत में मिलता है, ऐसा अन्यत्र कहीं

हैं। डॉ. आचार्य शुक्ल के मतानुसार जायसी ने पद्मावत की रचना भारतीय सगर्वदृष्टि में न करके फारसी की मसनवी शैली में की है। कुछ वाधुनिष्ठतम शोधकर्ताओं का मत है कि जायसी ने पूर्णरूपेण भारतीय परम्परा का अनुसरण किया है। इस सम्बन्ध में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत भी दृष्टव्य है, उनका कथन है कि "संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के प्रधान काव्यों या जो कल प्राप्त काव्यों रूप विकसित हुआ था, उसी के अनुसार जायसी ने पद्मावत का रूप पल्लवित किया। साथ ही फारसी के प्रेम काव्य या मसनवी व्याजों का और भारतीय प्रेम-काव्यों का तो पद्मावत के वस्तु-विधान और रूप-विधान पर बहुत कुछ सादासा प्रभाव पड़ा ही है।"^१

डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि "पद्मावत का सबसे बड़ा सौन्दर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में है। नागमती का विरह वर्णन, उसकी उन्माद दशा, पशु-पक्षियों का उसके सहानुभूति प्रकट करना, फाँसी द्वारा वध आदि सभी रसाभासिकता के साथ "विदग्धापूर्ण-भाषा" में वर्णित हैं। बारम्बार में वेदना का कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का मरिचक माधुर्य और प्रकृति की सभी अभिव्यक्तियों में हृदय की मनोहर अनुभूति है। इसी मनोवैज्ञानिक चित्रण में रसों का सफ़ल प्रदर्शन हुआ है।"^२

उपर्युक्त मतों के अतिरिक्त अन्य अनेक मत हैं जिनमें पद्मावत की छिपि, भाषा और ऐसी सम्बन्धी विचार प्रकट किये गये हैं। किन्तु यह बात तो सर्वथा सिद्ध है कि पद्मावत तथा अन्य सूफ़ी प्रेमाख्या न एवं काव्यफारसी मसनवी शैली के ढंग पर ही प्रणीत किये गए हैं। इन रचनाओं पर भारतीय प्रभाव अवश्य है। हिन्दी के लगभग समस्त सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यों में फारसी मसनवी के आधार पर प्रायः क्रमानुसार हुदा, फोम्बर मुहम्मद साद्व, पीर या गुरू एवं शाल-र-बका

१- पद्मावत - प्राक्कथन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० रामकुमार वर्मा,

की स्तुति का प्राधान्य है। इसके पश्चात् उसके अपना व्यक्तिगत परिचय देता है और कथा प्रधान पात्रों के परिचय से प्रारम्भ होती है, नायक का जन्म जेक पुजा, मन्त्रियों, दान देने के अतिरिक्त ईश्वर की अत्यधिक भक्ति और उसके याचना के पश्चात् होता है और नायक बहुत ही अकेला ही होता है, कोई भाई या उपनायक नहीं होता। फिर कवि मसनवी की प्रणाली पर इनमें प्रसंगों के नाम पर संगों के नाम प्रस्तुत करता है। किन्तु प्रकृति चित्रण भारतीय ढंग पर ही किया जाता है। कथा का अन्त संयोग हो जाने पर दुःखान्त ही ढंग होता है इससे सुफ़ी कवि संसार की अनित्यता को प्रदर्शित करना चाहता है।

जायसी का पद्मावत भी उपर्युक्त बातों के आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है।

पद्मावत का कथानक -

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने अत्यधिक प्रसिद्ध, प्रौढ़ एवं अद्वितीय ग्रंथ "पद्मावत" में जो कथा प्रस्तुत की है, उसका सार निम्नलिखित है-

सिंहल राज्य के राजा गन्धर्वसैन की महारानी चम्पावत से एक अत्यन्त सुन्दरी अलौकिक कन्या का जन्म हुआ। इस सुन्दरी कन्या का नामकरण चम्पावती हुआ। इस सौन्दर्य के गुणों के कारण वह अल्पावस्था में ही बहुत अधिक विदुषी हो गई। बारह वर्ष की अवस्था में ही वह यौवन की मदनमत्ता से व्यथित रहने लगी, किन्तु उसकी चिन्ता उसके पिता को न थी क्योंकि वे तो अपने ऐश्वर्यशाली जीवन में रत थे।

राजकुमारी चम्पावती के पास एक शुक था, जिसका नाम था हीरामन। वह एक प्रकार से राजकुमारी की सेवा था। हीरामन शुक बहुत बड़ा पण्डित और जादूी व क्षर था। वह शुक मानवों की भाषा बोलता था, उसने राजकुमारी को दुखी देखकर उसे धैर्य दिया और उसके योग्य वर सोचने की प्रवृत्ति भी की। शुक ने

इन संवादों की सूचना किसी प्रकार राजा को प्राप्त हुई, जब उसने शुक को मार डालने की आज्ञा दी, किन्तु राजकुमारी के अनुनय विनय करने पर शुक की प्राण रक्षा हुई। हीरामन शुक राजा की ओर से अत्यधिक सशक्त हो गया था, इसलिए एक दिन अप्सर पाकर, पिंजड़े से उड़कर वन की ओर चला गया। राजकुमारी पद्मावती हीरामन के इस प्रकार अचानक चले जाने से और अधिक दुःखी रहने लगी क्योंकि वही तो उसका एकमात्र अन्तरंग था।

वन में अन्य पक्षियों ने हीरामन शुक का स्वागत और वह उनके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगा। एक दिन एक बहेल्ले के जाल में हीरामन शुक भी फँस गया। बिड़ीमार उसे बेचने के लिए हाट ले गया। वहाँ चितोड़ के एक ब्राह्मण ने इस शुक को खिटान् समझकर खरीद लिया और इसे लेकर अपने देश चितोड़ लौट गया।

उस समय चितोड़ का राजा रत्नसेन था, जोकि अपनी पिता रत्नसेन के पर्यायपरान्त सिंहासनाब्द हुआ था। राजा रत्नसेन तक ब्राह्मण के शुक की खिटा की सूचना पहुँची, तब राजा रत्नसेन ने भारी मूल्य देकर उस शुक को ब्राह्मण से खरीद लिया।

एक दिन जब राजा रत्नसेन तिकार लेने गया हुआ था। तब उसके पीछे राजमहल के अन्तःपुर उसकी रानी नागमती दफंग के सम्मुख लड़ी होकर अपने स्व सौन्दर्य को निहार रही थी। तभी अचानक उसने हीरामन शुक से प्रश्न किया कि "तुम्हारे सिंह देश में मेरे समान कोई सुन्दरी है?" शुक ने उत्तर दिया - "सिंह की राजकुमारी पद्मावती और तुम्हारे स्व सौन्दर्य में दिन-रात का अंतर है।" शुक की यह बात सुनकर रानी नागमती बहुत क्रुद्ध हुई और शुक को भावी संका रक्ते हुए मार डालने का आदेश दिया, किन्तु दासी ने शुक को न मारकर छिपा दिया। इस प्रकार एक बार फिर हीरामन शुक की प्राण रक्षा हुई।

शान को जब राधा शिकार खेलकर वापस लौटा तो शुक को न पाकर बहुत परेशान हुआ । फिर उसने रानी नागवती को हीरामन शुक को प्रस्तुत की, कठोर आज्ञा दी, रानी प्रसन्न हो गई, किन्तु दाई की होशियारी से रानी राजा के क्रोध से सुरक्षित रही । दाई ने तोता राजा रत्नसेन के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया ।

जब राजा ने हीरामन शुक से वृत्तान्त पूछा तो उसने पूरी घटना सब-सब बता दी । पद्मावती के प्रसंग से राजा विचलित हो उठा, उसने शुक से पद्मावती का सम्पूर्ण सौन्दर्य वर्णन करने को कहा । राजा की आज्ञा पाकर हीरामन शुक ने पद्मावती का नव-रस वर्णन किया । इस वर्णन को सुनकर राजा रत्नसेन पद्मावती के प्रेम में उन्मत्त हो गया, हीरामन ने प्रेमार्ण की कठिनाई समझाई । माता और पत्नी ने कहना किया, सबने समझाया, किन्तु राजा ने किसी की न सुनी और राजा रत्नसेन सौतह हजार सेना के साथ योगी बनकर पद्मावती की प्राप्ति के लिए सिंकु पर्व की ओर चले गया ।

छात्रा एक मास पश्चात् वह सागर तट पर पहुंचा । उस प्रदेश के राजा गजपति ने रत्नसेन का स्वागत किया । गजपति ने रत्नसेन को समुद्री यात्रा की कठिनाईयों से अवगत किया और उसे जाने जाने से रोकना चाहा किन्तु रत्नसेन तनिक भी विचलित न हुआ और सिंकु जाने की विद करता रहा । तब गजपति ने जलानों की उचित व्यवस्था करके रत्नसेन तथा उसके साथियों को विदा किया । ये लोग लार, लीर, दधि, उदधि, सुरा और छिक्किता आदि समुद्रों की दुष्कर यात्रा करते हुए अन्ततः मानसर में पहुँचे और वहाँ पहुँचकर इनको शान्ति की प्राप्ति हुई । तत्पश्चात् वे लोग सिंकु पर्व । वहाँ पहुँचकर हीरामन शुक ने राजा रत्नसेन को महादेव के मण्डप पर रुकने के लिए कहा और साथ ही उसे यह भी बताया कि वहाँ पर पद्मावती वसन्त पंखी की पूजा के लिए जा रही तब तुमको उसके दर्शन होंगे और तत्पश्चात् तुम उसकी प्राप्ति कर सकोगे ।

फिर हीरामन शुक (शुक) राजा से विदा लेकर राजकुमारी पद्मावती के पास पहुँचा । राजकुमारी शुक को प्राप्त करके बहुत रोई, हीरामन ने

उसको धर्म बंधाया और उसे वह दुःख सूचना दी कि वह उसके लिए उपयुक्त वर लेकर आया है। फिर बातों ही बातों में पद्मावती से वसन्त पंचमी पर महादेव के मण्डप पर आने की प्रतिज्ञा ले ली और इस बात की सूचना वाफिसलाटकर राजा रत्नसेन को भी दे दी।

प्रतिज्ञानुसार पद्मावती वसन्त पंचमी की पूजा करने महादेव के मण्डप पर गई, वहां महादेव की पूजा करने के साथ ही अपने लिए एक उच्छिन्न वर की याचना भी की। फिर वह अपनी सखियों सहित योगी-रु को देखने गई, रत्नसेन पद्मावती को देखकर बेहोश हो गया। उस कुमारी ने चन्दन लाकर रत्नसेन को होश में लाने का प्रयास किया किन्तु वह होश में नहीं आया। तब पद्मावती ने राजा के वटास्थल पर चन्दनादारों में ड्रिप्ता- "तू भिक्षा प्राप्त के अवसर पर सो गया, अभी तेरा योग कच्चा है।" तत्पश्चात् पद्मावती अपने मण्ड को छोड़ गई।

होश में आने के बाद रत्नसेन रौने लगा और आत्महत्या के बारे में दृढ़ संकल्प करने लगा, सभी पाषाणीपेश वस्त्र कर वहां जा जाती हैं और रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेती हैं, तथा प्रसन्न होकर, रत्नसेन की मनोकामना पूर्ण करने के लिए भावानु शिव से अनुरोध करती हैं। सब शिव रत्नसेन को सिंहाद पर वाकुण्ठ करने का मार्ग बताते हैं। रत्नसेन अपने सखियों के साथ सिंहाद को घेर लेता है और सिंहा नरेश गन्धर्व सेन को समाचार भेजता है कि वह राजकुमारी पद्मावती की भिक्षा चाहता है। यह बात सुनकर गन्धर्वसेन क्रोध हो उठता है किन्तु मंत्रियों के समझाने से शान्त हो जाता है। रत्नसेन शिव द्वारा बताये गए मार्ग से गढ़ पर चढ़ता है किन्तु प्रातःकाल हो जाने के कारण पकड़ा जाता है। उधर अन्य योगी भी पकड़ लिए जाते हैं। गन्धर्वसेन राजा रत्नसेन को सूली पर चढ़ाने की आज्ञा देता है, सभी एक भाट लेकर रत्नसेन की अवस्थिति बता देता है, जिसकी पुष्टि हीरामन करता है, तो गन्धर्वसेन प्रसन्न होकर रत्नसेन को स्वतंत्र कर देता और उससे अपनी

पुत्री पद्मावती का विवाह कर देता है। फिर रत्नसेन और पद्मावती का मिलन होता है और वे सुखी होकर षडभुजों में सम्मोग क्रीडाएं करते हैं।

उधर चितौड़ में नागमती अपने पति रत्नसेन के विरह में व्याकुल रहती है। एक पक्षी उस पर क्या करके उसका संदेश रत्नसेन के पास ले जाता है। नागमती का संदेश पाते ही रत्नसेन पद्मावती को साथ लेकर चितौड़ के लिए प्रस्थान करता है, रत्नसेन जब सागर तट पर पहुंचता है तो स्वयं समुद्र पक्ष बकलकर ब्राह्मणा रूप में रत्नसेन से दान मांगता है। राजा उस पर क्रुद्ध हो उठता है, फलतः जब राजा का कलवान समुद्र के मध्य में पहुंचता है तो समुद्र अपना क्रोध प्रकट करता है और जहाज तूफान में भटक जाता है। एक रादास के झुलझुलाने द्वारा जहाज भंवर में फंसकर टुकड़े टुकड़े हो जाता है और रत्नसेन तथा पद्मावती जल-जल लकड़ी के तख्तों पर बह जाते हैं। पद्मावती बहती हुई समुद्र की पुत्री लक्ष्मी के पास पहुंच जाती है। लक्ष्मी उसे होश में लाकर उसका परिचय प्राप्त करती है और पद्मावती पति का स्मरण करके व्यथित होती है। लक्ष्मी उसे जल वाशुस्त कर अपने पिता समुद्र से रत्नसेन को सोचने का अनुरोध करती है। रत्नसेन बहता हुआ एक पक्षीय घाट पर जा पहुंचता है अपनी पत्नी के लिए व्याकुल होकर प्राणा देने को उक्त होता है, तभी ब्राह्मणा के वेश में जाकर उसे बचा लेता है और उसको पद्मावती के पास ले जाता है। लक्ष्मी पद्मावती का वेश धारण करके रत्नसेन के पुनः की परीक्षा लेती है, जिसमें राजा उत्तीर्ण हो जाता है और उसका अपनी पद्मावती से मिलन हो जाता है। फिर वे दोनों चितौड़ पहुंचते हैं वहां उनका स्वागत होता है। राजा रत्नसेन अपनी दोनों पत्नियों नागमती और पद्मावती से समान रूप से प्रेम करता है किन्तु उन दोनों में सौखिन्या हाह होने के कारण केमनस्य बना रहता है, पर राजा के प्रयत्नों से दोनों में मेल हो जाता है।

राजा रत्नसेन के एक दरबारी का नाम रामच चेतन होता है वह जेक विधाओं में पारंगत होता है। एक बार वह अपनी विद्या के बल पर जलपूरी अवस्था

कानावस्या की रात में द्वितीया का चन्द्रमा फिटाकर पण्डितों को परास्त कर देता है। बाद में उसका भेद खुले पर रत्नसेन उसे राज्य से निकाल देता है। इस बात से पद्मावती को भविष्य में अभिष्ट की आशंका होती है, वह राधवसेनक को प्रसन्न करने के लिए बुलाकर भरोसे से अपने एक कान को गिराकर उसे उपहार स्वरूप भेंट करती है। किन्तु राधवसेन पद्मावती के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है।

कुछ समय पश्चात् वह दिल्ली जाकर वहाँ के शासक अलाउद्दीन के सम्मुख पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है। अलाउद्दीन रत्नसेन से पद्मावती की माँग करता है किन्तु राजा द्वारा इस बात को न मानने पर अलाउद्दीन चिढ़ पर आक्रान्त हो जाता है, भ्रंशर युद्ध के बाद भी अलाउद्दीन अपने मन्त्रालय में सफल नहीं होता तब वह रत्नसेन के पास सन्धि-प्रस्ताव भेजता है। राजा रत्नसेन सन्धि करने को तैयार हो जाता है। राजा, बावशाह अलाउद्दीन को भोज देता है। अलाउद्दीन गढ़ के भीतर जाता है और वहाँ रत्नसेन के साथ स्तरांश लेता है। तभी सखियों के अनुरोध पर जब पद्मावती अलाउद्दीन को देखने के लिए भरोसे से भ्रातृत्वी है तो दर्पण में उसके प्रतिबिम्ब को देखकर अलाउद्दीन बेहोश हो जाता है। राधवसेन बाद में बावशाह को बताता है कि उसने दर्पण में पद्मावती को ही देखा है।

जब रत्नसेन बावशाह को गढ़ से बाहर छोड़ने जाता है तभी अलाउद्दीन उसको बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाया जाता है। दिल्ली में राजा को अनेक वंशजों की जाती हैं। नागवती और पद्मावती बहुत विद्याप करती हैं। इसी बीच कुम्भनेर के राजा देवपाल की कूती और डाह कूती के द्वारा पद्मावती को फलभ्रष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। सखियों के परामर्श पर पद्मावती गौरा-बाबल से अपने पति को बुलाकर लाने को कहती है। ये दोनों राजा को छुड़ाने की प्रतिज्ञा करते हैं। सोलह साँ कण्डोहों में सशस्त्र राजपूत बैठते हैं और एक तबी कुँ पालकी में एक छोटी बंठता

है और यह प्रचार कर दिया जाता है कि पद्मावती अपनी ससियों के साथ बादशाह के पास जा रही है। दिल्ली पहुँचने पर शाह के पास यह प्रस्ताव भेजा जाता है कि रानी पद्मावती एक दाय्ये के लिए राजा रत्नसेन से मिलकर बादशाह के पास जा जाएगी। अलाउद्दीन ये क़ैत है। बाक़, राजा को लोहार की सहायता से बंधन मुक्त करा के चिबोड़ की ओर प्रस्थान करता है और ग़ोरा बादशाह के सैनिकों द्वारा युद्ध करता हुआ मार दिया जाता है।

राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती का मिलन होता है। पद्मावती राजा को देवपाल द्वारा मृती भेजने की बात बताती है। रत्नसेन और देवपाल के युद्ध में देवपाल मारा जाता है और रत्नसेन घायल हो जाता है और फिर रत्नसेन बाक़ को गड़ सोंपकर मर जाता है। पद्मावती तथा नानमती राजा के साथ लौटती हैं। बादशाह अलाउद्दीन गड़ में जाता है तो उसे ख़िता की रात के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता है। बादशाह से युद्ध करते हुए बाक़ भी मारा जाता है और चिबोड़ पर अलाउद्दीन का शासन हो जाता है।

कथा के अन्त में, कवि इस प्रेम-कथा को काव्य-रूप में प्रस्तुत करने पर संतोष व्यक्त करता है।

ऐतिहासिकता-

पद्मावत के अन्तर्गत पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस कथा में मुख्यपात्रों के नामों को छोड़कर पौराणिक की सम्पूर्ण कथा एकदम कल्पित है, किन्तु इस प्रेम-कथान के उत्तरार्ध की कथा ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। ऐसा अधिकतर विद्वान् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निम्न कथन के आधार पर मानते हैं -

“जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली हैं, पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उद्देश्य द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इस रूप में इस कहानी का पूर्वार्थ तो एकदम कल्पित है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक आधार पर है।”^१

वास्तविकता यह है कि पद्मावत की कथा बिल्कुल भी ऐतिहासिक नहीं है। वह विभिन्न लोककथाओं के आधार पर निर्मित हुई है। यदि रत्नसेन और पद्मावती की कथा ऐतिहासिक होती तो जरूर दूसरों और जनीं अवश्य ही उस संबंध में कुछ लिखते। किन्तु उन्होंने दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का नाम ही तो लिया है किन्तु रत्नसेन और पद्मावती या पद्मिनी का कहीं उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि पद्मावत की कथा लोककथाओं के आधार पर एकदम कल्पित कथा है जिसका इतिहास से दूर का भी सम्बन्ध नहीं रहा है।

जैसे पद्मावत का अर्थानक एक जीवन- एवं सुसंगठित कथानक है। इसमें नायक और नायिका को समान महत्त्व दिया गया है। इसके अर्थानक में जीवन के लगभग सभी कार्यों, संघर्षों और व्यापारों का तथा परिस्थितियों का व्यापक चित्रण हुआ है। इसीलिए पद्मावत को एक महाकाव्य माना जाता है।

पद्मावत का उद्देश्य काम और मोह है। काम को जायसी ने व्यापक-तम अर्थों में ग्रहण किया है। जायसी लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम तक ले जाना चाहते हैं अथवा दूसरे शब्दों में पद्मावत का उद्देश्य इस्क-ए-मजाजी से इस्क-ए-खकीकी की ओर अग्रसर होना है। “पद्मावत” के पद्मावती और रत्नसेन वास्तव में परमात्मा और साधक के प्रतीक हैं।

पद्मावत में दर्शन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। “पद्मावत” में दार्शनिकता उल्लेखनीय है। स्वाभाविक रूप से प्रकट होती रहती है। अन्य

कवियों की भांति इसमें वास्तविकता को बताना नहीं ठूँसा है। वह तो कथानक का ही एक अंग बन गई है। इसमें आध्यात्मिकता तो लोकिकता के द्वारा ही बतलाने एवं स्वाभाविक रूप में प्रकट हुई है।

पद्मावत की कथा का मूल स्रोत-

दो एक पुराणों में पद्मावती से सम्बन्धित कथा के कुछ सूत्र उपलब्ध होते हैं। किन्तु इसका आधार भी लोककथाएं हैं। इससे ज्ञात होता है कि पद्मावती सम्बन्धित लोककथाएं भारतवर्ष में प्राचीन समय से चली आ रही हैं। पुराणों के पश्चात् संस्कृत साहित्य में उदयन और पद्मावती की प्रेमकथा का उत्तम प्राप्त होता है। कुछ विद्वान् इस कथा का मूल स्रोत गुह्य०गुह्य० गुणादय की वृक्ष कथा को मानते हैं। इस वृक्षकथा में उदयन और वासवदा को पति-पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है और पद्मावती को प्रेमिका के रूप में। किन्तु बाद में उसका विवाह भी राजा से सम्पन्न हो जाता है। वृक्ष कथा की यही कथा आगे चलकर लल-लल रूपों में लोककथाओं के माध्यम से अत्यधिक प्रसिद्ध हुई और जायसी ने लगभग सभी प्रचलित पद्मावती सम्बन्धित लोककथाओं के आधार पर अपनी कथा की रचना की, इसीलिए इसका कथानक नवीनता लिए हुए है।

पद्मावत का प्रबन्ध काव्यत्व -

विद्वानों के अनुसार एक अच्छे प्रबन्ध काव्य में निम्न बातों का होना आवश्यक है-

- १- प्रबन्ध काव्य में एक वास्तविक एवं प्रकरणापूर्ण कथा होनी चाहिए।
- २- उसमें प्रासंगिक कथाओं की सुसम्बद्ध योजना होनी चाहिए।
- ३- उसके वस्तु-वर्णन रसात्मक होने चाहिए।

४- उसके वस्तु-वर्णनों को मुख्य कथा से पूर्णतः सम्बद्ध होना चाहिए।

५- कार्य की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य के सात इतिवृत्त में एकलपता होनी चाहिए।

उपर्युक्त सभी तत्त्व हमें 'पावनी' के पद्मावत में उपलब्ध होते हैं, यथा-

१- पद्मावत की सम्पूर्ण कथा 'चिह्नोद्गीप वर्णन' लण्ड से लेकर 'पद्मावती-नागमती' सती लण्ड तक ५६ लण्डों में विभक्त है। इसमें पद्मावती और रत्नसेन के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सम्पूर्ण जीवन का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रेमाख्यान के सभी लण्ड परस्पर सम्बद्ध हैं और सभी लण्डों का सम्बन्ध पद्मावती और रत्नसेन की जीवनाथा से है। इसकी सम्पूर्ण कथा सा नुबन्ध है और इसमें सर्वत्र प्रकथन का ही प्राधान्य है, अतः पद्मावत काव्य में कवि ने प्रकथनपूर्ण सानुबन्ध कथा को प्रस्तुत किया है।

२- पद्मावत में मुख्य कथा तो पद्मावती और रत्नसेन की है, किन्तु इस मुख्यकथा के अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक कथारं भी इस काव्य में मिलती हैं। जैसे-

- (१) हीरामन तोते की कथा
- (२) चिह्नोद्गी के बंधारों की कथा
- (३) ब्राह्मण की कथा
- (४) राधा गणापति की कथा
- (५) महादेव मण्डप में शिव-पार्वती मिलन की कथा
- (६) नागमती के संदेश वाक्य पदांगी की कथा
- (७) सात समुद्रों की कथा
- (८) समुद्र का ब्राह्मण रूप धारण करने की कथा
- (९) गन्धर्वसेन द्वारा जोगी (रत्नसेन) को सूझी देने की कथा
- (१०) लक्ष्मी-समुद्र की रत्नसेन से भेंट की कथा।
- (११) राघव जेतन की कथा

(१२) कलाउइदीन के चितोड़ पर आक्रमण की कथा

(१३) देवपाठ की कथा

(१४) गोरानाथ की कथा

आदि अनेक प्रासंगिक कथाओं से पद्मावतु जोत-प्रोत है, ये सभी कथाएं प्रसंगिक हैं। इन्हें अवदस्ती मूल कथा में अंत नहीं गया है। इन सभी प्रासंगिक कथाओं का संबंध किसी-न-किसी रूप में नायक-नायिका से है। ये स्वयं में पूर्ण स्वतंत्र न होकर मूल कथा का अनुगमन करती हैं। इस प्रकार पद्मावतु में प्रासंगिक कथाओं का सुसम्बद्ध योजना मिलती है, जिससे काव्य की मूल कथा और अधिक मनोरंजक, रोचक और सरस बन गई है।

पद्मावतु में स्थान-स्थान पर वस्तु वर्णन उपलब्ध होते हैं। जैसे-

(१) सिंछलीप का उत्पन्न विस्तृत वर्णन

(२) मानसरोवर का रोचक एवं मनोरंजक वर्णन

(३) पद्मावती के अलौकिक रूप सौन्दर्य का मह-हित वर्णन

(४) सात समुद्रों का प्रभावोत्पाक वर्णन

(५) गन्धर्वदेव के सात लण्डों वाले धोराहर का वर्णन जहां राजा और पद्मावती का मिलन होता है।

(६) कवि ने विभिन्न प्रकार की नारियों

का भी सुन्दर वर्णन किया है।

(७) बादशाह के आक्रमण और राजनीतिक दांव-पेंच का वर्णन।

(८) युद्धों का वर्णन

(९) गोरानाथ के नातृ के साथ शूर-वीरता का वर्णन आदि।

अनेक ऐसे वस्तु वर्णनों की योजना इस काव्य में हुई है जिनके कारण काव्य की कथा प्रवक्तान लुप्त तथा और भी मनोरंजक बन गई है।

४- पद्मावतु में कविने भी वस्तुवर्णन जाये हैं वे सबके सब इसकी मूलकथा को प्रभाव-शाली बनाने और सुन्दर करने में पूरी-पूरी सहायता प्रदान करते हैं। जैसे सिंछलीप

कणन ने पद्मावती की कथा को सुन्दर एवं सजीव बनाने में पृष्ठभूमि का काम किया है। गान सरोवर के सुन्दर और रोचक कणन ने मूल कथा में और भी सौंदर्य भर दिया है। सात समुद्रों के कणन ने रत्नसेन के मार्ग की कठिनाइयों का निरूपण करके राजा के प्रयत्न का को पुष्ट किया है। इस प्रकार समस्त वस्तुवर्णन मुख्य कथा से पूर्णतया सुसम्बद्ध है।

५- पद्मावत के रचयिता का उद्देश्य और मुख्य कार्य है प्रेम की पीर को दिलाते हुए पद्मावती और रत्नसेन के चिर-मिलन को प्रस्तुत करना। इस कार्य में कवि ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। पद्मावत की पूर्वार्द्ध की कथा में तो रत्नसेन पद्मावती की प्राप्ति के लिए उक्त होता और सर्वेष्ट प्रयत्न करता है और उपरार्द्ध में अपने प्रयत्नों में सफल होकर वापिस लौटता है तथा अन्त में अपने उक्त मिलन को ज्मर बनाने के लिए पद्मावती की क्रांतिर बुद्ध में प्राणा त्याग का है और उसके साथ पद्मावती भी सती हो जाती है और इस प्रकार पद्मावती और रत्नसेन का मिलन होता है। वे न केवल शरीर से बल्कि मन और वात्सा से भी एक हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा में कार्य की दृष्टि से एककता का गह है। कवि मलिक मुहम्मद जायसी के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का मिलना प्रेम द्वारा ही संभव होता है। इसी तथ्य को रत्नसेन (साधक) और पद्मावती (परमात्मा) के प्रेम रूप में प्रदर्शित किया गया है। अतः पद्मावत में कार्य सम्बन्धी पूर्ण एककता के दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि वास्तव में सभी दृष्टिकोणों से मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत एक सजीव एवं सुन्दर प्रबन्धकाव्य है।

पद्मावत: एक वन्योक्ति -

मलिक मुहम्मद जायसी की सम्पूर्ण पद्मावत एक वन्योक्ति है अथवा नहीं?

राजा रत्नसेन और पद्मावती की पूर्ण प्रेमाथा जीवात्मा (रत्नसेन) और पर-
मात्मा (पद्मावती) के सुदृढ प्रेम का स्थूल रूप है। बायसी सफुली कवि होने के
कारण स्थूल प्रेम (इश्क-ए-मजाबी) से सुदृढ प्रेम कथवा अलौकिक या वास्तविक
प्रेम (इश्क-ए-हकीकी) तक जाने की बात के समर्थक हैं। बायसी ने अत्युक्ति
अत्योक्ति के द्वारा पद्मावती का पूरा अत्युक्ति पूर्ण सौन्दर्य धराट प्रकट का
वास्तविक रूप है। पद्मावत की कथा में वर्णित स्थलों और पात्रों का सुदृढ अध्ययन
करने के बाद कवि के कान्धेतानुसार निम्न बातों को मानना पड़ेगा -

- | | | |
|---------------|---|--------------|
| १- पद्मावती | - | परमात्मा |
| २- रत्नसेन | - | जात्मा |
| ३- हीरामन | - | गुरु |
| ४- शिंछू | - | स्वर्ग, लिय |
| ५- चितोड़ | - | जन |
| ६- राजा | - | जन |
| ७- पद्मिनि | - | बुद्धि |
| ८- नाममती | - | दुनिया धन्या |
| ९- राघवकेतन | - | संतान |
| १०- बलाउद्दीन | - | माया |

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त जो अन्य पात्र इस कथा में आये हैं, उनको क्या
माना जाये ? क्योंकि उनके लिए कवि ने कोई स्पष्ट कान्धेता नहीं दिया है। वे
साधारण सांसारिक पात्रों के रूप में ही प्रस्तुत किये गये हैं। इस काव्य में अनेक
स्थल ऐसे आते हैं जिनका कोई भी आध्यात्मिक पदार्थ नहीं लिया जा सकता।

वैसे बायसी ने सम्पूर्ण अत्योक्ति के तीन पदार्थ रखे हैं-

- १- प्रस्तुत प्रत्यक्ष पदा - पंडितों द्वारा दिया गया अर्थ
- २- प्रस्तुत अप्रत्यक्ष पदा- सुफ़ी साधनापरक अर्थ
- ३- अप्रस्तुत पदा - कथा पदा ।

उपरोक्त तीनों पदों का सामंजस्य करना कुछ कठिन प्रतीत होता है क्योंकि कवि इनमें उलझ सा गया है । कभी वह एक पदा को लेता है तो कभी दूसरे पदा को और कभी दोनों को एकदम भुलाकर अप्रस्तुत पदा जयवा कला पदा में अपने को रमा लेता है, ऐसे स्थलों पर आध्यात्मिकता को भी बहुत कलात्मक ढंग से मिला लेता है।

पद्मावत में कवि ने आध्यात्मिक संकेत तो अवश्य ही दिये हैं, किन्तु संपूर्ण गून्थ को ही उस परम सदा का ही ध्यान मानना उचित नहीं है। आः आचार्य शुक्ल के मतानुसार पद्मावत को एक अन्योक्ति न मानकर समोसोक्ति मानना ही उचित है।

जायसी, पद्मावत और सुफ़ी साधना तथा इस्लाम धर्म -

मलिक मुहम्मद जायसी चिरंजी सिलसिले में दीक्षित थे और इनके गुरु भी एक प्रसिद्ध सुफ़ी साधक शेख नुहीउद्दीन थे । जोकि प्रसिद्ध सुफ़ी गुरु शबाज मिजामुद्दीन जोधिया की शिष्य परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आः जायसी पर सुफ़ी साधना का गहन प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। जायसी ने सुफ़ी सिद्धान्तों की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति द्वारा उन सिद्धान्तों को बहुत सरस और ठोक-ग्राह्य बना दिया है। जायसी ने इस प्रश्न का सबसे सफल उदाहरण पद्मावत है।

जायसी ने पद्मावत में ठोकिर प्रेमकथा को आध्यात्मिक प्रेम की एक अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। पद्मावत के अन्त में उन्होंने इस बात की ओर स्पष्ट संकेत कर दिया है-

तन कि उर मन राजा कीन्हा । शिव सिंघल बुधि पद्मिनी चीन्हा ॥

गुरु सुजा बेहि पंथ दिखावा । बिन गुरु जग को निरगुन पावा ॥
 नागमती यह दुनिया बन्धा । बाँचा सोई न रहि छि बन्धा ॥
 राधव कू सोई ज्ञान । माया अछाउदीन सुखान ॥
 प्रेम कथा रहि भान्ति विचारहु । बुझि लेहु जो बुझ पारहु ॥

सूफी साधना के अनुसार जायसी के उपर्युक्त रूपक को निम्न रूप में समझा जा सकता है- तन (चिंता) में स्थित मन (रत्नसेन) साधारणतया लौकिक विषय वासनाओं में लिप्त रहता है, साथ ही वह दुनिया-बन्धे (नागमती) में लीप्त रहता है। ईश्वर की कृपा से उसे एक दिन परमसत्ता के सौन्दर्य का परिचय प्राप्त होता है और वह उस परम सत्ता की प्राप्ति के लिए विवश हो उठता है। पथ प्रदर्शक गुरु (हीरामन सुजा या तुक) की सहायता से वह लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। गुरु की कृपा से साधक को मार्ग की बाधा (नागमती, नफ़रत) से मुक्ति प्राप्त होती है। गुरु की ही कृपा से वह 'क़त्ब' या क़द (जात्ना) में स्थित सहज बुद्धि या मुबारिक (प्रज्ञा, पद्मिनी) की प्राप्ति की ओर बढ़ता है। जायसी ने पद्मावत में नफ़रत (नागमती) और मुबारिक (पद्मावती) दोनों का ही बहुत मार्मिक और सुन्दर चित्रण किया है। नफ़रत मुश्किल में विश्वास नहीं रखता, इसीलिए नफ़रत स्त्री नागमती कि गुरु स्त्री तुक की स्तुति करने का आदेश देती है। परन्तु सात्विक या जाद्विद (साधक) जब एक बार मुबारिक के सौन्दर्य से परिचित हो जाता है तो वह उसकी प्राप्ति के बिना मन से नहीं बैठता। सात्विक और मुबारिक के मार्ग में ज्ञान (राधव ज्ञान) और माया (अछाउदीन) बाधाएं डालते हैं। वे साधक या सात्विक के प्रज्ञा के ज्ञानन्द में बाधक होते हैं।

जायसी ने सूफी सिद्धान्त एवं मान्यता के आधार पर ही परम सत्ता की कल्पना पद्मावती के नारी रूप में की है। परमसत्ता अथवा पद्मावती लौकिक सौन्दर्य से संसार का कटा-कटा व्याप्त है। जायसी ने अनेक स्थलों पर पद्मावती

की अलौकिक शोभा का चित्रण किया है जैसे-

कहा मानसर बाह सौ पाई । पारस रूप इहां उगि आई ॥

भा निरमल तिम्र पायन्दु परसे । पाया रूप रूप के दर से ॥

महमसमीर बास तन आई । भा सीतल गे तपन बुझाई ॥

ना जानां कौन पौन लेई आया । पुन्य कला कई पाप गुंवाया ॥

जिने स्वाभाविक ढंग से बायसी ने मानसरोवर के माध्यम से पद्मावती के अलौकिक परम सौदा रूप को प्रदर्शित किया है। मानसरोवर पद्मावती के दर्शन मात्र से ही स्वयं को पुण्य स्वरूप मानने लगता है।

बैसा कि पहले भी हमने वर्णित किया है कि सूफ़ी साधना में साहिक या आविद अथवा साधक को अपने गन्तव्य की प्राप्ति के लिए चार अवस्थाओं- शरीक़, तरीक़, मवारिक़ और क़रीक़ - को पार करना पड़ता है। इन चारों अवस्थाओं को हम एक प्रकार से भारतीय कनकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और सिद्धावस्था का प्रतीक माना जा सकता है।

तसव्वुफ़ के मुकामात या साधना मार्ग की उपर्युक्त चार अवस्थाओं शरीक़, तरीक़, मवारिक़ और क़रीक़ को सूफ़ी, साहिक या साधक की यात्रा के चार मुकामात या बसेरे मानते हैं। स्वयं बायसी ने एक स्थान पर कहा है-

चारि बसेरे जो चढ़े, सत सौं उतरे पार ।^१

इन चारों बसेरों (मुकामात) को पार करने ही साहिक अपनी मंजिल तक पहुंचता है। उसकी आंखों के सामने से (याया का) पर्व उठ जाता है और वह क्षिपे हुए राइ (भेद) को जान लेता है। हिन्दी साहित्य में मुस्लिम सम्पर्क के परिणाम-

स्वरूप सुफ़ी तथा अन्य भक्तों उपर्युक्त साधनानामों की चर्चा मिलती है। जैसे-
दादू बानी में निम्न पंक्तियाँ फ़ारसी में उपलब्ध होती हैं-

बहार मंजिल क्या गुफ़्तम, वस्त करवः बूद,
मुक़ाम बि चीज़ हस्त वादनी समूद ।

पद्मावत और जायसी पर सुफ़ी सिद्धान्तों का प्रभाव दिखाने से पूर्व
सुफ़ी साधना के इन चारों मुक़ामों अथवा साधना मार्गों पर एक दृष्टि डालना
आवश्यक है-

शरीक़त -

शरीक़त का तात्पर्य इस्लाम की शरअ से है। यह वह अवस्था होती है
जिसमें साधक इस्लामी धर्मग्रन्थ तथा हदीसों के विधि-निर्णयों का सम्यक् रूप से
पालन करता है। वा शरअ साहिक पाबन्दी से नमाज पढ़ता है, रोज़ा रखता है और
क़ुरआन शरीफ़ तथा हदीस द्वारा बताये हुए मार्ग पर च़लकर जाने जाने वाले सफ़र
के लिए स्वयं को प्रशिक्षित कर लेता है। प्रत्येक काम करने से (ग़ुरू) की आज्ञा से
करता है। सुफ़ी, शरीक़त को सीधा मार्ग मानते हैं और बिना शरीक़त की सीढ़ी
को पार किए, सुफ़ी अपनी यात्रा पूर्ण कर, परम सत्य की खोज नहीं कर सकते।
जायसी अपने ग्रन्थ अक्बरावट में कहते हैं-

सांची राह शरीक़त , तेहि बिसबास न होई ।
पांव राह तेहि सीढ़ी निभरम पहुँचें सोई ॥

इसकी व्याख्या करते हुए जायसी नमाज़ की महत्ता निम्न रूप में प्रकट
करते हैं -

१- जायसी गुंथावली (अक्बरावट), पृ० ३२२

ना- नमाज़ है दीन कछुनी । फड़े सभाज़ सोई वह गूनी ॥^१

इसी प्रकार नकुमालती ग्रन्थ में कवि मन्त्रत्व की मर्यादा का प्रतिपादन किया है-

सुनो एक वचन हमारा । धरम पथ दुहु जा उजियारा ॥
वा के हुक्य धरम ना जागी । सो कस परे पाप के जानी ॥

हिन्दी के अधिकतर संत कवियों ने इस्लाम धर्म को पूर्णरूपेण न मानते हुए कथवा दूसरे शब्दों में बेहरब होते हुए भी सूफियों के सम्पर्क में जाने के कारण शरीक़ की अच्छाइयों का अनुभव किया था और अपनी काव्य में उसकी चर्चा भी करते हैं। जैसे गुरु नानक जी कहते हैं-

मुसलमाना सिफ़ति सरीक़ति पढ़ि पढ़ि करहि विचार ।
बन्ध से जि पवहि विधि बन्दी बेतण करु दीदार ॥^२

तथा

सरं सरीक़ति करहि बिचार । बिन बूझे कहे पावहि पाकार ॥^३

संत दादू दयाल का कथन है कि मानव पथ-भ्रष्ट हो जाय तो पहला कदम शरीक़ का अनुसरण करना है । किसी बुद्धिमान से अच्छाई-बुराई और छाल-हराम में ऊँच तथा नेकी-बंदी को पहचानने का ज्ञान प्राप्त करना ही शरीक़ है, दादू ने चारों मुकामात की भी चर्चा की है-

ख़ान बालिन गुमराह गुफ़िल , बख़्त शरीक़ पंद ।
छाल हराम नेकी, बंदी, दर्से दानिश मंद ॥^४

१- जायसी गुंथावली (अंतराष्ट) पृ० ३२१

२- नानकवाणी, पृ० ३३२

३- बंदी- पृ० १६६

४- दादू बानी, पृ० ५४

तरीक़त -

शरीक़त के मार्ग पर चलकर सालिक (साधक, यात्री) स्वयं को इतना प्रतिपादित कर लेता है कि उसमें अच्छाई-बुराई को पहचानने, अपने नज़र पर बस करने आदि की आवश्यकता हो जाती है। तब सालिक तरीक़त के दोष में प्रवेश करता है, जिसमें बीबात्मा बात्मशुद्धि द्वारा बुद्धि का चिन्तन करती है। जब साधक का ज्ञान प्रसारित होने लगता है और जीवन को बुद्धि की प्राप्ति का तरीका (उपाय) ज्ञात हो जाता है, यही तरीक़त है। सूफ़ी तरीक़त के मुक़ान पर रह कर पूर्णरूपेण खुद करने का प्रयास करता है या अपनी शब्दावली में यों कह सकते हैं कि सालिक अल्ले-विस्मानी (भौतिकक़िया) से गुज़र कर अल्ले-इहानी (बाध्यात्मिक प्रक़िया) में स्थित्यार करता है।

शरीक़त सिर झुकाना है, तरीक़त दिल खोलना है।

जायसी का तरीक़त के सम्बन्ध में कहते हैं-

कहीं तरीक़त किसी पीढ़े । उधरित असरफ़ आं-
बहांगीक ॥^२

कबीर दास भी एक स्थान पर कहते हैं-

तुरक़ तरीक़त जानिये हिन्दू वेद पुरान ।^३

दादू दयाल को तो तसब्बुफ़ का ज्ञान बहुत अच्छा था और साथ ही उन्होंने अपने काव्य में अरबी फ़ारसी के शब्दों का भी लुंकर प्रयोग किया है। दादू

१- आइनाए मजारीफ़त, पृ० ८२

२- जायसी ग़ुथावली (अवराक़ट) पृ० ३२९

३- कबीर ग़ुन्थावली, पृ० २३६

तरीकत के बारे में कहते हैं कि तरीकत वालों की संज्ञा उनकी यह है उनका मार्ग प्रेमाभक्ति है-

इश्क़ इबादत बंदी, यमानगी इज़्लास।

मेहर मुख़बत हर लूबी, नाम नेकी पास ॥

तरीकत सुफ़ी की प्रथमावस्था होती है। तरीकत पर च्छन से शारिफ़ का आविर्भाव होता है। इस स्था में जो ज्ञान प्राप्त होता है वह वासनात्मक न होकर प्रज्ञात्मक होता है। प्रज्ञात्मक होने के कारण उसे किसी प्रकार के अनिष्ट का भय नहीं होता, वह सत्य का अनुभव कर लेता है और मवारिफ़त की अवस्था में पहुँच जाता है।

मवारिफ़त

यह ज्ञानावस्था है। इस अवस्था में लोभ (पर्दा) लाभ दूर हो जाता है। करफ़ू-खो-करामात (हिपी बातों का ज्ञान और चमत्कार) में भी उसे दख़ल हो जाता है। जायसी का कथन है कि स्त्रीकत की राह पर पहुँचाने वाला चुकता नहीं और मवारिफ़त ही सिद्धावस्था है-

राह कहीकत परे न चुकि ।

पेठि मवारिफ़त भार बुझी ॥^१

बादू प्याल कहते हैं-

कुल फ़ारिग़ तर्क दनिया, हर रोज़ हरक़ बाद ।

बल्लह वाले इश्क़ आलिक, दूने फ़ारियाद ॥

बाय बातत कौं कुसी, दूरसे सुनतान ।

सिर सिफत कर्द बुदन 'नारिकत' मकान ॥^१

क्याह मजारिकत वाला वह प्रेमी है जो दुनिया का त्याग कर दे, संतुष्ट हो बाये, प्रियतम का निरन्तर ध्यान ला रहे, पानी, आग, अर्ध(कुरसी, आसमान) है, वही उसका ब्रह्म (प्रकट) है, वही मजारिकत (ज्ञान की मंजिल) है ।

मजारिकत तक पहुँचते-पहुँचते मुरीद परम सत्ता के आभास के साथ-साथ उसके रहस्यों की कुंजी भी प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था का 'साल' की वज़ा भी कहा जाता है। सुफ़ी की संज्ञा अब साहिक न होकर नारिक हो जाती है ।

यह अवस्था बुदा की अनुकम्पा का प्रसाद है ।

लकीकत -

मजारिकत की अवस्था के पश्चात् साधक लकीकत में प्रवेश करता है। लकी-कत वास्तव में साधन नहीं है बरिन् साधक की अनुभूति अवस्था है, इसी अनुभूति की उपलब्धि के लिए 'साहिक' सारी योजना बनाता है ।

बुदा (परम सत्ता) का अस्तित्व ही लकीकी या वास्तविक है। सुफ़ियों ने उसी वास्तविक सत्ता की कृपा एवं ज्ञान को 'लकीकत' माना है। मजारिकत के मेरदान को तब करने के पश्चात् साहिक लकीकत के समुद्र तक जा पहुँचता है जो कि क्याह है। वही उसकी वास्तविक और अन्तिम मंजिल है। इसी स्थान पर पहुँचने के लिए यात्री सारा परिक्रम और साधना करता है। वहीं पर साहिक को वास्तविक

सत्य का बोध होता है। प्रसिद्ध सुफ़ी साधक कुन्हेरी ने परम सत्ता के भित्तन को ही लकीकत माना है। उस परम सत्ता (हुदा) का दीवार (दरि) ही सुफ़ी की अन्तिम मंजिल है।

दादू कहते हैं कि लकीकत भित्तन गलतों में नूर (हुदा) देख लिया, मकबूद (फल) भित्तन गया, दीवार जलित कर लिया-

हक़ हासिल नूर दीवस, करारे मकबूद ।
दीवारे यार जताह जादम, मोजूदे मोजूद ॥
बहार मंजिल बयां गुफ़ूतम, दस्त करवः बव ।
पीरा मुरीदां सबर करवः, राह माकबूद ॥

दादू एक अन्य स्थान पर कहते हैं कि-

यमे नूर हुदां दीवनी है रां ।
जब चीज़ सुदनी प्याले मस्तां ॥

जबारे लकीकत वालों का दृष्ट उनका परमेश्वर (माकबूद) है जो सुबों में खुद है और नूर का ऐसा पुंव है जिसको देखकर जलें कप जाती है, भक्तों के लिए अमिय रूप है।

लकीकत की अवस्था में जाकर साधक 'अनल हक़' का उद्घोष करता है, परम सत्ता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर जो धक ब्रह्म मय हो जाता है। वही 'फ़ना' की स्थिति है। उसकी आत्मा हरिद्वार में निवास करने लगती है।

१- अरफ़-३७-मकबूद, पृ० ३२६

२- दादू बानी, पृ० ५५

३- -वही- पृ० ५४

यही सुफ़ी का चरम लक्ष्य 'वका' है। फ़ना और वका में अन्तर यह है कि फ़ना में साधक का वह भाव तिरौछित हो जाता है और तब वह सब प्रकार के बन्धों से मुक्त होकर प्रियतम में लय हो जाता है, जिसे वका की स्थिति कहते हैं।

सुफ़ियों ने उपर्युक्त चारों मूकामात के साथ-साथ चार लोकों की भी कल्पना की है- हाकूत ने हाकूत एवं नासूत की कल्पना की थी, फिर उलूक हमान ग़ाली ने नासूत के साथ मलूक और हाकूत के साथ जवकत लोकों की कल्पना की थी। सभी सुफ़ियों ने नासूत, मलूक, हाकूत और जवकत चारों लोकों की इस कल्पना का स्वागत किया। किसी अन्य सुफ़ी ने 'हाकू' नामक एक पाँचवें लोक की भी कल्पना की है।

सामान्यतः नासूत (नरलोक), मलूक (देवलोक), हाकूत (माधुलोक) जवकत (ऐश्वर्यलोक) हैं। हाकूत को सत्य लोक कहा जा सकता है। साधक इन्हीं लोकों में विराम करता हुआ परब्रह्म में लीन होकर सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस दृष्टि से इन लोकों की तुलना क्रमशः जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तृतीयावस्था से की जा सकती है। हाकूत को सूर्यातीत कहा जा सकता है।

मोमिन प्रथमावस्था में लीद तरीक़त का पालन करता हुआ नासूत (नरलोक) में निवास करता है। दूसरी अवस्था में मुरीद तरीक़त का पालन करके मलूक (देवलोक) में विहार करता है। तृतीयावस्था में सलोक मजारीक़त में पहुँचकर जवकत (ऐश्वर्यलोक) में विहरण करता है और अन्तर्ग अवस्था में ज़ारिफ़ हकीक़त का चिन्तन कर हाकूत (माधुलोक) में तल्लीन हो जाता है। यही सुफ़ी साधना की परम पराकाष्ठा है। कुछ लोग इसके आगे पहुँचकर हाकूत (सत्यलोक) में विहार करते हैं। पर सामान्यतः सुफ़ी हाकूत लोक को नहीं मानते हैं।

यहाँ पर सुफियों की साधना व्यवस्थाओं का उल्लेख भी आवश्यक हो जाता है, बिना मदारिज (व्यवस्थाओं) से गुजर कर एक नव दीक्षित साधक या यात्री गुदा तक पहुँचता है, सामान्यतः यह तांबा, बुद्ध, कद, तबल्लु, रज़ा आदि है। इनके संकेत कुरआन उरीफ़ में मिलते हैं। किन्तु सुफ़ी ग्रन्थों में इसकी विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

उपर्युक्त मदारिज का उल्लेख हिन्दी साहित्य में स्पष्ट रूप से किया गया है।

तांबा (परचाताप)

सुफ़ियों को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कुछ आन्तरिक क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। इनमें सबसे पहला स्थान तांबा का है। पापी अपने पापों से अलग होकर सफ़ेद हो उठता है और अपने पुराने गुनाहों की मजाफ़ी चाँकता है, ताकि वह फिर कभी ऐसा गुनाह न करे। तांबा अपराध से पूर्णतः की ओर बढ़ने का साधन है।

नफ़स (वासनापूर्ण आत्मपदा)

सुफ़ी मनुष्य के चार विमान मानते हैं-

- १- नफ़स (वासनापूर्ण आत्म पदा)
- २- रुह (आत्मा, चित्)
- ३- क़ल्ब (हृदय)
- ४- अक़ल (बुद्धि)

सुफ़ी ग्रन्थों के अनुसार साधक का प्रथम लक्ष्य नफ़स के साथ विहाद (धर्मयुद्ध) करना है। नफ़स के सम्बन्ध में कुरआन उरीफ़ में भी ज़िक्र आया है।

नफ़स कुंती करना ही सुफ़ी भक्ति साधना का मुख्य कार्य है, जिसके द्वारा मनुष्य चिन्तनहीन जीवन की ओर बढ़ता है। हिन्दी के अनेक कवियों ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं-

नफ़स शयतान कूँ कंद कर बापने,
क्या बुनि में फिरे नाय गोता ।
हं गुनेहार भी गुनाही करते हैं,
सायना मार एव फिरे रोता ॥ - सुरदास

ज़िक्र (जाय , स्मरण)

सुफ़ी अल्लाह या परमात्मा के नाम का जाप करने को ज़िक्र की संज्ञा दी जाती है। ज़िक्र के दो भेद होते हैं-

- (१) ज़िक्र-ए-जली अर्थात् ऊँचे स्वरों में स्मरण ।
- (२) ज़िक्र-ए-ख़फी अर्थात् मन ही मन में स्मरण ।

मीरास-ए-इस्लाम में लिखा है कि शरीफों में इन दोनों का उल्लेख मिलता है। स्वयं क़ुबान शरीफ़ में भी ज़िक्र-ए-जली का स्थान स्थान पर बग़ैर विज्ञान है। सुफ़ियों के अनुसार अल्लाह तबाला तबारक तबाला का ज़िक्र करने से जीवात्मा को मकारिफ़त की प्राप्ति होती है। सुफ़ी अनुशासन के अन्तर्गत ज़िक्र का महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

इस्लाम के अनुसार बन्दे को क़ुबान शरीफ़ के द्वारा बार-बार उपदेश दिया गया है वह बराबर ज़िक्र-ए-जली करता रहे। इसीलिए मुहम्मद वात-वात पर सुबहान- अल्लाह, इन्हा- अल्लाह, नाशा- अल्लाह और अल्लाह-ओ-अकबर कहे रहते हैं, सुफ़ी उपर्युक्त स्मरण के अतिरिक्त लहनाहू और लाललाहा इल्लल्लाह का स्मरण अधिक करते हैं। उपर्युक्त सभी ज़ुवो में अल्लाह की प्रशंसा की गई है।

सूफियों ने बल्लाह के ब्रिह्म का अत्यधिक महत्त्व है। हिन्दी के सूफी कवियों ने अपने ग्रन्थों में किसी न किसी रूप में बल्लाह का ब्रिह्म अथवा परमात्मा का स्मरण अवश्य प्रस्तुत किया है जैसे कवि नूर अपने ग्रन्थ की नायिका से निम्न ब्रिह्म करवाते हैं-

- १- "मिसि दिन" सुमरि "मुहम्मद नाऊं", जासों मिले सरग में ठाऊं ॥^१
- २- "जो भर करे जमन करे विधि जापा । बिनु वो ही नाम होहि सब ठापा ॥"^२

कवि ने प्रेमपूर्वक जाप करने पर भी बल दिया है-

- ३- "जब छगि प्रेम न व्यापे, तब छगि स्वाप ।
स्वाप जात जब जाकत, पादुत "जाप" ॥"^३

- ४- "सुमिरत रहों नाम करतारा, जेहि सुमिरे पावे भवपारा ।"^४

हिन्दी के संत कवियों पर भी सूफियों का बहुत प्रभाव पड़ा था, इसी-
लिए गुरु नानक एक स्थान पर कहते हैं-

"नाह मांतिर दुरमति गहं मति परगटी जाइवा ।
नाउ मांतिर छुने गहं सभि रोग गवाइवा ॥"^५

दादूदास जी का कथन है-

"बल्लाह तेरा" बिकर "फिकर" करते हैं ।

१- इन्द्रावती, पृ० ६६

२- चित्रावली, पृ० ६

३- अनुराग बांसुरी, पृ० २२

४- नानक वाणी, पृ० ७३४

५-

जासिकां मुस्ताक तेरे, तर्स तर्स भरते हैं ।
 कलक लेस शिर नेस, बड़े दिन भरते हैं ।
 दायम दरबार तेरे, गेर मल्ल डरते हैं ॥³

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुफ़ी तथा असुफ़ी कवियों ने परमसत्ता के बाप का उल्लेख अपने ग़ुन्धों में किया है, सुफ़ी साधनों के लिए तो ज़िन्-ए-अल्लाह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है ।

तवक्कुल (अल्लाह अथवा परमात्मा पर भरोसा)

तवक्कुल उस स्थिति को कहते हैं जिसमें मानव सब कुछ खुदा पर छोड़ देता है और यह सोचता है जो कुछ भी होगा खुदा ही करेगा । सुफ़ियों में तवक्कुल को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। ग़ुरबान शरीफ़ में तवक्कुल अनेक स्थलों पर उल्लेख है और उसमें तवक्कुल करनेवालों को पसन्द किया गया है ।

ग़ुरबान शरीफ़ में एक स्थान पर कहा गया है-

“ व तो इज़्ज़ो मन तशाओ, व तो ज़िल्लो मन तशा ”

इज़्ज़त (आदर) और ज़िल्लत (अनादर) सब उसी (खुदा) की ओर से है ।

इसलिए तवक्कुल का आधार-स्तम्भ इस्लाम में खुदा के प्रति विश्वास को माना जाता है। जो कुछ करता है खुदा ही करता है, वह रहमत करनेवाला है-

“ रहमत-उल-लिल आलमीन ” (ग़ुरबान शरीफ़)

खुदा सर्वशक्ति सम्पन्न है, वही गुनाहों को क्षमा करने वाला है ।

प्रसिद्ध इतिहासकार डा० ताराचन्द ने अपनी पुस्तक "इन्फ्लुएन्स ऑफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर" में काफी अच्छी तरह तबक्कल पर लिखा संकेतका कथन है कि-

"मुहम्मद ने यह शिक्षा दी कि इन्दों को चाहिए कि वह पूर्ण रूप से अपने बापको बल्लाह की शरण में दे दें। इस्लाम और तसव्वुफ़ की शिक्षा यह है कि हिन्दू अपने बापको गुरु के सुपुर्द कर दें जो पृथ्वी पर इबादा का प्रतिनिधि है।" तांहीद की व्याख्या करते हुए ताराचन्द जी ने लिखा है कि मनुष्य की भलाई इसमें है कि वह पूर्ण रूप से खुदा पर भरोसा रखे, निश्चय ही यह कामिल सुपुर्की (आत्म समर्पण) की शिक्षा है। इस्लाम का अर्थ ही सुपुर्की (समर्पण) और मुसलमान वास्तव में प्रपन्ना है।

कुरआन शरीफ़ में एक स्थान पर आया है-

"य तबक्कल-ओ-बल्लाह-ए-ब कफ़ा बिताह-ए-ककीला" अर्थात् जिसने खुदा पर तबक्कल किया, उसका काम आसानी से हो जाएगा।

जिस प्रकार इस्लाम और तसव्वुफ़ में तबक्कल द्वारा खुदा के प्रति सुपुर्की के भाव को प्रकट किया गया, उसी प्रकार भारतीय परम्परा में समर्पण की भावना प्रकट की गई है-

"श्रीकृष्णाणाम स्तु" "

अर्थात् भक्त को सब कुछ कृष्ण भावार्थ में समर्पित कर देना चाहिए।

किन्तु हिन्दी साहित्य में सूफ़ियों के अतिरिक्त अन्य शक्तियों को समर्पण के भाव प्रस्तुत किए हैं, वे निश्चय ही तसव्वुफ़ से प्रभावित होकर किए हैं।

अणु (दैन्य)

सुफियों को बहुत बरकत, फकीर आदि नामों से उनके दैन्य के कारण सम्बोधित किया जाता है। सच्चा दैन्य वह होता है जिसमें बन्दा अपने जूय तक से धन-सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य व वैभव आदि का इच्छा तक को निष्कासित कर दे। केवल धन-सम्पत्ति का न रहना ही दैन्य नहीं।

कुरबान शरीफ़ में, सूरें फ़ारक़ान की आयत ६३-६४ का भाव दृष्टव्य है- " जो लोग अणु-ओ-इन्सियारी के साथ ज़मीन पर दबे पाँव चलें हैं, उनसे जब वास्तव बात करते हैं तो वे उन्हें सलाम कहते हैं, और वे उन्हें जन्नत में उच्च स्थान प्राप्त होगा। "

आ: सुफ़ी अणु-ओ-इन्सियार को भी अपनी साधना का एक आवश्यक तत्व मानते हैं।

तर्क (त्याग)

तसव्वुफ़ में साधना के लिए तर्क अथवा त्याग को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि जब तक साधक के मन से सांसारिक ऐश्वर्य की इच्छा मात्र तक का त्याग नहीं हो जाता तब तक साधक अपने गन्तव्य स्थान तक कदापि नहीं पहुँच सकता। धन, दौलत, भोग-लिप्सा और सांसारिक विषय-वासनाओं का त्याग ही तर्क कहलाता है।

हिन्दी के सुफ़ी कवियों ने तर्क को अपने काव्य में बहुत महत्त्व दिया है जैसे जायसी एक स्थान पर कहते हैं-

“ हाइहु विठ ओ मझुरी मांसू । सूखे भोजन करहु गरासू ॥

दूध, मांस, शिउ कर न जहाइ । रोटी खाति करहु फरहाइ ॥

एहि विधि काम घटावहु काया । काम क्रोध, तिरिस्ना, मद, माया^१ ॥

सुफ़ी संत कवियों ने भी तर्क के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है-

दादू व्याल कहते हैं-

बासिक एक जलाह के, फारिग दुनिया दीन ।

“तारिक” इस बांजुद पे, दादू पाक अजीन ॥^२

दादूव्याल कहते हैं कि मजारिफ़त पाने वाले वे हैं जो दुनिया को तर्क करके ही संतुष्ट हो पाते हैं-

कुल फ़ारिग “तर्क-ए-दुनिया”, हर रोज़ हरदन पार ।

जल्लह जाल-ए-बश्क बासिक दरून -ए-फ़रिवाद ॥

सुफ़ी दरवेशों के सम्बन्ध में एक स्थान पर संत कवि मल्लू दास कहते हैं-

तोन दरवेशन का पोंडा निराला है ।

रहते मल्लू वे तो सात्व की सूरत पर ।

दुनिया को “तर्क” पार दीन को सम्हाला है ।

किसी से न करे रुवाल उनका कुछ और स्याल ।

फिरते अलमस्त खबद भी बिचारा है ।^४

मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में उपर्युक्त सुफ़ी साधना से सम्बन्धित सिद्धांतों और तत्त्वों का सम्पूर्ण विवरण मिलता है, जैसे-

१- जायसी गुंथावली, पृ० ३२८

२- दादू बानी, पृ० ३२

३- -वही- पृ० ५४

४- मल्लूदास की बानी, पृ० २७

सात लण्ड वार चारि भिसेनी,
जान बढ़ाव फा तिरबेनी ।

नायसी की इस पंक्ति में- सात लण्ड सुफियों के सात मुहानात-

- (१) अर्धिया
- (२) इरक
- (३) गुहद
- (४) मुजारिफ
- (५) वज्द
- (६) क़ीक़ी
- (७) वल अथवा बका ।

के प्रतीक हैं। चार भिसेनी में तसब्बुफ़ के चिह्न की चार रेणियों -

- (१) चिह्न-र-क़ी
- (२) चिह्न-र-सुफ़ी
- (३) चिह्न-र-ताइलाह वार
- (४) चिह्न-र-बल्ललाह

की ओर संकेत किया गया है क्योंकि उपर्युक्त चिह्न के माध्यम से ही सुफ़ी साधक बल्लाह को याद करता है और अन्ततोगत्वा वह लाक़ की अवस्था को प्राप्त करके परमात्मा में निष्ठात हो जाता है ।

हिन्दी के सुफ़ी प्रेमात्मानों के नायक (साधक) उपर्युक्त सुफ़ी साधना के मार्ग पर चलते हुए क़ीक़त की अवस्था में पहुँच कर नायिका (परमात्मा) को प्राप्त उससे एकमेक हो जाते हैं । इस प्रकार उनको सादात वका की प्राप्ति होती है।

उदाहरण के लिए पद्मावत के नायक रत्नसेन का सफ़ी साधना के मार्ग पर क़दम होने के प्रसंग को ही लीजिए-

“हीरामन सोता इपी गुरु रत्नसेन इपी साध के रूप में हरक-र-हकीकी उन्मुली
हरक-र-मबाज़ी जागृत कर देता है और वह (साधक) उसे सच्चे की प्रेरणा से नायिका
पद्मावती इपी परमात्मन की तलाश में निकल पड़ा होता है। वह अपने ज़ोंक
गन्तव्य तक पहुँचने हेतु पत्नी नागमती, राज्यादि इपी सांसारिक विषय-वासनाओं
को “तर्क” कर “ब्रह्म” द्वारा मार्ग में जानेवाली बाधाओं पर विजय प्राप्त करता
है, रत्नसेन इपी साधक सब (धर्म) करता है क्योंकि क़ुरबान शरीफ़ में सूदा तबाला-
फ़रमाता है-

“इन्मल्लाह नावत्साधरीन”

अर्थात् ज़लाह सब करनेवालों के साथ है। इसीलिए नायसी का नायक (साधक) सब
का सहारा लेते हुए पद्मावती (परमात्मा) के निरन्तर ध्यान और विरक्त से ज़लाह
की मुहूर्त का सूत्रपात होता है और वह साधक (रत्नसेन) मोघिन अथवा सफ़ी
साधिक का रूप धारण कर लेता है तब उसमें “जानोक्य” होता है-

“लिय के जोति दीप वह सूफ़ा, यह जो दीप अंधियारा बुफ़ा ।

उलटि दीठि माया सों कठि, फ़लटिन फिरी जानिके भूठी ॥”

सब कुछ तर्क करने के पश्चात् नायक (साधक) का पक्का पड़ाव समर तट
होता है। इस पड़ाव को “शरीक़त” कह सकते हैं। वहाँ तक का मार्ग सरल है, किन्तु
जबला मार्ग अर्थात् “शरीक़त” में प्रवेश करते समय समुद्र की भीषणता और भयंकर
रूप के दर्शन होते हैं-

“ये गोसाईं सन एक चिनासी, मारग कठिन जाव केहि भांति ।

सात समुद्र ज़ूफ़ अघारा, मारहिं मगरमच्छ धरि जारा ॥

उठे ठहिरि रहिं बार्हें संभारी, भागिहि कोइ निवहे बेपारी ।

सार, सीर, दधि, कल, उदधि, सुर किलकिला बख्सा ।

को चढ़ि नाथे समुद्र र, हे काकर कस ब्रह्म ॥

रत्नसेन एक सच्चा प्रेमी है, वह सत्य प्रेम-पंथ का पंथी है, सच्चा वास्तविक है और अपनी रात की बार्हें कुँ समय बाधाओं को लांघता हुआ अंतर होता चला जाता है हालांकि अभी उसको यह भी नहीं ज्ञात है कि उसकी मंजिल कहाँ है ?

उदूँ के किसी शायर ने क्या कब कहा है-

न मंजिल है न मंजिल का फाँस है ।

मुकुब्बत रास्ता ही रास्ता है ॥

बायसी का नायक मुकुब्बत की राह में बार्हें कुँ कठिनाइयों से भूषता हुआ है: समुद्रों को लांघकर सातवें समुद्र के किनारे पहुँचता है, वहीं से उसका तीसरा मुकाम 'मकारिफ़त' प्रारम्भ होता है-

“सतरं समुद्र मानसर जाये, मन जो कीन्ह साह सिधि पाये ।

बेहि मानसर रूप सुहावा, छि छुआत पुरखन होइ जावा ।

या अंधियार, रेन मसि छूटी, भा मिनसार किरन रवि फूटी ॥”

बायसी में छौ मकारिफ़त की दो स्थितियों १- हाली और २- इस्वी में से हाली मकारिफ़त के दर्शन होते हैं-

“जोगी दिस्थि दिस्टि सौं छीन्हा, नेन रोपि नेनहि निड दीन्हा ।

बेहि मद बड़ा परा तेहि पाळे, सुधि न रही बौहि एक फिाळे ॥

मुञ्जारिफ़ के मुक़ाम पर मञ्जारिफ़त की इस अवस्था में पहुँकर रत्नसेन (मुरीद) को परमसत्ता का आभास (दर्शन) मिलता है, इस प्रकार जब उसे "साहिक" से "अक़िफ़" आरिफ़ की दशा प्राप्त हो जाती है।

पद्मावत में मुञ्जारिफ़ के मुक़ाम से आरिफ़ (रत्नसेन) और आगे बढ़ता है। गन्धर्वसेन उसकी प्रीति में नानफ़ांस छुवा देता है, किन्तु उसके मन में कोई हर्ष या विषाद की भावना बन्म नहीं होती, बल्कि उस पर क़द की कंफ़ियत तारी होने लगती है। वह विचार करता है कि अब तक मैं अल्प भाव में बिछीन होकर अहंकार करता रहा, किन्तु अब मेरी (जीवात्मा) की समझ में आया कि मैं परमात्मा (पद्मावती) की दाया मान था और इस प्रकार अज्ञेय की स्थापना हो जाती है।

इस प्रकार रत्नसेन (आरिफ़) हकीक़त के मुक़ाम पर जा पहुँचता है उसे वास्तविक सत्य का बोध होता है, यहाँ आकर उसे "हक़" का आभास तो मिल जाता है किन्तु उसकी प्राप्ति वह नहीं कर पाता है।

किन्तु आगे चलकर वह पद्मावती (परमसत्ता) की प्राप्ति कर लेता है और क़द (संयोग) के मुक़ाम पर पद्मावती (परमसत्ता) के दर्शन एवं साक्षात्कार करके उसी में बिछीन हो जाता है और इस प्रकार फ़ना के मुक़ाम पर रत्नसेन (साधक) अपनी साधना-यात्रा समाप्त कर देता है। अब उसे सबन्धि पद्मावती (परमसत्ता) के दर्शन होते हैं और वह स्वयं पद्मावती स्वयं अथवा उसी में एकमेव होकर शारवत ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति करता है, जोकि सुक़ी-साधना का चरम उदय है।

साधक के लिए कहा गया है कि यह फ़क़ट में तो सांसारिक कार्य-कलाप करता रहे किन्तु भीतर ही भीतर न में खुदा का स्मरण (झि़क़) करता रहे, इस भाव को जायसी ने अपने "पद्मावत" में महादेव के द्वारा रत्नसेन को इसी प्रकार की साधना में रत होने को उपदेश दिया है -

परानट लोक चार कहू बाता, गुप्त माउ न जासो राता ।

सुफ़ी साधना में इसे 'हिल्लत-दर-अंजुन' कहते हैं । सुफ़ी साधना में भावा-
लिष्टावस्था अथवा 'हाल' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । 'हाल' साधक की केतु-
अवस्था का प्रतीक है। जायसी ने पद्मावत में नायिका पद्मावती (परब्रह्म) के गुण-
अवस्था द्वारा नायक रत्नसेन (जीवात्मा) का जो मूर्च्छित होना दिखाया है, वह
इसी 'हाल' की अवस्था का प्रतीक है। हीरानन शुक जब राजा रत्नसेन से पद्मावती
के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है तब राजा प्रेम की उत्कट अभिलाषा का अनुभव
करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है, रत्नसेन (जीवात्मा) की इस हाल अवस्था का
जायसी ने अत्यधिक सुन्दर वर्णन किया है-

सुनतहि राजा ना पुराहण । जानीं छहरि सुख के जाह ।।
प्रेम बाध पुन जान न कोही जेहि ठाने जान पे सोह ।।
परा सो फे समुद्र अपारा । छहरि छहर सोह बिसंभारा ।।
विरह भोर सोह भांवरि देह । तिन तिन जीउ छिोरा छेह ।।
तिनहि उसास बूढ़ि किउ जाही तिनहि उठे निचरे बांराह ।।
तिनहि पीत, तिन होइ पुन सेता । तिनहि नेत, तिन होइ अवेता ।।

जायसी ने सुफ़ी साधना के अन्य प्रतीकों को भी पद्मावत में गृह्य किया
है। जायसी ने जो सिंहगढ़ का वर्णन किया है वह सूफ़ियों के रूक, स्वर्ग में रहने
वाली नदियों और रूक के वृक्ष का प्रतीक है । सूफ़ियों के अनुसार हाठ रूक हैं
और सबसे भीतरी और उच्च रूक 'जन्नत-ए-अदन' है। यही वह रूक है जहाँ
रूकियि विभूति की झलक मिलती है, इसकी प्राप्ति बड़ी साधना और पुण्य बल द्वारा
हो सकती है । इसमें कोसर, तस्नीम, सत्सबीला आदि अनेक नदियाँ बहती हैं। सिंह-

गढ़ में नीर और तीर नामक दो नदियाँ और मोती घूर नामक एक झुंड है। इस गढ़ का वर्णन वास्तव में सुफ़ी प्रतीकात्मकता को दिये हुए है।

संक्षेप में, पद्माक्त में जायसी ने सुफ़ी साधना की चार अवस्थाओं- शरीक़त, तरीक़त, मजारीक़त और क़लीक़त का प्रतीक रूप में पूर्ण विवेचन किया है। "पद्माक्त" में जायसी ने सुफ़ी सिद्धान्तों को तुल्य महत्त्व प्रदान किया है। उन्होंने इस महाकाव्य में हिन्दी भाषा, हिन्दी शब्द, भारतीय कथा, बाजार-विचार और चरित्रों को उपजीव्य बनाया है किन्तु यह जायसी की हिन्दू ज़रत में इस्लाम धर्म और सुफ़ी सिद्धान्त के प्रचार एक पञ्चयोजना थी।

वास्तव में, जायसी का सम्पूर्ण "पद्माक्त" महाकाव्य इस्लाम धर्म और सुफ़ी सिद्धान्तों पर ही आधारित है। "पद्माक्त" पर जायसी के अठरावट और आठिरी क़लाम की स्पष्ट झपा विद्यमान है, जो कि सुफ़ी मत और इस्लाम धर्म पर आधारित जायसी के सिद्धान्त गून्थ हैं। इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्माक्त के माध्यम से इस देश के लोगों का तसव्वुफ़ और इस्लाम से एक नवीन रूप में परिचय कराया।

मसख़ानामा

"मसख़ानामा" मलिक मुहम्मद जायसी का एक डोटा-सा गुंथ है, जिसमें ५६ खंडालियाँ और १२ दोहे हैं।

"मसख़ानामा" शब्द अरबी भाषा में म स ख ल धातु से मिलती हुआ है, इस धातु से मसख़, मिरख़, मिसाल, मसख़ा शब्दों का निर्माण होता है। मसख़ का शब्दार्थ कहावत, लोकोक्ति और मिसाल का अर्थ होता है- उपमा, नज़ीर, उदाहरण, दृष्टान्त आदि। "मसख़ा" शब्द का- विचारणीय विषय।

अरबी में "मिसाल" शब्द का बहुवचन समझला जाता है, "इ" के लोप हो जाने पर मसकला शब्द प्रचलित हो गया।

प्रसिद्ध सूफ़ियों अकार, सनाई और निजामी तथा अन्य सूफ़ी साधकों ने "नाना" नामक अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, जायसी ने भी उन ग्रन्थों के आधार पर "मसकलाना" की रचना की। जायसी की यह रचना उपदेशात्मक है, अतः उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रत्येक शब्द में किसी-न-किसी लोकोक्ति के द्वारा उपदेशमूलक तथ्य या अनुभूत सत्य को प्रतिपादित किया है। इसीलिए "मसकलाना" एक अत्यन्त रोचक, शिक्षाप्रद और हृद्यग्राही ग्रन्थ बन गया है।

"मसकलाना" लोकोक्तियों, कहावों, सूक्तियों, दृष्टान्तों आदि से परिपूर्ण एक उपदेशात्मक रचना है। इसमें जायसी ने अनेक मसकले बहुत ही प्रभुविष्णु रूप में प्रस्तुत किये हैं।

विद्वानों के मतानुसार "मसकलाना" की रचना ६३० और ६३६ हिजरी के बीच हुई। इस ग्रंथ की रचना मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने "जासिरी अलाम" ग्रंथ से पूर्व की थी। इस ग्रन्थ में कवि जायसी ने पाँच अष्टादशियों के पश्चात् दोहे के रूप को रखा है। इस प्रकार उन्होंने मसकलाना में पर्व परम्परा की ही अ विधि का अनुसरण किया है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने "मसकलाना" में खुदा, हरक, बेरात, मेकी आदि पर अपने मत और विश्वास को कहावों और लोकोक्तियों द्वारा प्रमाणित करते हुए जन साधारण को उपदेश दिया तथा जायसी ने खुदा और भग्यवाद के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की है।

"बीवात्मा" इस संसार में आई ही "परमात्मा" की प्राप्ति के लिए है। उसे "परमसत्ता" की लोप करना है। यदि ऐसा न किया गया तो मानव का इस संसार

में जन्म लेना ही निष्कल एवं व्यर्थ है। जावसी ने लोकोक्ति के प्रयोग द्वारा उपर्युक्त तथ्य को मसखानावा में निम्न रूप में प्रकट किया है-

जब साईं सो नेह कर, फेरि न यह संयोग ।
कोरुहू से तरी ऊतरी, रही बेल के योग ॥^१

तथा

देवस गंवायो वाहि सब, सांभ बडे उठि बाट ।
जो कृपा थोवि का, भयो न घर का बाट ॥^२

इस मशवर संसार में जीवात्मा ईश्वर को भुलाकर माया, मोह, प्रपंच आदि के चक्कर में पड़ जाती है और अपना जीवन भ्रम में व्यतीत करती है-

रूप निरंजन कांछि, पाया देखि लोभार्थ ।
कृपा नो कछाहये, पाकी चाटन बाई ॥^३

जावसी ने वास्तव में अपनी इस रक्षा में बहुत सुन्दर रूप में जोक वक्तों को प्रस्तुत करते हुए उक्ति लोकोक्तिवाँ द्वारा उनका बहुत ही उक्ति एवं सुन्दर समाधान भी प्रस्तुत किया है ।

जावसी द्वारा प्रस्तुत ईश्वर प्रेम का एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है- इस संसार में जीवात्मा का परमात्मा के प्रेम से दूर रहना बिल्कुल वैसा ही है वैसा सांभर झील पर रखकर नमक से दूर रहना -

प्रेम-नेम ते माथ नवाई । सांभर बडे ओना साई ॥^४

१- मसखानावा, पृ० १०१

२- -वही- पृ० १०६

३- -वही- पृ० १०२

४- -वही- पृ० १०५

तथा

बिना चारों रत्नान सों, हांदि देहु ना जाव ।
फेरि न होव ह रिज्जा, फेरि न केहन जाव ॥^१

जायसी के अनुसार प्रेम-साधना के बिना यह जीवन निष्क्रिय है, यह जीवन अभी गृह ईश्वरीय प्रेम से रहित होकर ज्ञान या घर बन जाता है -

जेहि जन प्रेम-नीद तेहि साजा ।
सुने गाँठ अंधेरन का राजा ॥^२

जायसी ने अपने मसलानामा में इस जीवन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों को प्रकट किया है। उन्होंने ईश्वर प्रेम, कर्त्तव्य परायणता, प्रेम-साधना, अहम् का तिरस्कार, दान की महत्ता, गर्व एवं अभिमान का बहिष्कार, क्रोध का त्याग, बुद्धावस्था आदि सब पर अपने विचार इस गृंथ में पाण्डित्य पूर्ण रूप में प्रस्तुत किये हैं।

बोवन के गर्व में भ्रमित जीवात्मा का किना सजीव रूप प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध लोकगीतों द्वारा इस बोवनावस्था की नश्वरता को व्यक्त करते हुए किता सुन्दर उपदेश दिया है-

बोवन गरब न भूलसि, नेह नाह को रात ।
दिना चार की चांदनी, फिरि अंधियारा पात ॥

जाव भी उपर्युक्त लोकगीतों इस नवीन रूप में प्रचलित है-
चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात है ।

हम पहले भी व्यक्त कर चुके हैं कि अन्य सुफियों की भांति जायसी भाग्यवादी थे, इसी भाग्य की अछूता की घोषणा उन्होंने वृ मसलानामा में भी की है-

१- मसलानामा , पृ० १०८

२- वही- पृ० १०५

होनहार सो होई, बकु किहे अभ्यास ।
जोरा चाहे ताग वस, टूटहि ताग पचास ॥^१

संक्षेप में जायसी का मसलानामा ७१ ठोकोशियों का संग्रह है, वास्तव में यह रचना जायसी के साहित्यिक जीवन के प्रारंभिक दिनों की रचना है। मसलानामा में जायसी की प्रेम-साधना पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता और इस रचना के द्वारा इस्लाम या तसव्वुफ के सिद्धान्तों पर भी कोई रोशनी नहीं पड़ती, किन्तु जायसी की प्रस्तुत रचना वास्तव में अवधीभाषा तथा उसकी ठोकोशियों के अध्ययन और उसकी व्याख्या के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है ।

इसके अतिरिक्त मसलानामा के बालोचनात्मक अध्ययन द्वारा तत्कालीन लोक जीवन पर, इसमें प्रयुक्त ठोकोशियों, लोक-रूढ़ि, लोक-व्यवहार द्वारा अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

जागिरी कलाम

रचनाकाल -

मलिक मुहम्मद जायसी ने जागिरी कलाम की रचना ६३६ हिररी में की थी, इस बात का जायसी ने स्वयं स्पष्ट उल्लेख किया है-

नां से बरस ह्मीस जो भए । तब रहि कविता वासर कहे ॥^२

जागिरी कलाम के रचनाकाल की उपर्युक्त हिररी की पुष्टि इस बात से भी होती है कि जायसी ने इस ग्रन्थ में शाह-र-वक्त के रूप में प्रथम मूल शायर "बाबर" का उल्लेख किया है-

१- मसलानामा, पृ० १०६

२- जागिरी कलाम, पृ० १३

बाबर साह इत्रपति राजा। राजपाट उनका विधि साजा ॥^१

सम्राट बाबर ने २१ अप्रैल सन् १५२६ ई० में पानीपत के युद्ध में हुमायूँ की लोधी को परास्त किया था और उसके बाद उसे दिल्ली व आगरा का राज्य प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात् बाबर ने सन् १५३० ई० तक अपने सभी शत्रुओं एवं विरोधियों को परास्त कर सम्पूर्ण भारत पर मुगलों की राज्य सत्ता स्थापित कर दी थी। इस्लाम ६३६ क्रिस्ती अर्थात् सन् १५३२ ई० में बाबर का मौजूद होना इतिहास द्वारा प्रमाणित है, और उसी समय बाबरी ने आहिरी क्लाम की रचना की थी। अतः बाबरी की प्रस्तुत रचना के काल निर्धारण के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है।

कथासार -

आहिरी क्लाम (अर्थात् अन्तिम वक्तव्य) में बाबरी ने सबसे पहले इश्वर (कल्लाह) की महता का विवरण किया है, उसके बाद अपने जन्म का वर्णन करते समय अपने युग में जाने वाले भूकम्प का बहुत मामिक वर्णन किया है। इसके साथ ही सूर्य ग्रहण का वर्णन भी प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् मुहम्मदशाह, मुगल इल्ताह अमर, सेयद अहरफ और बाबस नगर की प्रशंसा करते प्रलय काल का बड़ा रोचक वर्णन किया है।

फिर उसके बाद बाबरी ने एक लघु-कथा को काव्य का रूप दिया है। इश्वर (कल्लाह) की आज्ञा से फूयूनी ने धन उगलना आरम्भ और मावारी के सुन्दर से लोगों की मृत्यु होने लगी तब कल्लाह ने भी काबुल (फरिस्त) को आज्ञा दी कि वह अग्नि की वर्णा करे। आदेशानुसार भयंकर अग्नि वर्णा हुई, परिणाम-स्वरूप सम्पूर्ण धरती जलने और तपने लगी, पर्वतों से बड़ी चट्टानें भी गिरकर बरसने

१- आहिरी क्लाम, पृ० ८

लगीं । यह सिलसिला चालीस दिन तक जारी रहा । परिणामस्वरूप धरती के सभी जीव-वस्तु नष्ट हो गए, तब जिब्राइल फरिश्ते ने संसार के इस भयंकर स्वरूप के दर्शन कर खुदा से निवेदन किया कि अब तो पृथ्वी पर कुछ भी शेष नहीं रहा, सब कुछ प्रायः नष्ट हो गया है। सभी खुदा ने भी काइले को पृथ्वी पर कवचवृष्टि की आज्ञा दी । चालीस दिन तक लगातार वर्षा होती रही । परिणामस्वरूप संपूर्ण धरती जलमग्न हो गई । तत्पश्चात् खुदा ने इस्राफ़ील फरिश्ते को अपनी फूँकों द्वारा आकाश की सृष्टि को उड़ाने की आज्ञा दी । परिणामस्वरूप बादलों भुवन कांपने लगे । इस्राफ़ील की फूँकों से नदी नाळे समतल हो गए, पहाड़-समुद्र में कोई अंतर नहीं रहा । सूर्य, चन्द्र, तारे आदि सभी नवान्न टूट-टूट कर गिरने लगे । तब खुदा जिब्राइल फरिश्ते को बाकी बची सृष्टि को समाप्त करने की आज्ञा दी और आदेश के अनुसार जिब्राइल ने जिब्राइल, मीकाइल और इस्राफ़ील को नांत के घाट उतार दिया । तब खुदा ने प्रश्न किया कि अब सृष्टि में कोई बाकी बचा है ? उत्तर में जिब्राइल ने कहा कि आप के लॉरे मेरे खतिरिक्त संसार में अब कोई शेष नहीं है। यह सुनकर खुदा जिब्राइल को भी समाप्त कर दिया । अब पूरी कायनात अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि में ईश्वर या खुदा की ज्ञात के सिवा कोई नहीं बचा ।

ईश्वर ने चालीस वर्ष एकाकी व्यतीत करने के उपरान्त सोचा कि यह सम्पूर्ण सृष्टि मैंने ही बनाई थी, किन्तु आज मेरा कोई नाम लेना नहीं है। मैं पुनः सबको जीवन दूँगा, फुल-स-सरात पर से उनको पार कराके स्वर्ग की नदी कांसर में स्नान कराके सभी जीवों को स्वर्ग में प्रवेश दूँगा । ऐसा विचार कर ईश्वर ने जिब्राइल, मीकाइल, इस्राफ़ील और इज्ज्जल को सबसे पहले जीवित किया । ईश्वर के आदेशानुसार जिब्राइल फरिश्ते ने पृथ्वी पर आकर सर्वप्रथम मुहम्मद साहब को आवाज़ दी । परन्तु वहाँ से करोड़ों आवाज़ें एक साथ आईं । तब जिब्राइल व्याकुल होकर ईश्वर के पास पहुँचे और उनसे पूरी बात बताई और कहा कि मैं मुहम्मद साहब को कहां लोवूँ, तब ईश्वर ने एक बार फिर जिब्राइल को फिर भेजा । इस बार मुहम्मद को जिब्राइल ने लोव लिया । मुहम्मद साहब अपने अनुयायियों के साथ पृथ्वी

पर से उठकर झिझकते के साथ तीस हज़ार कोस लम्बे अत्यन्त तंग फुल-स-सरात मार्ग पर से चलने लगे। उनमें से जो गुनहवार थे वे नीचे समुद्र में गिर गये, शेष फुल से पार उतर गये। तभी ईश्वर की आज्ञा से सर्वोदय हुआ और उसके प्रकाश में लगे हुए लोगों का हिसाब किताब होने लगा। सूर्य लगातार ६: मास तक निकला रहा। मुहम्मद साहब के अनुयायियों में से जो नेक, दीनदार व्यक्ति थे उनको सूर्य की गर्मी से कोई कष्ट नहीं हो रहा था किन्तु शेष व्यास से तड़पने, गर्मी से चलने लगे। उस समय बुदा के द्वारा बनाये गये सवा लाख फाम्बर भी वहाँ उपस्थित थे।

तब ईश्वर ने मुहम्मद से उनके अनुयायियों को सामने प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। मुहम्मद साहब ने ईश्वर से पहले पुण्यात्माओं के प्रस्तुत करने की आज्ञा चाही किन्तु ईश्वर ने पहले पापियों को अपने सामने बुलवाया और ईश्वर ने कहा कि मैं पहले पापियों को दण्ड दूँगा। यह सुनकर मुहम्मद साहब आदम, ईसा, इब्राहीम, नूह आदि फाम्बरों से जल-जल मिले और उनसे अपने अनुयायियों को सामने किलाने के लिए ईश्वर से विनती करने को कहा। किन्तु सबने अपनी विवशता प्रकट कर दी। तब स्वयं मुहम्मद साहब ने ईश्वर से विनती की। किन्तु ईश्वर ने क्रोध होकर मुहम्मद साहब की बेटी फातिमा को बुलवाया। उस समय सबने जोश बन्द कर ली थी।

फातिमा बीबी ने अपने पुत्रों हसन-हुसैन को ईश्वर के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए न्याय की याचना की। फातिमा ने यह भी कहा कि यदि मेरे साथ न्याय न हुआ तो मैं शायद दूँगी और सारा आकाश जल जाएगा। यह सुनकर ईश्वर ने मुहम्मद साहब से कहा कि वे अपनी बेटी को सामोरा करे परन्तु उनके अनुयायियों को नरक (दोज़्ख) में डाल दिया जाएगा। फातिमा ने जब यह देखा कि अन्य सभी फाम्बर तो अपने अलंकार में मग्न हैं और केवल उनके पिता अपने अनुयायियों

को जाना पहचाने के लिए इतने जगह एवं व्यापक हैं तो उन्होंने ईश्वर से जाना वाचना की। अब ईश्वर ने मुहम्मद साहब से प्रसन्न होकर फ़ातिमा के पुत्रों लतन-लुतन के हाथों यकीन को नरक में डाल दिया। इसके साथ ही ईश्वर ने मुहम्मद साहब के सभी अनुयायियों को कोसर के पवित्र कब में स्नान करवा के, मुहम्मद साहब सहित उन सभी को वाकत दी। नाना प्रकार के दिव्य भोजन, क्योंकि पेय उनको खाने-पीने के लिए दिये गये। तत्पश्चात् मुहम्मद साहब की प्रार्थना पर ईश्वर ने उन सबको रक्षा प्राप्त होने से पहले ही अपने दिव्य रूप के दर्शन दिये। ईश्वर के रूप के दर्शन करके सभी व्यक्ति तीन दिन तक मूर्च्छित पड़े रहे। फिर किब्राईल ने आकर सबको संकेत दिया और सभी मुहम्मद के अनुयायी दिव्य कब्र खारण करके रक्षा में चले गये। वहाँ पहुँचकर सभी अत्यधिक आनन्द एवं अमीन फ़िलास की प्राप्ति हुई क्योंकि रक्षा (वहिशत) में न तो मृत्यु है, न नींद, न दुःख है, न रोग है बल्कि वहाँ तो केवल सुख ही सुख और सदैव आनन्द ही आनन्द है। यथा-

तहाँ न मीच, न नींद, न दुःख, रोग न देह में रोग ।

सदा आनन्द मुहम्मद, सब सुख नाते भोग ॥

कथानक की प्रमाणिकता -

बायसी द्वारा प्रस्तुत 'बासिरी कलाम' का कथानक इस्लाम धर्म पर आधारित है क्योंकि इसमें प्रलय (क्यामत) और अन्तिम न्याय का वर्णन पुरातन इस्लामी धर्म ग्रन्थों के अनुसार है। ऐसा ज्ञात होता है कि बायसी ने कुरआन शरीफ में अन्तिम दिन के सम्बन्ध में जो कहा था, उसी को वाक्य रूप देने के लिए बासिरी कलाम की रचना की।

इस्लाम धर्म के अनुसार जीवात्मा इस संसार में जाने के पश्चात् यदि मुहम्मद साहब की अनुयायी बनकर इस्लाम धर्म के समस्त सिद्धान्तों और नियमों का पालन

करती है तांहीद, रोज़ा, नमाज़, ज़कात, हज आदि विभिन्न तत्त्वों पर क़र्र करती है और सम्पूर्ण जीवन सत्यवादी, दीनदार, नेक और पुण्यात्मा के रूप में व्यतीत करती है तो क़्यामत जाने के पश्चात् जब न्याय के लिए अन्तिम दिन होगा तो मुहम्मद साहब की सिफारिश पर तुदा बन्द करीम उसके नेक आमाँल के आधार पर उसको बहिश्त या बन्त अथवा स्वर्ग में स्थान प्रदान करेगा । जो लोग इसके विपरीत गुनाकार या पापी होंगे चाहे वे मुहम्मद साहब के अनुयायी ही क्यों न हों- उनको तुदा के द्वारा अन्तिम दिन क़्ह दिया जाएगा। उनको दोज़ह या बहन्नुम अथवा नरक में डाल दिया जाएगा ।

किन्तु जासिरी क़्लाम में जायसी ने कल्पना का बहुत अधिक सहारा लिया है । इस रचना में अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें जायसी ने अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है । उदाहरण के लिए जासिरी क़्लाम के अन्त में ईश्वर द्वारा क्षुपित होना, मुहम्मद साहब की पुत्री फ़ातिमा का बुलाया जाना और फ़ातिमा का ईश्वर के सम्मुख यह कहना कि यदि उनके साथ न्याय न हुआ तो वह शपथ दे लेगी और सम्पूर्ण आकाश जल पाएगा तथा अन्य पैगम्बरों को अक्षरारी रूप में दिखाना आदि अनेक ऐसे विवरण हैं जो इस्लाम धर्म से मेल नहीं खाते। इस्लाम के अनुसार तुदा की ख़ता तो दूर की बात कोई यहाँ तक कि उसके सबसे चहीते रसूल मुहम्मद साहब भी तुदा के द-ब-क ऊँची आवाज़ में नहीं बोल सकते न किसी के द्वारा ईश्वर की सृष्टि को शपथ दिया जाए । क़ह ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी " दिया "वाद से अधिक प्रभावित थे । इसीलिए उन्होंने इस प्रसंग को इतने अनग़ि रूप में प्रस्तुत किया है क्योंकि कोई सच्चा मुसलमान कभी स्वप्न में भी यह दुस्वास नहीं कर सकता कि वह ईश्वर से भी अधिक प्रचण्ड किसी सांसारिक व्यक्ति को दिखाने का प्रयत्न करे जैसा कि जायसी ने फ़ातिमा के प्रसंग को लेकर किया है ।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त चाँतीस दिन तक अग्नि की वषा, चाँतीस दिन तक जल-वषा, चाँतीस वर्ष तक ईश्वर का रुकान्त और विचारादि करना,

जीवों का नौ शरीर प्रलय के दिन रहना, तालू पर जाते होना, अन्य फाम्बरों के पास जाकर मुहम्मद साहब का अनुभव विनय करना, फातिमा की सोज, ईश्वर की रसूल पर धौस बनाना, रसूल का फातिमा को समझाना, ईश्वरीय दावत, ईश्वर-दर्शन, सब लोगों का अनेक दिन तक मुच्छिन्ति रहना यदि सभी विवरण कल्पना प्रसूत हैं ।

यहूदी, ईसाई और इस्लाम सभी धर्मों में अन्तिम दिन अथवा रोज़-ए-इंसाफ़ का महत्त्व है। इन सभी के धार्मिक ग्रन्थों में रोज़-ए-इंसाफ़ का जिक्र आया है। इस्लाम धर्म में इस पर विशेष रूप से बल दिया गया है। इस्लाम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के कर्म पर दो फ़रिश्ते हर समय नियुक्त रहते हैं जो उसके पाप-पुण्य का हिसाब-किताब रखते हैं, जीवन भर व्यक्ति जो कुछ करता है, उसका पूरा लेखा-बोला रोज़-ए-इंसाफ़ के लिए तैयार रहता है, मरणोपरांत जब मुर्दा क़ब्र में दफ़न किया जाता है तो तुरन्त ही मुन्कर-नकीर फ़रिश्ते उसके सवाल-जवाब तलब करने आते हैं। अन्तिम के रोज़ मक़बर में व्यक्ति द्वारा किये गये कर्मों के आधार पर इंसाफ़ किया जाएगा और पुण्यात्माओं को स्वर्ग या बहिश्त तथा दुष्टात्माओं को नरक या दोज़ह में भेज दिया जाएगा । किन्तु मुहम्मद साहब के अनुयायियों में से यदि कोई गुनाहगार भी होगा तो भी रसूल-ए-तुदा अथवा मुहम्मद साहब की सिफ़ारिश पर (गुनाहगार बन्दों द्वारा- परचाताब करने पर) तुदा उनको दामा कर लेता और उनको भी जन्नत में स्थान प्राप्त हो जाएगा ।

किन्तु जायसी इसके भी आगे बढ़ गये हैं। संभवतः उन्होंने यह सब इसलिये किया है कि अन्य धर्मों के लोगों को अपने धर्म की ओर आकर्षित करें । वे एक सुफ़ी प्रकार भी थे इसीलिये उन्होंने कथा में समतत्कारपूर्ण कल्पित प्रसंग भी छे लिये हैं ।

जब हमें यहां पर यह भी देखना है कि जब जायसी आतिरी क़लाम के माध्यम से इस्लाम का प्रचार अन्य धार्मिक ग्रन्थों विशेष रूप से हिन्दुओं में करना

जाहों थे तो उन्होंने इस्लाम के वास्तविक तथ्यों के अतिरिक्त अन्य कल्पित बातों का उल्लेख अपने इस काव्य में क्यों किया ।

उदाहरणार्थ जायसी ने अपने इस काव्य में प्रलय के समय ४० दिन तक अग्नि वर्णा होना, ४० दिन तक ब्रह्म वर्णा होना और सम्पूर्ण सृष्टि के नष्ट हो जाने के पश्चात् ४० वर्णों तक ईश्वर के एकान्तवास का वर्णन किया है। उन्होंने ४० की संख्या पर इतना बल क्यों दिया है ? कुरान शरीफ में उपर्युक्त बातों का कहीं भी किंचिद् मात्र उल्लेख नहीं और न ही कोई हदीस ऐसी प्राप्त होती है जिसमें इन बातों का बिलकुल जिक्र किया गया हो । न इज्जील में, न तौरत में ही क़्यामत के वर्णन के साथ ऐसा उल्लेख किया गया है ।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब क़्यामत के समय सम्पूर्ण सृष्टि के साथ चन्द्र, सूर्य भी नष्ट हो जाएंगे, तो फिर दिन-रात का हिसाब किस प्रकार होगा ? हमारा विश्वास है कि जायसी ने विश्वविद्या किल्लिसे से सम्बन्धित होने के कारण ही ४० की संख्या को महत्त्व दिया है । सुफ़ी लोग ४० दिन तक एकान्तवास करके ४० दिन का चिल्ला सीना करते हैं, वही बात उन्होंने क़्यामत से सम्बन्धित करके ४० दिन तक अग्नि वर्णा और ४० दिन तक ब्रह्म वर्णा का अभावह चित्र प्रस्तुत किया है । किन्तु, फिर वे दिनों से एकदम ब्रह्म लान कर वर्णों पर आ जाते हैं और प्रलय द्वारा सर्वनाश के बाद ईश्वर को ४० वर्णों तक एकान्तवास कराते हैं। हो सकता है कि जायसी ने सोचा हो कि ४० दिन या ४० मास में ईश्वर द्वारा कोई निणय उक्ति नहीं होगा इसलिए यह अवधि बढ़ाकर ४० वर्ण कर दी जाए । यहां पर एक बात और भी ध्यान देने की है कि हो सकता है कि जायसी के मस्तिष्क में यह बात भी रही हो कि ४० वर्ण की अवस्था तक मुहम्मद साहब एक जाधारण व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत करते रहे थे और उन पर सुदा की ओर से सबसे पक्की "बही" (आकाशवाणी) ४० वर्ण की अवस्था के हो जाने पर "नाज़िह" (उतरी) हुई थी और वे ४० वर्ण की अवस्था में "फ़ाम्बर या रसूल" बने थे ।

जब यही पर एक बात और सामने आती है कि आसिरी कलाम में इश्वर को विचार करने के लिए कवि ने इतना समय दिया ताकि उसके निगाय में कोई ब्रुद्धि न रह जाए, यह बात कलाम में आनेवाली नहीं है क्योंकि प्रत्येक धर्म में इश्वर एक अत्यधिक आवर्णवादी रूप में प्रस्तुत किया गया है और इस्लाम में तो उसे और भी महत्त्वशाली उच्चासन प्रदान किया गया। उसमें कोई कमी हो सकती है, ऐसा सोचना भी पाप है। फिर जायसी ने ऐसा उल्लेख क्यों किया ? जायसी तो स्वयं मुसलमान थे और साधारण मुसलमान से अधिक जानकारी इस्लाम के बारे में रखते थे, फिर उन्होंने इश्वर के ४० वर्षा एकान्तवास की विवक्षा रूप में फूट करने की चेष्टा क्यों की ? जबकि इस्लाम तथा कुरआन शरीफ बार-बार कहते हैं-

“बादलु शरीका उहु ।” - तुम या इश्वर एक हो और उसका शरीक कोई नहीं तथा वह ब्रह्म (आदि) से है और अव्यय (अंत) के बाद भी रहेगा। हो सकता है कि जायसी ने ये सब कल्पनाएं केवल धूरों को आकर्षित करने के लिए ही की हों।

फिर इश्वर के सम्मुख प्राणियों को की शरीर और बाल पर जलें लगाकर जायसी ने प्रस्तुत किया है। यह वर्णन एकदम अगल है और जायसी ने ऐसा वर्णन करने अनर्थ कर दिया है। फिर वरोंसे क़यामत आत्मा ही परमात्मा के सम्मुख पहुँचती। जायसी ने इसी संदर्भ में आगे एक स्थान पर यह भी लिखा है कि जब बीबी फ़ातिमा आने लगीं तो सब प्राणियों को कठोर आदेश दिया गया कि वे सब अपने नेत्र बन्द कर लें। तो यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जो प्राणी इश्वर के सम्मुख उपस्थित थे, क्या वे सब पुरुष ही थे, उनमें स्त्री एक भी नहीं थी ? क्या मुहम्मद साहब की उम्मा (अनुयायियों) में एक भी नारी पुण्यात्मा नहीं थी ? जबकि वहाँ गुनाछार और बे-गुनाह जव्वा पुण्यात्मा सभी उपस्थित थे। अतः जायसी ने यह भी एक ब्रह्म ही भरी कल्पना की है जिससे काव्य का कोई कल्याण नहीं होता।

जब जाती है फौज्दार मुहम्मद साहब का आदम, गृह आदि फौज्दारों के पास जाकर अपनी उम्मत के उत्थान के लिए अनुनय विनय और दैन्य प्रदर्शन वाली बात तथा उन लोगों के द्वारा संहार प्रकट करना और अपनी विवशता और सहायता न करना ।

अन्य फौज्दारों के पास मुहम्मद साहब के जाने की बात के द्वारा जायसी निस्संदेह उनकी महान, विनयशीलता आदि गुणों को फिखावे हैं। किन्तु कुरान शरीफ में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है और जो बात कुरान शरीफ में वर्णित नहीं है। उसके होने का प्रश्न ही नहीं उठता, ऐसा मुसलमान और इस्लाम का जट्ट विश्वास है ।

फिर रसूल-ए-तुदा फौज्दार ख़ुरत मुहम्मद साहब को सभी फौज्दारों में अफ़-ज़ल (श्रेष्ठ एवं महान्) तथा अन्तिम रसूल माना गया है। उनको तुदा का सबसे प्रिय रसूल कहा गया है तो फिर उनको किसी के पास जाकर उसके अपनी उम्मत के उद्धार की सिफारिश कराने की क्या आवश्यकता ? ज्ञातः जायसी ने यह बात भी एकदम मनाइन्त रूप में प्रस्तुत की है ।

रसूल की बेटी बीबी फातिमा का जो प्रसंग जायसी ने काश्मिरी क़ताब में रखा है वह एकदम बकवास है, यदि जायसी के समय का कोई जट्ट नांठवी अवधी भाषा जानता होता और उसने काश्मिरी क़ताब को पढ़ा होता तो वह उसी समय जायसी के लिए काफ़िर और मुस्लिम होने का फ़तवा दे देता । फ़ातिमा का तुदा के जबक न्याय मांगना, ईश्वर का कुफ़िर होना, रसूल का धोखा, फ़ोभन देना आदि ये सब ऐसी बातें हैं जिनको सुनकर इस्लाम से मामूली जानकारी रखनेवाली भी एकदम बौक जायेगा और आपत्ति प्रकट करेगा, न कि एक सच्चा मुसलमान व इन सब बातों को सहन कर सके । कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि ईश्वर के सम्मुख कोई बंदा सवाल करे, जबकि जायसी ने फ़ातिमा के द्वारा तप देने की बात तक कह दी है । ऐसा कदाचित् जायसी ने हिन्दू धर्म से प्रभावित होकर किया है क्योंकि हिन्दू

ईश्वर और अवतार बड़े उदार और सहिष्णु होते हैं, अनेक ऐसी पौराणिक गाथाएँ हैं जिनमें भक्त द्वारा शाप दिये जाने की बात कही गई है। फिर हिन्दू धर्म में नारी को पुरुष के साथ ही साथ बराबर का स्थान प्राप्त है कोई भी प्रमुख ईश्वर अकेला नहीं है उसकी पत्नी सदैव उसके साथ है जैसे शंकर-पार्वती, राम-सीता आदि ।

जबकि इस्लाम में ईश्वर निर्गुण निराकार और एक तथा कोई और उसके साथ सम्मिलित नहीं है। ऐसे इस्लाम में समता (समानता) द्वारा औरत और पद को बराबर का दर्जा प्राप्त है किन्तु सांसारिक रूप में । हो सकता है कि जायसी ने फ़ातिमा के प्रसंग को इस प्रकार उठाकर हिन्दू जनता को आकर्षित करने का प्रयास किया हो ।

यहाँ पर पुनः एक बात ध्यान देने की है, अधिकतर सूफ़ी ईरान से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण मुसलमानों के शिया सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित रहते थे और रसूल की बेटी फ़ातिमा-क़ुरत अली की पत्नी थीं । शिया लोग शेष महान् मुसलमानों से अधिक महत्त्व अली, फ़ातिमा, हसन, हुसैन और अन्य इमामों को देते हैं तथा सुन्नीयों के क़ुरत अबुबक़र सिद्दीक, उमर, उस्मान तथा अन्य महापुरुषों को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते । जायसी भी सूफ़ी विचारधारा के थे। हो सकता है कि शियावाद से प्रभावित होकर ही उन्होंने फ़ातिमा उपर्युक्त प्रसंग को उनकी महत्ता स्थापित करने के लिए अपने काव्य "ठाग़िरी क़ास" में रखा हो। किन्तु इस प्रसंग से काव्य के सौन्दर्य को गहन चक्का लग गया है और ईश्वर का महान् रूप भी कुछ कम सा बन गया है ।

अब जाता है प्रसंग ईश्वर-दर्शन का या क़ुदा के दीखार का। जायसी ने मुहम्मद साहब की उम्मत द्वारा दर्शन याचना की मुहम्मद साहब की सिफ़ारिश पर कालोक रूप में प्रकट होकर दिहाया परिणामस्वरूप सभी लोग तीन दिन तक मुन्धित रहें ।

सूफ़ी साधक अपनी साधना की वर्तमानस्था परम सत्ता के दर्शन और मिलन में ही मानता है और वह विश्वास रखता है कि उसे साधना द्वारा एक दिन ईश्वर का दीदार अवश्य होगा। इसी बात को सिद्ध करने के लिए ही जायसी ने उपर्युक्त प्रसंग जातिरी क़त्लाम में प्रस्तुत किया है।

यहाँ पर नूर-ए-इलाही (ईश्वरीय ज्योति, प्रकाश) के सम्बन्ध में कुछ बताना अप्रासंगिक न होगा।

इस्लाम धर्म में अल्लाह को सृष्टि का कर्ता रक्षक और संहारक सभी माना गया है। क़ुरआन शरीफ़ अल्लाह के (इस नाम सन्नि) ६६ नाम प्रस्तुत किये गये हैं जो उसके गुणों को प्रकट करनेवाले हैं। अल्लाह के एक आदेश "कुन" अर्थात् "हो जा" से सृष्टि का निर्माण, रक्षा और संहार सब कुछ होता है- भाषा प्रेमरस में ऐसे रहीम कहते हैं-

एक शब्द कहा "कुन" केरा, चिरमा भमि अकाश घनेरा ।

ऐसी महान् परम सत्ता "अल्लाह" के नूर (ज्योति) के सम्बन्ध में क़ुरआन शरीफ़ में बहुत-कुछ प्राप्त होता है।

क़ुरआन शरीफ़ की सूरत "अन-नूर" में आया है- "अल्लाह आसमानों और जमीनों का नूर है। उसके प्रकाश की निवाल ऐसी है जैसे एक तारु में चिराग़ हो, वह चिराग़ एक फ़ानूस में हो, वह फ़ानूस ऐसा हो मानो एक चमकता हुआ तारा है, अल्लाह अपने प्रकाश कीज और जिसे चाहता है, राह दिखाता है।" (आयत-३५)

सूरत अहज़ाब की आयत ४६ में सुदाकन्द करीम फ़रमाता है- "ए नबी (मुहम्मद) हमने तुम्हें शुभ सूचना देने वाला बनाकर भेजा और अल्लाह की ओर से उसके ही आदेश से राशन चिराग़ बनकर।" (संसार में ज्ञान का प्रकाश फैला)।

सूरत तगाबुन की वायत ६४ में आया है - "इमान लाओ "बलाह" पर और उसके "रसूल" पर और उस "नूर" पर जिसे हमने उतारा ।

सूफियों ने "कुरआन शरीफ" की "नूर" सम्बन्धी इन वायतों पर बहुत अधिक चिन्तन किया है इसीलिए सूफ़ी परम्परा को बलाह न कहकर "नूर" कहते हैं । वे कहते हैं कि बलाह परम सौन्दर्य (नूर) है इसीलिए प्रेम का पात्र है या प्रियतम भी है। इसीलिए वायसी ने बुदा को जन्त सौन्दर्य (नूर) मानते हुए ही पद्मावती के रूप की भी ऐसी ही उपमा दी है। अतः सूफ़ी कवियों द्वारा नूर-र-बलाही (हरिवरीय ज्योति) का उल्लेख उनके रचनाओं में प्राप्त होता है। "जाज़िरी कलाम" में स्वर्ग में प्रविष्ट होने से पूर्व नूर-र-बलाही के ही पक्ष में वायसी ने कराये हैं।

अब यहाँ पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह सामने आती है कि वायसी ने "जाज़िरी कलाम" में क्यामत, रोज़े- मरहूर या रोज़-र-इंसाफ़ का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह घट चुका है, हो चुका है या बीत चुका है। जबकि कुरआन शरीफ़ के अनुसार क्यामत जायेगी और उसके पूर्व ही उसके आसार दृष्टिगोचर होने लगेगी। "कुरआन शरीफ़" के अनुसार क्यामत में बन्दों के कर्मों और आपातों का हिसाब-किताब होगा और जो कुंवात्मारं होंगी तथा जो तौबा करके प्रायश्चित्त कर लेंगे। उनकी मुहम्मद साहब सिफ़ारिश पर बतुलित (मोद) बुदा द्वारा होगी। तो यह सब कुछ भविष्य में होगा । जबकि वायसी ६३६ हि से पूर्व जाज़िरी कलाम द्वारा क्यामत बरपा करा चुके हैं । यह एकदम अनहोनी है। अतः वायसी की प्रस्तुत रचना एकदम काल्पनिक एवं अप्रौढ़ रचना है ।

प्रबन्धात्मकता-

"जाज़िरी कलाम" मसनवी शैली में लिखा एक प्रबन्ध-काव्य है। किन्तु इसके प्रबन्ध-सौष्ठव में कवि वायसी द्वारा कल्पित विवरण उच्च व्यतिक्रम उत्पन्न करते हैं । वायसी ने इस रचना में एक ही बात की अनेक बार अलग-अलग रूप में पुनरावृत्ति की है । जैसे-

फ़रिश्ता मीकाइल इश्वर की आज्ञा पाकर अग्नि-वर्षा द्वारा तथा ज़ुबर्ना द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को एकसार एवं सून्य कर देता है-

“सून पिरथिवी होइ गइ, दहुं धरती सब लीप ।
कैसी सिस्थि मुहम्मद, सब भाइ कइ दीप ॥”

एक बार फिर मीकाइल द्वारा जल-वर्षा द्वारा पृथ्वी के पक्षीदि को समूह जल में गायब कर देता है-

“सून पिरथिवी होइहि, बूझै छैं उठार ।
एतनी जो सिस्थि मुहम्मद, सो कहं गइ हैरार ॥”

और फिर इब्राफ़ील की फूंक द्वारा पुनः पक्षीों का सर्वनाश जायसी द्वारा प्रस्तुत किया गया है-

“दूसरी फूंक जो मेरु छडे हो। परबत समुद एक होइ बहे ॥”

इसी प्रकार इश्वर के आज्ञानुसार इब्राहिल फ़रिश्ता मिश्राइल जो मार देता है तथा मीकाइल और इब्राफ़ील स्वयं अपने प्राण छोड़ देते हैं। इन तीनों की मृत्यु का जलजल कणन करने के उपरान्त जायसी ने एक बार फिर इन तीनों फ़रिश्तों को इब्राहिल द्वारा मारते हुए दिखाते हैं-

पल्ले किज किराउ क छे । ठोटि-बीउ मीकाइल के ।
पुनि किज देखहि इब्राफ़ील । तीनहि कहं मारं अबराहिल ॥

इस प्रकार के कणन से यह ऊँचा ऊँचान में पड़ जाता है, एक तो अब अधिकतर पाठक इन पात्रों से पूर्णरूपेण परिचित नहीं और फिर कवि एक ही घटना को बहुत बड़क कर जलजल रूप में प्रस्तुत करे तो समस्या तो उठ लड़ी ही होगी। इससे सिद्ध

है कि कवि रूप में जाद्विरी क्लान जायसी की प्रारम्भिक रचना ही है।

अक्षरावट -

“अक्षरावट” नामक ग्रन्थ में जायसी ने किसी कथा को वर्णित न करते हुए अपने साधना एवं दर्शन सम्बन्धी दृष्टिकोणों को व्यक्त किया है। यह जायसी का एकमात्र ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने कोई कथा प्रस्तुत नहीं की है। इस ग्रन्थ में जायसी ने ककहरा पद्धति का अनुसरण किया है अतः इस में सुफुली निबन्धों जैसा तारतम्य उपलब्ध नहीं होता। किन्तु जायसी की साधना-पद्धति और उनकी विचारधारा को समझने के दृष्टिकोण से यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी ग्रंथावली के अन्तर्गत अक्षरावट का संपादन किया है। इस ग्रन्थ की लगभग एक दर्जन से अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। अक्षरावट में ५४ दोहे, ५४ सौरठे और ३७१ अर्द्धालियाँ हैं। इस ग्रन्थ में पहले एक दोहा, फिर एक सौरठा और पुनः ७ अर्द्धालियों के क्रम को आदि से अन्त तक रखा गया है।

रचनाकाल -

जुलूस = फुल्लाद, ६११ हिजरी - विद्वानों के अनुसार यह तिथि मूल प्रति के आधार पर ही इस हस्तलिखित प्रतिलिपि में प्रस्तुत की गई है। अतः कुछ विद्वान् अक्षरावट की रचना ६११ हिजरी अर्थात् १५०५ ई. मानते हैं।

किन्तु न तो जायसी ने इस ग्रन्थ में रचना की तिथि दी है और न इस ग्रन्थ में शाह-ए-बक्क के नाम का उल्लेख किया है क्योंकि यकायक मसनवी पद्धति पर नहीं लिखा गया है। अक्षरावट का गंभीर अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि यह एक प्रांढ़ रचना है और इसमें कवि ने बहुत सोच-विचार कर इस्लामी सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है और जाद्विरी क्लान जैसी अपरिपक्वता इस

इस ग्रन्थ में नहीं है। अफिऊ अलरावट में पदनाकत केती वितवता, प्रोदता एवं परिपक्वता के दर्शन होते हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए संभव कल्पे मुस्तफा साहब अलरावट के सम्बन्ध में कहनाते हैं-

“अल्फाजु का इन्तिहाय, बन्दिश की चुस्ती, फता देती है कि यह नज़्म शायर जायसी के दार-ए-बाहिरी का नतीजा है, इसके यह क़रावन हैं कि अलरावट पदनाकत के बाद तस्नीफ़ हुए हैं।”

उपरोक्त कथन में बहुत कुछ सार्थकता प्रतीत होती है क्योंकि वास्तव में जायसी के अलरावट में वह अनाड़ीपन नहीं है जो उनके बाहिरी क़लाम में दृष्टिगोचर होता है। अलरावट हमें एक अत्यधिक अनुभवी और मंझे हुए कवि की रचना लगती है जबकि बाहिरी क़लाम एक बकाना प्रयास लगता है। अतः अलरावट की रचना ६११ खिररी में न होकर ६४८ और ६४६ खिररी के मध्य आती होती है क्योंकि पदनाकत की रचना ६४७ खिररी में हुई थी और जायसी की मृत्यु ६४६ खिररी में हुई थी, इसीलिए ६४८ खिररी अर्थात् सन् १४४२ ई० में अलरावट की रचना मानना ही अधिक युक्तिलोत प्रतीत होता है।

अलरावट का कव्य-विषय -

अलरावट में इस्लाम के धार्मिक ग्रन्थ क़ुरआन शरीफ़ के आधार पर संसार की उत्पत्ति एवं विकास का उल्लेख किया गया है। जायसी की प्रस्तुत रचना के अनुसार दृष्टि रचना से पूर्व चारों ओर शून्य ही शून्य था। उस समय न धरती थी, न आकाश था, न पक्षी थे, न सागर थे, न सूर्य था और न ही चन्द्रमा था, बस

१- मलिक मुहम्मद जायसी- पृ० १६० (कल्पे- मुस्तफा)

भी नहीं था। चारों ओर गहन अन्धकार ही अंधकार था। उसके बाद सृष्टिकर्ता ने फाम्बर मुहम्मद साहब के 'नूर' की रचना की थी और उसके बाद बुदा ने अपने 'महबूब' (प्रिय) फाम्बर मुहम्मद की त्वातिर संसार की रचना की। सबसे पहले चार फ़ारिस्तों की रचना हुई, फिर इन चारों ने चार तत्त्वों के मिश्रण से जादि पुरुष 'आदम' की रचना की। आदम की रचना होने पर बुदा ने फ़ारिस्तों को जाजा दी कि वे आदम को आदर प्रकट करते हुए नमस्कार करें। तीन फ़ारिस्तों (देवदूतों) ने तो आदम के प्रति सम्मान प्रकट दिया, किन्तु चौथे फ़ारिस्त ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। तब सृष्टिकर्ता ने उस चौथे को सबसे दार का रसक बना दिया। उसके बाद सृष्टिकर्ता द्वारा आदम की स्त्री 'हव्वा' की रचना हुई और उसने आदम व हव्वा को स्वर्ग में आनन्दपूर्वक रहने के लिए भेज दिया और उन दोनों को दू गेंदु (गन्धुम) खाने के लिए कठोरतापूर्वक मना कर दिया। परन्तु खाने के बरगुलाने पर आदम और हव्वा ने उस वर्धित वस्तु गेंदु को खा लिया। सृष्टिकर्ता ने अपनी जाजा का उल्लंघन होने पर उन दोनों को स्वर्ग से निष्कासित करके धरती पर फेंक दिया। वे दोनों एक-दूसरे से बिछड़ कर विरह से तड़फते रहे। फिर सृष्टिकर्ता ने कृपा दिखाते हुए उन दोनों को मिला दिया। आदम और हव्वा के इस धरती पर मिलन के परिणामस्वरूप मानव सृष्टि का विकास हुआ, जिनमें जागे चलेकर अपने अपने घरों को बानने वाले हिन्दुओं और तुर्कों का भी विकास हुआ।

इसके बाद कवि जायसी ने शरीर की रचना, शरीर में ही स्वर्ग-नरक का विकास, मन की चंचलता, काय नगरी के जाम पन्थ, चार बसेरों के भेद, सात-खण्डों एवं सात गुरू की कल्पना, बड़े डाकू की मुक्त प्रशस्ति, संसार की बसारता, तप साधना, मानव का गन्ताव्य स्थान, गुरू की मल्ला, इस्लाम की भेषुता, गुरू परम्परा, छे-छपक, शून्य निष्पणा, धूत छपक, दीपक छपक, खीर की प्रशंसा, गुरू शिष्य संवाद, प्रेम के छेड़ को जपाने का जाग्रह जादि आ काने करते हुए

कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने ग्रन्थ कतरावट में अनेक गूढ़ एवं रहस्यमयी बातों का निरूपण बड़ी निपुणता से किया है।

कतरावट के कर्ण विषय का आधार-

जायसी ने कतरावट का मुख्य कर्ण-विषय दृष्टि के उद्भव और विकास को रखा है। इस कर्ण का आधार इस्लामी धर्म ग्रन्थ कुरआन शरीफ है। अतः जायसी ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में सबसे पहले अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार फारम्वर मुहम्मद साहब के रूप 'नूर' अथवा ज्योति के प्रकट होने की बात कही है-

गगन हुआ नहीं मही छुती, कुं चंदा नहि सूर ।

ऐसई अंधकूप मंड, रना मुहम्मद नूर ॥

फिर दृष्टिकर्ता ने मुहम्मद साहब की प्रति में इस सम्पूर्ण दृष्टि की रक्षा की-

एस जो ठाकुरे जिय एक दाऊं । पछि रना मुहम्मद नाऊं ॥

तेहि के प्राति बीष अउ आमा । भर दुई बिरिइ सेत जो सामा ॥^१

जायसी के कतरावट में आदम, हव्वा और इब्लीस के प्रसंग आए हैं। ये पात्र न केवल कुरआन शरीफ में वर्णित हैं बल्कि अन्य आसमानी ग्रन्थों जैसे तारेत (यहूदियों का धार्मिक ग्रन्थ), इंजील (ईसाइयों का धार्मिक ग्रन्थ) आदि में भी आदम, हव्वा और इब्लीस का कर्ण उल्लेख होता है। जायसी ने भी इनका कर्ण किया है-

पुनि इब्लीस संचारेउ, डारत रहे सब कोइ ।^२

१- जायसी ग्रंथावली - कतरावट (१), पृ० २६३

२- -वही- (२) पृ० २६४

३- -वही- (४) पृ० २६४

इबलीस वही बोधा फुरिस्ता है जिने सृष्टिकर्ता के कहने पर भी आदम को सिजदा अथवा नमस्कार नहीं किया था, सबसे वह ईश्वर द्वारा उपेक्षाणीय समझ लिया गया और वह पाप और बुराई का प्रतीक बनकर आज तक इंसान के नाम से जाना प्रसिद्ध है। इबलीस ने ईश्वर का विरोध किया आदम और हव्वा उसी के बलकावे में आकर जन्नत अथवा स्वर्ग से निकाले गये और तब ही से इबलीस या इंसान संसार के सीधे-सादे मानवों को धर्म से विमुख करके पापों के बाल में फंसाने की बराबर चेष्टा करता चला आ रहा है। वास्तव में इंसान द्वारा ही मानव जीवन में दुष्टों का सूत्रपात हुआ है।

तसव्वुफ़ एक प्रकार से इस्लामी कमिण्ड के विरोधी प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित हुआ था। इसीलिए उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान् मोलवी अब्दुल क़ादिर ज़ाहिदी ने कि-

“सुफ़ी एक किस्म का जागी होता है, जो रस्म-ए-ज़ाहिरदारी को, जो क़िर्तों को मुद्दा कर देती है या नहीं कर सकता और उसके खिलाफ़ अलम-ए-बग़ावत बुलन्द कर देता है।”^१

किन्तु सुफ़ी साधक एवं कवि जानी होते हुए भी तरीक़ा पर विश्वास करते हुए अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का परिचय को थे। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी इस्लाम में पूरी आस्था प्रकट करते हुए साधना-दोत्र में अपने अनुभवों को सिद्धान्त रूप दिया है। अतरावट जायसी का एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है, जिसमें मुख्यतः संसार की आरता, मोह, त्याग, ईश्वर प्रेम, सादा जीवन आदि का अच्छा और महत्त्व पूर्ण वर्णन किया है। वर्णों के अनुभव, साधना और सत्यनिष्ठा के परिचाय जायसी ने सत्त्व ग्रहण करने की सफ़ल चेष्टा की है और उन्होंने सम्प्रदायवाद से ऊपर

१- उर्दू की इतिदाह नश्वो मुता में सुफ़िवाए क़राम का काम, पृष्ठ १

उठकर प्रांङ्ग रचना के रूप में अतरावट को प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि जायसी का प्रस्तुत ग्रन्थ और इसके सिद्धान्त सर्वसम्मत एवं सर्वकालीन हैं।

“अतरावट” में जायसी संसार के मिथ्यात्व का वर्णन निम्न शब्दों में करते हैं-

झूठ सब संसार मुलनद भित न लाइये ।^१

ब्रह्म की सर्वव्यापकता का वर्णन जायसी ने इस प्रकार किया है-

चौदह भुवन पूरि सब रहा ।^२

“अतरावट” में ब्रह्म और जातु की अन्तःस्थिति का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

जापुहि फल जापुहि रसवारा । जापुहि सो रस वाहन हारा ।

जापुहि धट धट मंह मुत्त चाहे । जापुहि जापन रूप सराहे ।^३

कवि ने यहाँ पर जीव और ब्रह्म के अभेदत्व का निरूपण किया है। काया नगरी में सोजने पर प्रियतम के मिलने का संकेत किया है।

जायसी ने इसमें नमाज, तरीक़्त, हकीक़्त, मजारिफ़्त और शरीक़्त को ही साधना के ज़ेष्ठ सोपानों के रूप में स्वीकार किया है। जायसी ने इस ग्रन्थ में स्थान स्थान पर योगियों एवं सिद्धों की पारिभाषिक शब्दावली का भी अच्छी तरह प्रयोग किया है। इसीलिए अतरावट में अनख नाद, उड़ा, भिंछा, चुणुन्ना, बंक नाहि, शून्य, सख़्तार, कुण्डलिनी, कमल कद्र, नांपोरी, दशन आदि का

१- अतरावट , पृ० १७

२- -वही- १

३- -वही- १८

कानन फिलता है। जायसी ने अत्यधिक सराहनीय रूप में यहाँ पर आपको के माध्यम से आध्यात्मिक साधना का नायिक एवं सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। इस गून्थ के घुत रूपक, दीपक रूपक, बोलाला रूपक बहुत ही नायिक एवं सजीव हैं, जायसी ने यहाँ अन्य बातों की अपेक्षा 'प्रेम की पीर' को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया है-

कहे प्रेम के बरनि कहानी । जो बरने सो सिद्ध गियानी ।

माटा कर तन भाँडा, माटी मह नव सँड ।

वे केहु सँड माटी मह, माटी प्रेम प्रचंड ॥^१

यहाँ कवि की संकीर्णता की अपेक्षा उदारता ही अधिक दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि जायसी ने इस्लाम तथा हिन्दू धर्म के मणिकांचन योग द्वारा अपने गून्थ अक्षरावट की रचना की है। यह रचना गूढ़ एवं विचारपूर्ण है। इसमें 'क' से लेकर 'ह' तक की वर्णमाला के आधार पर चोपाई- दोहे आरम्भ और अन्त में स्वतंत्र पद्यति पर भी हैं, परन्तु अक्षरों के आधार बनाकर कविता करने के कारण ही इसका नाम अक्षरावट रखा गया है।

अक्षरावट नाम की सार्थकता -

'अक्षरावट' शब्द, अक्षर-वृत्त का तदुभय रूप बान पड़ता है। कुछ विद्वान इसे अक्षरावत या अक्षरावटी अथवा अक्षरांटी भी मानते हैं। स्वयं कवि जायसी ने इस प्रकार विषय प्रवेश की घोषणा की है-

कहाँ सो ज्ञान कम्हरा, सब आखर महं छेसि ।

पंछित पदं अक्षराटी, टूटा जोरेहुं देसि ॥^२

१- अक्षरावट, ५३

२- -वही- ३०३

परन्तु जायसी के अन्य ग्रन्थों पद्मावत, सतरावत, इतरावत, मटकावत जादि के अनुकरण पर इस काव्य का नाम 'अतरावत' ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। किन्तु प्रचलित नाम 'अतरावट' ही है।

अतरावट में परमेश्वर कथन

अतरावट में जायसी ने परमेश्वर को विभिन्न नामों से अभिहित किया है। प्रायः सभी नाम हिन्दू शब्दावली से लिये गए हैं। केवल एक बार दोहा लच्छ ४० में जायस शब्द के तीन अक्षरों की व्याख्या करते हुए 'अलिफ' को 'अल्लाह' माना है-

- १- साह - साह केरा नांव लिया पूर काया भरी ।
- २- गोसाह - जादि हूँ वो जादि गोसाह ।
- ३- ठाकुर - ऐसा जो ठाकुर किय एक दाऊन ।
- ४- करतार - 'ता करतार बखिय अल चीन्हा ।
- ५- कर्ता - 'पुनि नाया कर्ता के भई ।
- ६- सेठार (लीलापय) - सा सेठार अल है दुई करा ।
- ७- विधिना - जा बलि जो चाहहु देता ।
बहुत विधिना करे अछेता ॥
- ८- पिठ - बटु है फिडकर सोज, जो पावा सो मरझिया ।
- ९- कन्त - कन्त विपारे भेंट देते तूझ तूझ सोई ।

इन नामों के अतिरिक्त अतरावट, दोहालच्छ २ में जायसी ने ब्रह्मा, विष्णु, और मल्ल के नामों का उल्लेख किया है। परन्तु इनको उन्होंने देवता कोटि में ही रखा है। इन्हें जायसी पारब्रह्म नहीं मानते। ये कहते हैं कि जब स्कान्, अरसी, ब्रह्मा, विष्णु, मल्ल कोई नहीं थे, तब 'परम रस रसित' बहु बीज 'परमात्मा अवस्थित था-

संग न धरति न संभ मय, बरम्ह न बिनुन महे ।

बजर बीज बीरो ज्ञ, बोधि न रंग न भे ॥^१

जब यहाँ हमारे सामने एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न उठ खड़ा होता है और वह है कि जायसी ने जब इस गून्थ की रचना कुरबान तरीफ़ के आधार पर की है तो परमेश्वर के विभिन्न नामों को हिन्दू श्रद्धालुओं में क्यों प्रस्तुत किया है जबकि वात्म, हव्वा और इबलीस आदि नामों को उनके मूल रूप में ही प्रस्तुत किया है।

कुरबान तरीफ़ ने परमेश्वर के ६६ नाम प्रस्तुत किये हैं जो हम अब सक्षि यहाँ पर प्रस्तुत कर रहे हैं-

- १- कल्लाह - परमेश्वर का निजी नाम
- २- रज़्जान - रक्ष या क्या करने वाला
- ३- रहीम - बड़ा मेहरबान, दयालु, कृपालु
- ४- ज़मलिक - लकीली बादशाह, वास्तविक सम्राट
- ५- ज़ुहस - बुराईयों से पाक ज्ञात
- ६- सलाम - वे सब ज्ञात
- ७- मूमिन - वे ईमान व ज्ञान (ज्ञान्ति) देनेवाला
- ८- हेमिन - निगलवान
- ९- ज़लज़ज़ीज़ - सब पर ग़ालिब अथवा भारी
- १०- ज़व्वार - सबसे ज़बरदस्त
- ११- मुतकव्विर - बड़ाई और बुझाईवाला
- १२- क़ालिक - पेदा करनेवाला
- १३-१४- ज़लबारी उल मुतकव्विर - ज्ञान डालने वाला, ज़ूरत देने वाला
- १५- गुफ़्फ़ार - दण्डित करनेवाला (टालने वाला)
- १६- ज़क़हार - सबको काबू (क़ा) में करनेवाला

- १७- बहाव - सबको बहा (प्रदान) करनेवाला
 १८- रज्जाक - सबको रोज़ी देने वाला
 १९- अलफ़ाह - मुश्किल कुशा, कठिनाइयों को दूर करने वाला ।
 २०- अहीम - व्यापक ज्ञान रखनेवाला
 २१- अलकाबिल - रोज़ी तंग करने वाला
 २२- अलबासित - रोज़ी बढ़ाने वाला
 २३- अलसाफ़िह - पस्त करनेवाला
 २४- राफ़ेह - कुन्द करनेवाला
 २५- अलमुहल्ल - उज्ज्वल देने वाला
 २६- मलमुहिल - ज़िल्लत देनेवाला
 २७- अस्समीह - सब कुछ सुननेवाला
 २८- बसीर - सब कुछ देखने वाला
 २९- अलक़म्म - हाकिम मुतलक (पूर्ण)
 ३०- अलक़दल - सर-ए-तापा इंसान, सम्पूर्ण न्याय
 ३१- लतीफ - सर-ए-तापा लुत्फ़- को- कर्म
 ३२- कुबीर - आगाह व बाख़्श्वर
 ३३- अहीम - बहुत बड़ा बुद्धिमान
 ३४- अहीम - बहुत ही बुद्धिमान
 ३५- गफ़ूर - दुरुह से दूर करनेवाला
 ३६- अलमूर - कदुदान
 ३७- अलक़ली - बहुत बरतार व कुन्द अथवा महान्
 ३८- कबीर - बहुत बड़ा
 ३९- हफ़ीह - सबका निगलवान
 ४०- अलमुहल्ल - स्वास्थ्यदाता
 ४१- लतीब - सबके लिए काफी (पर्याप्त)
 ४२- क़लील - कुन्द मरतबत

- ४३- करीम - बहुत करम करनेवाला
- ४४- करकीब - बड़ा निगलवान
- ४५- मुरीब - दुआ कुल्ल (स्वीकार) करनेवाला
- ४६- बासेब - गुंवाइस वाला
- ४७- अलहीम - बात की तह तक पहुंचने वाला या वस्तु की वास्तविकता जानने वाला
- ४८- बद्दू बद्द- बहुत मुत्तूक्त करनेवाला
- ४९- मज़ीद - बहुत मुर्दा
- ५०- अलबाइस - मुर्दे फिलाने (पुनर्जीवित) करनेवाला
- ५१- अलसहीद - लाज़िर - जो- नाज़िर
- ५२- हज़फ़ - बरक़
- ५३- अलबलील - बड़ा ही कारसाब
- ५४- अलक़वी- कुछत का सरचापा
- ५५- मतीन - शदीद, कुछत वाला, अत्यधिक शक्तिवाला
- ५६- अलबली- लिमायती, दोस्त
- ५७- हलीद - ताअरीफ़ के योग्य
- ५८- अलमुल्ली- दाबरा-ए-शुमार में घेरे रखने वाला
- ५९- मलमुज़दी - पकड़ी बोर पैरा करनेवाला
- ६०- अलमुद्द - दोबारा पैदा करनेवाला
- ६१- अलमुही - जीवित रखने वाला
- ६२- अलमुमीत - मौत देनेवाला
- ६३- अलहबी - दाएन (सदेव) शिन्दा रखनेवाला
- ६४- क्यूम - सबको धामने वाला
- ६५- बाज़िद - हर चीज़ पालने वाला
- ६६- माजिद - बुज़ुर्ग और बड़ाईवाला

- ६७- कठवाहिरुल बल - रक, यकता
 ६८- समद - बेनियाव (निरिबन्त)
 ६९- कादिर - निरफ़्त वाता, कुदरत वाता
 ७०- मुक्तदिर - पूरी कुदरत वाता
 ७१- मुक्तदिन - जाने बढ़ाने वाता
 ७२- कलमुबदिस्तर - पीछे हटानेवाता
 ७३- कलवल्क - पल्ला
 ७४- कलवाहिर - सबके बाह्य
 ७५- कलवाहिर - बाह्यकारा; प्रकट
 ७६- कलवातिन - पिन्कां, पोशीदा, गुप्त
 ७७- वाली -
 ७८- मुक्तवाली - सबसे कुन्द व बरतार
 ७९- कलवार - बेहतर सुलूक करने वाता
 ८०- कलव्वाव - बहुत सीधे तांवा स्वीकार करने वाता
 ८१- मुन्ताकिम - बदला देने में सामर्थ्य
 ८२- कलवफू - बहुत दरगुजर करनेवाता
 ८३- रऊफ - मेहरबान
 ८४- मातिकुल्मुल्क - कारनाम का सोलह जाने वालिक, वृष्टि का पूर्ण स्वामी
 ८५- कुलकलाउकलकराम - कलाउ व करम वाता
 ८६- मुक्तसित - वाकिद व मुंसिफ, न्याय प्रिय
 ८७- जोमेव - (बिखरे हुएों को) यकता करनेवाता
 ८८- बे गनी - बेनियाव
 ८९- मुनी - बेनियाकार
 ९०- कलमानेक - रोक देने की ताकत रखनेवाता
 ९१- कलवार - मुक्तान पढ़ाने की कुदरत रखनेवाता
 ९२- कलवाफ़ेक - नफ़ाव पढ़ाने की कुदरत रखनेवाता

- ६३- जन्मूर - गुरू-साराणा, सम्पूर्ण ज्योति
 ६४- हादी- सही मार्ग दृष्टा
 ६५- बादीज - नमूने के बिना आविष्कार करनेवाला
 ६६- कलवाकी - क्लेश क्लेश रहनेवाला
 ६७- कलवारिह - सबके बाद उपस्थित रहनेवाला
 ६८- बरहीद - अच्छाई और नेकी पसन्द करनेवाला
 ६९- जस्सुबूर- बरदाश्त (सहन) करनेवाला

उपर्युक्त सभी नाम अरबी भाषा में कुरआन शरीफ में पाये हैं। परमेश्वर के लिए एक शब्द 'हुदा' भी अत्यधिक प्रचलित है किन्तु यह शब्द कुरआन शरीफ में नहीं है क्योंकि यह फ़ारसी शब्द है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने कुरआन शरीफ में वर्णित उपर्युक्त परमेश्वर ६९ नामों के रत्ने हुए भी हिन्दू शब्दावली के नामों का प्रयोग कदाचित् इस्तीस्न किया है कि उनका मूल उद्देश्य था इस्लाम से उन लोगों को अलग या परिचित कराना, जो इसके बारे में बिल्कुल भी न जानते थे। इसलिए उन्होंने हिन्दुओं में परमेश्वर के लिए प्रचलित शब्दों के साथ ही इस्लामी शब्दों का प्रयोग भी किया है। हालांकि कुरआन शरीफ में प्रयुक्त परमेश्वर के सभी नाम सार्थक तथा कोई न कोई विशिष्टता लिए हुए हैं। किन्तु जायसी ने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उपर्युक्त नामों का प्रयोग न करते हुए हिन्दू जनता में प्रचलित एवं सम्मानित शब्दों का प्रयोग करके एक प्रकार से दोनों धर्मों में एकीकरण का प्रयास किया है। प्रत्यक्ष है कि चिर-प्रचलित शब्दों के सम्मिलित नवीन शब्द जनसाधारण के लिए एक प्रकार से समझने में क्लिष्ट होते और दूसरे जायसी ने सुझाते हैं कि इस्लाम के कट्टर स्वभाव को नहीं अपनाया क्योंकि जो व्यक्ति धर्म प्रचारक के रूप में अपने धर्म को फैलाने का प्रयास करता है उसकी समस्या बड़ी जटिल होती है, क्योंकि किसी अन्य धर्म में विश्वास

रहने वाले व्यक्ति को एकदम नये धर्म तथा उसकी साधना की ओर आकर्षित करते हुए उसमें आसक्त करना कोई आसान कार्य नहीं है। इसलिए प्रचारक को कटुता का त्याग करते हुए उदार होना पड़ता है। जायसी ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया है।

उन्होंने परमेश्वर के कर्ता, करतार, विधि और लेखार नाम उसके सृष्टा स्वस्व को स्थापित करने के लिए प्रयुक्त किए हैं। ठाकुर, साहब और गोसाहं नाम परमात्मा के 'पालयिता' स्वस्व रहे हैं। फिड, कान्त आदि शब्द प्रेमाशी संतों के परमात्मा के प्रति रहने वाले के परिचायक हैं। सूफी परम्परा के अनुसार परमात्मा को कान्त या फिड नहीं कान्ता या प्रियतमा माना जाता है किन्तु प्रेम साधना की एक विशेष अवस्था तक पहुँच कर साधक न तो नर रह जाता है और न नारी। ऐसी स्थिति में वह किसी भी नाम से आराध्य को संबोधित कर सकता है।

शून्य और कल -

जायसी ने परमेश्वर के समस्त नाम तो जड़-केतन आह की अपेक्षा से रखे हैं, किन्तु परमात्मा तो देश-काल निरपेक्ष है। जब कुछ भी नहीं था तब परमात्मा था। मन बाणी से परे अनिर्वचनीय परमात्मा का बोध जायसी सज्जानी सिद्धों के 'शून्य' शब्द और नाथपंथी उपाधियों के 'कल' शब्द द्वारा कराते हैं-

हुता तो सुन्नम सुन्न, नांव ठांव ना सुर सव ।

तहां पाप नहि पुन्न, मुहम्मद आपुहि आपु महं ॥^१

तथा

बापु बहुत पछि कृत्तु बली । नांव न ठांव न मूरति तहाँ ॥
 बहुत जेठ सबद नहि भांती । सूरुब बांद देवत नहि राती ॥
 आतर घुर नहि बोल आरार । लख कथा का कहों विचारार ॥^१

अतरावट की कुल ४७६ पंक्तियों में से लगभग २५ पंक्तियों में जायसी ने "सुन्य" की मालिमा का गान किया है ।

अतरावट में परमात्मा की म हथा तथा फाम्बर मुहम्मद की प्रशंसा के अतिरिक्त जायसी ने जलद, जाल की दृष्टि का कारण सर्वप्रथम रचना नूर-ए-मुहम्मदी, अठारह सल्लु बोनियां, पंचभूत द्वारा वाक्य की उत्पत्ति, पिंड में ब्रह्माण्ड, साधना, साधना में बाधक इच्छाईस इपी ज्ञान, मन की चंचलता, मिता-हार, वासन, शक्ति बालन, जप, ध्यान, अंकार, वस्त्रभाव का लोप, प्रेम, गुरु, शिष्य आदि सभीक को समाहित करने का सफल प्रयास किया है ।

संदोष में अतरावट में जायसी ने अपनी साधनात्मक अनुभूतियों एवं तत्संबंधी सिद्धान्तों का निचोड़ रख दिया है। इसके सिद्धान्त प्रायः सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक हैं । परमिमा भाव पदमावत और अतरावट दोनों का ही केन्द्रीय साधनात्मक तत्त्व है, किन्तु जहाँ पदमावत का रत्नसेन उक्त भाव को केवल एक बार छूँकर रह जाता है, वहाँ अतरावट का कवि इस भाव में विशेष रूप से प्रतिष्ठित-सा ज्ञात होता है। उसकी अपूर्व उदारता -अनुभूति कीव गंभीरता, साधना सम्बन्धी उसके दृष्टिकोण की विशिष्टता आदि इसके प्रमाण हैं । अतरावट की भाषा अवधी है और यह ग्रन्थ पदमावत की अपेक्षा सरल एवं सुबोध है और इसके रूपकों में समत्कार प्रियता है। निस्संदेह अतरावट आध्यात्मिक विचारों की सुन्दर रचना है ।

सबसे बड़ी बात यह है कि अतरावट में जायसी ने उदारतापूर्वक इस्लामी

भावनाओं के साथ भावीय हिन्दू भावनाओं के सामंजस्य का सफल प्रयत्न किया है-

मातृ के रक्त पिता के हिन्दू । अपने दुनों तुरुक को हिन्दू ॥^१

तथा

विन्द सन्सति उपराना, भांतिन्द भांति कुहीन ।

हिन्दू तुरुक दुनों भो, अपने अपने दीन ॥

कहरानामा

मलिक मुहम्मद जायसी की प्रसृत कृति महरा बाइसी के नाम से भी प्रकाशित हो चुकी है । हा० माताप्रसाद गुप्त नाम के ज्ञात में इसके बाइसे श्रव्यों के कारण ही इसे महरा बाइसी नाम दिया था । अब तक इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हो चुकी हैं । इन प्रतियों में इस काव्य कृति का नाम कहरानामा दिया गया है। इस काव्य में २५ श्रन्द हैं। प्रत्येक श्रन्द में १४ पंक्तियां हैं । यह कृति मूलतः महरा-महरा माध्यम को गृहीत करके लिखा गया अन्योक्तिपरक एक काव्य है ।

रचना काल-

इस काव्य में भी जायसी ने इसका सनाकाल प्रस्तुत नहीं किया है । जायसी ने इस रचना में अन्योक्ति और समासोक्ति जटिकारों के प्रयोग के साथ ही प्रेम-यथ की विशेषताओं का भी उल्लेख किया है-

१- जायसी ग्रंथावली, जलरावट , पृ० ३१३

२- -वही-

पृ० ३०८

जप-तप, बरतष पाट ओं तीरथ, संभ्या करि सब डांढा रे ।

भयो न पल कहु आँखिन देखा, अब इसके मन गाढ़ा रे ॥

जायसी की उपर्युक्त (कहरानामा) संज्ञितियों से ऐसा ही बोधित होता है कि उनका 'कहरानामा' प्रेम-पथ का साधक बन जाने के बाद ही लिखा गया है। अतः इस रचना में जायसी ने प्रेम पथ के साधक की अनुभूत कदा को प्रकट किया है। प्रेम की यह गहरी अनुभूति न तो उनके आसिरी क्लाम में उपलब्ध होती है और न ही इसके दर्शन चित्ररेखा में होते हैं। अतः निश्चय ही जायसी की प्रस्तुत रचना मसकहानामा, आसिरी क्लाम और चित्ररेखा के बाद की है। अतः कहरानामा की रचना ६४२ हिमरी के आस-पास ही हुई होगी ।

वर्णन-विषय -

कहरानामा में निर्मिता प्रेम का निरूपण किया गया है। जायसी के अनुसार यह 'संसार एक सागर' के समान है जिसमें 'धर्म' की नाव 'पड़ी हुई' है और मल्लाह अथवा 'केपट' वही एक 'ईश्वर' है । इस संसार सागर में प्रवेश करने के लिए बहुत सावधानी बरतना चाहिए क्योंकि बिना सोच-विचार किये और बिना सावधानी के जो लोग इस संसार इपी सागर में प्रविष्ट होते हैं, उनमें से अधिकतर धम-हार कर बैठ जाते हैं। कुछ लोग तेरते-तेरते बीच में ही हल जाते हैं, कुछ अपने उदम वोर परिव्रम से एक-आध सीप (गुणा) प्राप्त कर लेते हैं जिससे उनका कुछ भी कल्याण नहीं होता और कुछ लोग बहुत कुछ सोजने के पश्चात् भी कुछ प्राप्त नहीं कर पाते हैं और उन्हें सारी रात लोटना पड़ता है। कुछ लोग पश्चात्ताप करते रह जाते हैं ।

अतः इस संसार इपी सागर को पार करने के लिए तथा इसमें से कुछ बहुमूल्य रत्नादि प्राप्त करने के हेतु धर्म इपी नाव की आवश्यकता होती है और जो कोई धर्म की नाव पर सवार हो जाता है वही पार पहुँच जाता है और बहुत कुछ प्राप्त कर लेता है । नाव जब एक बार जागे की ओर बढ़ जाती है तो लाल चीलने-

फुकारने पर भी केवल नाव का बापिस नहीं होता। ज्ञा: रौने, विहाय करने से कुछ नहीं होता। इस संसार के सारे रिश्ते-नाते भूटे हैं, प्रत्येक व्यक्ति को वैयक्तिक साधना करनी आवश्यक है। जो ऐसा नहीं करता वह केवल पकताता ही है किन्तु परमात्माप करने से कुछ नहीं होता। स य रत्ने मनुष्य को जानी, दानी रूप धारणा करते हुए भी अभी नाव पर चढ़ जाना चाहिए, क्योंकि धार्मात्माओं को ही केवल अभी ईश्वर पार उतारता है। बिना केवल के सागर पार करना सम्भव है।

जो लोग योग-साधना द्वारा मन की चंचलता को बत में कर लेते हैं, विधाय-वासनाओं का दमन करते हैं और ईश्वर के प्रेम में निष्णात रहते हैं- ऐसे ईश्वर-प्रेमी जीवों की आत्मा का विवाह परमात्मा से ठीक उसी प्रकार हो जाता है जैसे फानूस में महरा और महरा का विवाह होता है। दुर्लभ अभी आत्मा इस नावके को छोड़कर पति अभी परमात्मा के साथ ससुराल चली जाती जहाँ जाकर सदैव प्रिय के साथ आनन्दवर्धन रहती है।

ईश्वर सर्वव्यापी है, जब आत्मा पूर्णरूपेण परमात्मा में लीन हो जाती है तब ही उसे ईश्वर के म हाव गुणों से परिचय प्राप्त होता है।

ईश्वर जो अपना दास या सेवक समझता है उसे दरिद्र या भित्तारी बना देता है, क्योंकि यहाँ ज्ञानी, पंडित जगदा कवि तो दुःख-दर्द में ही जीवन व्यतीत करते हैं, जबकि मूर्ख एवं अज्ञानी राजाओं जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। वायसी के अनुसार इस संसार की क्लिष्टाणता दर्शनीय है- चन्दन के समीप सर्प रहते हैं, फूलों के साथ कीड़े होते हैं, शहद के पास मधुमक्खी रहती है और गृह के समीप चींटे रहते हैं। इसी से ईश्वर का अपने जीवों पर क्लिष्टाण प्रेम प्रकट होता है कि प्रतिभावान् व्यक्ति या वज्जजीवन संवेदनागुस्त रहता है और महागुरु शेरवर्ष-शाही जीवन व्यतीत करता है किन्तु यह वास्तविक जीवन नहीं है, वास्तविक

जीवन तो हरिवर्णीय जीवन है। ज्ञाः जो लोग अपना सर्वस्व हरिवर के प्रति समर्पित कर देते हैं उन्हें हरिवर इस संसार की सागर के वा भक्तानगर से पार उतार फेंका है, शेष वहीं हूब जाते हैं।

वर्ण्य विनय पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि जायसी ने इस गुण की रचना में अध्यात्मवाद को महत्त्व दिया है। उनके अनुसार इस भव सागर को पार कराने वाला सम्मान सजारा हरिवर ही है ज्ञाः बीधात्मा को सदा ही परमात्मा के सान्निध्य एवं प्राप्ति की चेष्टा करते रहना चाहिये। जायसी ने कहरानामा को दो प्रमुख अंशों में विभक्त किया है। पहले भाग के प्रारम्भिक सात इन्द्रों ने उन्होंने कहर के साप्ताहिक कार्यों का विवरण जिनका उद्देश्य अन्यायनिवारण है। दूसरे भाग में विवाहोपरान्त प्रियतम के घर पहुँच कर प्रियतमा द्वारा प्रेम एवं सेवा से प्रियतम में समाप्ति हो जाने का उल्लेख है। जायसी ने इस रचना में प्रेमपथ की विशेषताओं को बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है।

प्रेम-पथ पर चलने के लिए इन्द्रियों को वश में करना अत्यन्त आवश्यक है -

प्रेमराज जो करहु पिछाई, साथी पाँच संभारेहु रे ।

बरकत रहेहु जोइ बनि करकत, गरिडह करि किष्ककरेहु रे ॥^१

जो व्यक्ति अपने जीवन में साधना कर लेता है, उसे प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है-

कहे महसंद सोई सुहागिन जो ऐसे पियरावे रे ।

नेहर केरि होई गुनवन्ती, तो सगुरे सुख पावे रे ॥^१

प्रियतम को पाने के लिए इतभाव को छू करके, बहकार को नष्ट करना होता है क्योंकि फूटना के पश्चात् ही कड़ा की प्राप्ति होती है-

झार कीन्ह तन, धू कीन्ह मन दिन-दिन लागेउ बाढ़े रे ॥^२

तथा-

अहं मज्जंद, तजहु इतवद, जो एकेहु चित बांधा रे ।

सोंति जो दोसरि पाउ बोंसरि, अस रहु पिय के रांधा रे ॥^३

अतः पूर्णाङ्गेण समर्पणे करते हुए उसी प्रियतम ने छीन लो जाना ही जीवन का उध्व है-

सेवा करे, रहे कर जोरे, प्रीतिन फल रस बासी रे ।

छरत रहे जो, बह्नु उहं सो, जापुहि कहु नहि जाने रे ।

तो सुख पावे, तो पियरावे, सदा भोग रस नाने रे ॥^४

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बायसी ने कहरनामा में कर्काण्ड के बाह्य बाहन्वर को त्याग कर प्रेम द्वारा ईश्वर की प्राप्ति पर कूट दिया है । प्रेम पथ ने अनेक कठिनाइयाँ जाती हैं, उनका वीरतापूर्वक सामना करते हुए ही प्रियतम तपी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है । बायसी के कहरनामा के साक्षर को प्रियतम (परमात्मा) से साक्षात्कार के लिए क्लृप्त (प्रय) तक प्रतीक्षा करनी होगी ।

१- कहरनामा, ८८

२- -वही- ८९

३- -वही- ९६

४- -वही- ९७

उपर्युक्त सभी बातों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कहरानामा पर स्पष्टतः इस्लामी साधना का प्रभाव है। जायसी ने इस ग्रन्थ में पद्माक्ष की भाँति सुफ़ी साधना को अधिक महत्त्व नहीं दिया है। जायसी ने इस ग्रन्थ में सिद्धान्त ज्ञान की अपेक्षा साधनात्मक संकेत ही अधिक प्रस्तुत किए हैं जो पूर्णतः इस्लाम धर्म से सम्बन्धित हैं।

कहरानामा में कवि ने आत्मा या ऊह को दुल्हन माना है और परमात्मा या हुदा को प्रियतम अथवा दूल्हा। यह बात इस्लाम धर्म के एकदम विरुद्ध बैठती है क्योंकि हुदा की ज्ञात इन सब बातों से परे है, इस प्रकार की कल्पना मात्र भी एक सच्चे मुसलमान के लिए 'कुफ़र' है। किन्तु जायसी ने दुल्हन और दूल्हा वाले प्रश्न में जो बात बताने की चेष्टा की है वह कुछ इस प्रकार है कि दुल्हन की शादी होने के बाद विदाई एक प्रकार से इस संसार से विदाई है और जायसी ने एक स्थान पर कहा है कि विदाई के पश्चात् दुल्हन को एक अंधेरी कोठरी (क़ुब) में ले जाकर रखा गया। इस अंधेरी कोठरी के द्वार पर दो व्यक्ति (मुन्किर और नकीर) जाते हैं और दुल्हन से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते हैं।

यह दो व्यक्ति, इस्लामी विश्वास के अनुसार और कोई नहीं मुन्किर और नकीर नामक दो फ़रिश्ते हैं जो व्यक्ति के मरने के बाद क़ब्र में जाकर उससे 'सवाल-जवाब' (लेना-बोला) करते हैं। जायसी के कहरानामा की दुल्हन के जवाब में 'ला इलाहा इल्लल्लाह - मुहम्मदुर्रसूल्लाह' की श्रुति स्पष्ट परिचित होती है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण को ध्यान में रखते हुए हम कहते हैं कि प्रस्तुत ग्रन्थ कहरानामा में जहाँ प्रेम-पंथ की प्रवृत्ति, गुरु की महत्ता, परमात्मा से दाम्पत्य सम्बन्ध, योग साधना की आवश्यकता आदि का उल्लेख है। वहाँ उस पर सुफ़ी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। किन्तु परमात्मा का दारुण रूप, उसके सत्त्व

भयभीत रहने की आवश्यकता, क्यामत तक साक्षात्कार के लिए प्रतीक्षा करने की बात, दुर्लभ इषी आत्मा को जम्हेरी कोठरी (क़ुब) में रखना और उस मुन्किर-नकीर द्वारा सवाल-जो-जवाब आदि के प्रश्नों से यह बात स्पष्ट होती है कि जायसी ने इस ग़ुन्थ की रचना मूलतः इस्लामी विचारधारा के प्रचार के लिए ही की थी। उन्होंने अपने इस ग़ुन्थ द्वारा अन्य धर्मों के अनुयायियों को इस्लामी विचारधारा से धर्मांतरित कराने का एक सफल प्रयास किया है।

चित्रेला -

मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'चित्रेला' नामक एक झोटी सी सुन्दर प्रेम-कहानी है। जायसी का यह प्रेम काव्य मूलतः लोक कथा पर आधारित है। इसका रचनाकाल संभवतः ६३८-३९ हिजरी हो सकता है क्योंकि यह पदमावत से पूर्व की रचना है। स्वयं जायसी ने इसके समय के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया है।

कथासार-

चित्रेला में ४६ दोहे और १०१ अर्थांशियाँ हैं। कवि ने ग़ुन्थ के प्रारम्भ में ईश्वर (बल्लाह) की वन्दना की है। उसी ने सबका निर्माण किया है, केवल ज़मी स्थिर है, शेष सब अस्थिर। अतः उससे प्राणी को प्रेम करना चाहिए, नहीं तो बाद में उसे पछताना पड़ेगा। उसी 'क़तार' ने इंसान को सर्वोपरि कथथा अज़रफ़-उल-मज़ल्लात बनाया है और उसी क़तार पैगम्बर मुहम्मद की भी रचना की है, मुहम्मद साहब सबके क़ुवा हैं। उनके नाम का जाप करने से बहिश्त (स्वर्ग) की प्राप्ति होना संभव है।

फिर जायसी मुहम्मद साहब के चार ज़ेम्त सहाबियों अथवा प्रथम चार सलीमाओं, हज़रत अबूबक़्र सिद्दीक़, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान गुनी और हज़रत अली-

के निर्माण की वचा की है और उन चारों के पारस्परिक स्नेह एवं प्रेम व सौहार्द की प्रशंसा की है। तत्पश्चात् जायसी ने अपनी पीर संयद अक्षरफ़्त बहांगीर और अपने गुरु गुरु गुरु गुरु गुरु की स्तुति की है।

चित्ररेखा के श्रेष्ठ तीन-चाँथाई भाग में जायसी ने निम्न कहानी वर्णित की है-

चन्द्रनगर के राजा चन्द्रभानु थे। उनकी पटरानी इपरेखा में एक अत्यन्त सुन्दर कन्या चित्ररेखा को जन्म दिया। राक्षसारी चित्ररेखा में सभी विशेषताएँ थीं। चित्ररेखा का विवाह ब्राह्मणों द्वारा सिंहद के राजा सिंधदेव के कुंवड़े पुत्र के साथ निश्चित कर दिया गया।

उधर कन्नौज के राजा कल्याणसिंह का पुत्र प्रीतमसिंह कुँवर यह जानकर कि उसके जीवन के केवल ढाई दिन शेष रह गए हैं, राज-पाट छोड़कर केवल २० वर्ष की अवस्था में ही अन्तिम गति लेने के लिए काशी की ओर चले पड़ा। मार्ग में वह एक वाग में सो गया। सभी कुंवड़े राजकुमार की बारात लिए उसका पिता राजा सिंधदेव उसी वाग में रुका। प्रीतम को सोया देखकर उसकी मुलाक़ाति से वह समझ गया कि यह भी कोई राजकुमार है, यह उस के रूप-सौन्दर्य से प्रभावित हुआ और उसे पंजा भरने लगा। उसके जानने पर राजा ने उसे एक रात के लिए दूल्हा बनने के लिए तैयार कर लिया। रात में प्रीतम सिंह कुँवर चित्ररेखा के साथ सोया, किन्तु उन दोनों में पति-पत्नी सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ। सोती चित्ररेखा के आँच पर अपना कुतान्त लिखकर वह काशी चला गया। चित्ररेखा कुतान्त पढ़कर चिता तैयार कराकर सती होने के लिए तैयारी करती है, उधर प्रीतम अपनी चिता सजाकर लूट वान-पुण्य करता है, सभी व्यास की उसे चिरंजीव कहकर आशीर्वाद देते हैं और उसकी वायु बढ़कर आगे चलती है। फिर वह तीव्र गति से चित्ररेखा से मिलने चल पड़ता है।

इधर चित्ररेखा बिता पर बंटी होती है, जान लगने ही वाली होती है तभी प्रीतमसिंह कुंवर जो जाता देखकर वह प्रसन्नतापूर्वक बिता होकर जा जाती है और दोनों का मिलन हो जाता है ।

संदोष में यही चित्ररेखा की कथा है ।

प्रस्तुत रचना में जायसी ने लोककथा को आधार माना है, उन्होंने इस कहानी को जसनवी शैली में पद्यबद्ध किया है । इस कथा में लोक आस्था, लोक-विश्वास, लोक आस्था आदि उपयुक्त स्थलों पर सुस्पष्टतया उद्घात होते हैं ।

वास्तव में प्रेम की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए ही "चित्ररेखा" की रचना की गई है किन्तु कवि ने कथा के बीच में कहीं-कहीं जाध्यात्मिक संकेत भी दिये हैं। जायसी ने इस रचना में अनेक स्थलों पर समासोक्ति पद्धति का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। जायसी ने चित्ररेखा में प्रेम को मूल तत्त्व माना है । इस तत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने दाम्पत्य प्रेम का माध्यम गृहीत किया है । प्रियतम और प्रियतमा के प्रतीकों के आधार पर कवि ने इस लोक को पायका और उस लोक को समुराठ कहा है-

"भूति लेहु नहर बित ताहें । फिरकत भू भूछन देहें जाहु ।
दे के समुरे रातिहें तहाँ । नहर गवन न पाइव बहाँ ॥"

"चित्ररेखा" के प्रारंभ में उद्देश-स्तुति, फाम्बर स्तुति, उनके मित्रों की प्रशंसा, पीर और गुरू की स्तुति कवि ने की है, किन्तु जाने की कथा में न तो इस्लामी सिद्धान्तों की झलक है, न सुफ़ी साधना, के ही दर्शन होते हैं । केवल कथा के अन्त में "जुगत" (दान) के महत्त्व को कवि ने प्रतिपादित किया है। जायसी इस ग्रन्थ की रचना सुफ़ी साधना के अनुकूल नहीं की है। उन्होंने केवल

एक सीधी सादी कहानी कही है ।

जायसी इस्लाम के प्रचारक -

मलिक मुहम्मद जायसी की अधिकतर रचनाएं इस्लामी सिद्धान्तों और तत्त्वों पर आधारित हैं । इससे यह ज्ञात होता है कि जायसी का उद्देश्य वास्तव में इस्लाम का प्रचार करना था । किन्तु यह मानना कि वे अन्य धर्मों के विरुद्ध थे, उनके प्रति अन्याय होगा । उन्होंने स्वतंत्र रूप में भारतीय साधना तथा भारतीय हिन्दू देवी-देवताओं को अपने ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है ।

वास्तव में जायसी भी तुलसी की भांति समन्वयवादी थे, किन्तु वे तुलसी से भी जागे बढ़ गए हैं । उन्होंने सिद्धान्त रूप में दो परस्पर विरोधी धर्मों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है ।

मंझन

सुफ़ी कवि मंझन काफ़ी समय तक बुनार में रहे थे और वहीं उन्होंने अपने गुरु शेख़ मुहम्मद ग़ास से दीक्षा ली थी । उनका पूरा नाम मीर संयद मंझन था । वे शेरशाह के उपाधिकारी सलीम शाह से मंझन का निकट सम्बन्ध था । यह भी किंवदन्ती है कि १८६६ हिररी में मालवा में सम्राट अकबर ने मंझन से भेंट की थी । कुछ विद्वानों का कथन है कि ८० वर्ष की आयु में, १००१ हिररी क्यवा मर १५६३ में मंझन की मृत्यु हुई थी ।

मंझन की रचना 'मधुनालिका' है । इस रचना में मंझन ने अपने गुरु शेख़ मुहम्मद ग़ास का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है-

सेव मुहम्मद पीरु अपारा । सात समुद्र नाउ कंडहारा ॥
 बाता ओ गुन ना एक गुंस मुहम्मद पीर ।
 दुल्लु मिस्ल सापुल ना गरुन गरिष्ट गंभीर ॥
 नव पारस के पासत भीन हेम जोड नाड ।
 तिमि में सेव मुहम्मद देहे-विनु साख सिधि पाई ॥^१

“मधुनालती” -

“मधुनालती” की दो हस्तलिखित प्रतियों में इसका रचनाकाल निम्न रूप में दिया गया है-

संकेत ना से बावन बर भेऊ । सती पुरूस कछि परिहरि गेऊ ॥
 ताँ हम किउ उपवी अभिज्ञाता । क्या एक बाधन रसभासा ॥

उपर्युक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि मधुनालती की रचना तिथि ६५२ खिर्री अर्थात् सन् १५४५ ई० में ।

बंभन ने शाह-ए-बका के रूप में सलीम शाह का उल्लेख किया है जोकि शेरशाह सूरी की मृत्यु के उपरान्त सन् १५४५ ई० में शासनाब्द हुआ था । बंभन ने इस सलीमशाह की अत्यधिक प्रशंसा की है। इससे भी उपर्युक्त तिथि ६५२ खिर्री ही इस रचना की सही तिथि प्रतीत होती है ।

कथासार-

बंभन की मधुनालती से पूर्व मधुनालती से सम्बन्धित अनेक रचनाएं हो चुकी थीं, जिनमें कमुधुदास नायक की कृति “मधुनालती” विशेष रूप से उल्लेखनीय

है । बलिक मुहम्मद जायसी ने अपने महाकाव्य में मधुनालती की कथा का निम्न संदर्भों में उल्लेख किया है-

साधा कुँवर मनोहर बाग । मधुनालती कह कीन्ह कियोगू ॥

सुकुनी कवि उस्मान ने भी अपनी रचना चित्रावली में मधुनालती की कथा को वर्णित किया है-

मधुनालती होई रूप दिखावा । प्रेम मनोहर होई तहाँ जावा ॥

मदन की रचना 'मधुनालती' की कथा संदर्भ में इस प्रकार है-

कनसर के राजा सुरजभान के पुत्र का नाम मनोहर था जिसका जन्म काफ़ी भिन्नता के बाद हुआ था । मनोहर की रुचि नृत्य संगीत में अधिक थी। एक दिन सोये हुए मनोहर को अप्सराएं उड़ा ले गईं और उसके फलंग को महारस नगर के राजा विक्रमाय की सुन्दरी राक़्खारी मधुनालती की चित्रवारी में रख जायी ।

जब मनोहर और मधुनालती की निद्रा भंग हुई तो दोनों ने एक-दूसरे को देखा और तत्काल ही वे एक-दूसरे पर मोहित हो गए । एक दूसरे का परिचय हुआ, प्रेम भरी बातें हुईं और वे एक साथ सुगुप्ति अवस्था में बिछीन हो गए । अप्सराएं एक बार फिर मनोहर को फलंग सहित उड़ा ले गईं और उसके लयनकड़ा में ले जाकर उसे फलंग सहित रख दिया । प्रातःकाल जागने पर मधुनालती को न पाकर मनोहर व्याकुल हो उठा, उधर मधुनालती भी उसके विरह से व्याकुल हो उठी। मनोहर ने जोगी का वेश धारण किया और मधुनालती को सोबने निकल पड़ा । मार्ग में उनके बाधारे भोजते हुए उसे चित्रसेन की बेटी रमा बीरहु वन में मिली, जोकि मधुनालती की सखी भी थी और जिसे एक राक्षस उठा कर लाया था । मनोहर ने राक्षस को मार दिया और वे दोनों वहाँ से चित्राम नगर चले गए । प्रेमा ने

द्वितीया के दिन मनोहर और मधुमालती का मिलन करा दिया, इससे मधुमालती की माँ को बहुत क्रोध आया और मनोहर को अनेक तथा मधुमालती को अपने घर भिजवा दिया।

मनोहर एक बार फिर मधुमालती की सेवा में निकल पड़ा। उधर मधुमालती को उसकी माँ ने बड़े होकर बिड़िया बना दिया और वह मनोहर की कलाश में उड़ गई। राजकुमार ताराचन्द ने उस बिड़िया को पकड़कर पिंजड़े में बंद कर लिया। बिड़िया ने अपने कथाकुम को राजकुमार को सुनाया और राजकुमार ने उस की सहायता का प्रण लिया। राजकुमार के कहने पर रानी ने मंत्र पढ़कर बिड़िया को पुनः मधुमालती बना दिया। एक संदेशवाक्य को प्रेता के यहाँ भेजा गया वहाँ उसी समय मनोहर भी पहुँचा और उसी रात वे दोनों ताराचन्द के पास पहुँचे। मनोहर और मधुमालती का विवाह हो गया और साथ ही प्रेता से ताराचन्द का विवाह हो गया।

मनोहर और मधुमालती अनेक आकर सुतपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

उपरोक्त कथासार को पढ़ने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मंभन ने अपने कथानक को तत्कालीन रूप से संयोजित किया है। मंभन ने यह रचना स्वयन्तः सुनाय ही की है जो उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। मंभन ने मधुमालती की कथा को भौतिक धरातल पर ही प्रस्तुत किया है। इस काव्य में कवि का मुख्य उद्देश्य प्रेम सावन्धी तत्त्वों का दिग्दर्शन है। इसके साथ ही मंभन का उद्देश्य जनजीवन में अपनी साधना का स्थान बनाना तथा लोकमत को अपनी ओर आकृष्ट करना था। भारतीय वातावरण एवं संस्कृति, भावों तथा परम्पराओं के सम्यक् निर्वह के द्वारा एक ओर तो कथानक स्वाभाविक बन पड़ा और दूसरी ओर कवि का उद्देश्य सिद्ध होकर, उनका काव्य जनजीवन का सजीव चित्र बन गया है।

जीवात्मा के परमात्मा के प्रति प्रेम को सुफुली कवियों ने कई प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया है। मंजन भी दार्शनिकता के साथ ही साथ इन प्रतीकों के द्वारा त्यागमय प्रेम के दर्शन अपने काव्य में कराते हैं।

मंजन के अनुसार जीवन के मोह का त्याग ही प्रेम के आवर्ध का स्वप्न है। मंजन ने अन्य सुफुली कवियों से प्रेरित होकर अपने नायक और नायिका का संयोग कराया है और उन्हें सुखपूर्वक जीने का मार्ग दिखाया है, जब अन्य सुफुली कवियों ने कथा के अन्त में नायक को मार दिया है और नायिका को ज्वाला द्वारा भस्म करा दिया है।

मंजन ने अपनी मधुनालती रचना के प्रारम्भ में ईश्वर, मुहम्मद साहब, चार लड़ीफ़ा, हाह-रख-वक्त, पीर, आश्रयदाता और तबद ब्रह्म का गुणगान किया है। तदनन्तर उन्होंने प्रेम और योग का स्पष्ट प्रतिपादन किया है। वास्तव में, मंजन की मधुनालती का जीवन-दर्शन प्रेममूलक है। अतः मंजन का नायक "परमेश्वर" के प्रेम में मग्न होकर प्रेम द्वारा परम सौन्दर्य की प्रतीक नायिका को प्राप्त करके जीवन की सम्पूर्ण क्लृप्ता एवं क्लृप्ताता को "परम प्रेम" की पावस धारा से धो डालता है।

मधुनालती में दर्शन -

मंजन ने "मधुनालती" काव्य में साध्य और साधक के मध्य एकत्व स्थापित करने का प्रयास किया है। तुदा (विधि) खल्क (सृष्टि) जीव और मुहम्मद वास्तव में एक ही हैं, इसी बात को मंजन अपने काव्य द्वारा सिद्ध करना चाहते हैं।

मंजन के अनुसार परम तत्त्व अनेक भावों में दृष्टिगोचर होता है, परमेश्वर एक रूप होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होता है -

एक अनेक भाउ परमेश । एक रूप काहें बहु भेता ।^१

वह परमेश्वर त्रिभुवन को आकृष्ट कर एक ज्योति (नूर) रूप में सर्वत्र है, उसकी ज्योति की भिन्न मूर्तियाँ हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं-

त्रिभुवन पुरि अपुरि के एक ज्योति सब ठाउँ ।
ज्योति ही जनकन मूरति मूरति जनकन नाऊँ ॥^१

मुहम्मद सात्वत और परम सत्त्व का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए संभन कहते हैं- गुप्त विधाता को सभी जानते हैं किन्तु उसके प्रकट रूप 'मुहम्मद' को कोई नहीं जानता -

करता गुप्तु सभे पहचाना । प्रकट मुहम्मद काहुं न जाना ॥^२

मुहम्मद मूल हैं और सारा संसार सात्वा है, वह शरीर हैं और सब जात उनकी परदाई हैं-

मूल मुहम्मद सब का सात्वा । विधि नाँ लात मटुक सिर रात्वा ॥^३

कोहि पटार दोसर कोई नाहीं । वह शरीर यह सभ परिदाई ॥^४

विधाता और मुहम्मद दोनों एक ही क्ला हैं, इन दोनों का भिन्न अर्थ में नहीं जानना चाहिये, विधाता मुहम्मद के विरह में प्रकट हुआ -

एक रूप क नाउँ मुहम्मद धरा । अर्थ न दूसर एकं करा ॥^५

सुनहु अब तेहि के बाता । परगट भा जेहि विरह विधाता ॥^६

१- मधुमालती ६,७

२- मधुमालती

३- -वही- ८,१

४- -वही- ८,२

५- -वही- ८,५

६- -वही- ७,१

इस प्रकार मंफन मुहम्मद साहब की महता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं, सृष्टि में मुहम्मद का नाम दीपक है, उनके लिए ही देव ने सृष्टि उत्पन्न की और प्रम की दुन्दुभी संसार में बब उठी। मुहम्मद का नाम त्रिभुवन का राजा है, उसी के लिए विधाता के मन में सृष्टि की वाद हुई-

उज्ज्वल जोति फ़ाट सम ठाउं । दीपक सिद्धि मुहम्मद नाउं ॥^१

पाउं मुहम्मद त्रिभुवन राज । जोहि ठा गि भूत सिद्धि करवाउ ॥^२

मंफन ने परमेश्वर, मुहम्मद और सृष्टि में जिस एकता की स्थापना की है, उसका स्रोत इस्लामी परम्परा में भी विद्यमान है। इस परम्परा का सनातन इस्लाम से सदैव संबंध रखा जाया है। मंसूर को इसी परम्परा का निवाह करते हुए अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी थी। किन्तु सफ़ी मुसलमान साधकों के एक वर्ग ने सदैव उक्त परम्परा को अपनाने की चेष्टा की। मंफन भी इसी परम्परा के अनुयायी थे। मंफन ने अपने काव्य में मंसूर उल्लाह की ओर उक्ति करते हुए कहा है, "अपना भेद किसी को न दो, दुःख में प्रम के फूल को गुंथा रखो, भेद देकर जल में मंसूर की भांति जल सली पर चढ़े ?"-

भेद न दीजिय आपन काहु । बोरिहु कहुं तति छे देह लाहु ।

बोरि हिय फेम के मूरि । को दे भेद जात चढ़े मूरि ॥

सुदो, मुहम्मद, मानव तथा सृष्टि में एकत्व का सम्बन्ध इन्होंने बखूबी ने स्थापित किया है। उसका गहरा प्रभाव भारत के सगरी सिलसिले के संतों और मंफन पर है।

१- मधुमालती ७।३

२- -बही- ७।५

३- -बही- २

उस्मान

उस्मान प्रसिद्ध मुगल शासक बहांगीर के सपकाळीन थे। वे पूर्वी उत्तरप्रदेश के गाजीपुर नगर के निवासी थे। उस्मान के पीर (गुरु) शाह निजामुद्दीन की शिष्य परम्परा के बाबा हाजी थे।

उस्मान ने १०२२ खिलजी कथाएँ सन् १६१३ ई० में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "चित्राकली" की रचना की थी। इस ग्रन्थ के आरम्भ में अन्य सुफ़ी कवियों की भांति उस्मान ने भी इश-स्तुति, पनाम्नार मुहम्मद साज, चारो इलीफ़ान्तों, हाह-र-बका शहशाह बहांगीर और शाह निजामुद्दीन एवं हाजी बाबा की प्रशंसा की है।

"चित्राकली" का कथानक -

उस्मान ने अपने ग्रन्थ चित्राकली में एक स्थान पर कहा है-

कथा एक मं छिय उपाई । कल्ल मीठ जों सुन्न सुहाई ॥

कहो बनाय वंस मोहि सूझा । बेहि ज्ञा सूझ सों तें बेझा ॥^१

कथाएँ इस कथा को मैंने अपने हृदय से उत्पन्न किया है, जो कल्ले समय मीठी बन पड़ती है और सुनते समय भी सुन्दर और मधुर आती है। इसे मैंने जैसा सूझ पड़ा है वैसे ही बनाया है और बिसे यह जैसी सूझ पड़ेगी वैसे ही वह इसे बूझ पायेगा।

"चित्राकली" की रचना सुफ़ी कवियों की प्रेम-गाथाओं की पद्धति पर ही हुई है। इस रचना की कहानी के तत्त्व ठोकाथाओं में उपलब्ध होते हैं।

चित्राकली की रचना सुफ़ी कवियों की प्रेम-गाथाओं की पद्धति पर ही हुई है। इस रचना की कहानी के तत्त्व लोकगाथाओं में उपलब्ध होते हैं।

उस्मान के ग्रन्थ चित्राकली का कथानक कल्पना प्रसूत है जोकि संक्षेप में निम्नलिखित है-

नेपाल के राजा धरणीधर का पुत्र सुजान एक जादूट से लौटते हुए मार्ग भूल गया और वह एक देव (दानव, ज़ेन) की पत्नी में सों गया। देव ने सुजान की रक्षा स्वीकार की और एक दिन वह अपने साथ सुजान को भी अपने ही राजकुमारी चित्राकली की धरमिाँठ का उत्सव दिखाने ले गया। वहाँ उसने सुजान को चित्राकली की चित्रसारी में ले जाकर लिटा दिया। चित्रसारी में चित्राकली के सुन्दर चित्र को देखकर सुजान उस पर मोहित हो गया। चित्राकली के चित्र के पास ही उसने अपना चित्र भी बना दिया। देव चित्रसारी से सुजान को उठाकर वापिस अपनी पत्नी में ले आया। जागने पर सुजान चित्राकली के लिए व्याकुल हो उठा और अपने साथी सुबुद्धि के परामर्श पर पत्नी में एक जन्म सत्र खोल दिया।

उधर चित्राकली अपनी चित्रसारी में राजकुमार सुजान का चित्र देखकर उस पर आसक्त हो गई और उसने अपने नपुंसक भूत्यों को योगियों के वेष में राजकुमार को खोजने भेजा। चित्राकली की माता ने एक कुटीर के अंदर पर सुजान का चित्र छुपा दिया। राजकुमारी ने क्रोध होकर कुटीर को निकास दिया। कुटीर ने प्रतिशोध की शपथ खाई। उधर राजकुमारी के योगियों में से एक ने सुजान को खोज लिया और चित्राकली और सुजान का एक शिव मंदिर में सादासकार हुआ। उसी रात कुटीर ने सुजान को जन्मा बनाकर एक गुफा में छोड़ दिया, वहाँ उसे एक ज्वार निगल लेता है किन्तु तीसरी सुजान की चिरह ज्वाला से धरा कर उसे उगल देता है। एक वनमानुष सुजान की दृष्टि ठीक कर लेता है किन्तु एक हाथी उसे फँस लेता और विशाल पक्षी उसे साथी सहित उड़ा ले जाता है। हाथी राजकुमार को छोड़

केता है और वह आकाश से समुद्र तट पर गिरता है। भ्रमण करते हुए सारंगद की राक्कुमारी से सुजान की भेंट हो जाती है, वह भी उस पर मोहित हो जाती है। उधर चित्रावली द्वारा प्रणित होगी तब राक्कुमार सुजान को एक बार फिर पाकर उसे एक स्थान पर बेटाकर राक्कुमारी को सूचना देने जाता है किन्तु बन्दी हो जाता है। विरह होने पर सुजान चित्रावली का नाम लेकर चीखने लगता है, यह ज्ञात कर राजा उसे मारने के लिए मतवाला हाथी दौड़ा देता है किन्तु राक्कुमार उसे मार देता है, फिर स्वयं राजा कल-कल सहित राक्कुमार पर आक्रमण कर देता है। इसी बीच जब राजा सुजान कुमार का चित्र देखकर यह जानता है कि इसी राक्कुमार ने आँखिलगढ़ के राजा को मारा था तो वह प्रसन्न होकर सुजान से चित्रावली का विवाह कर देता है। सुजान चित्रावली के साथ स्वदेश छोड़ता है और मार्ग में अपनी पछी पत्नी कंकठावती को भी साथ ले लेता है। मार्ग में कई बनेक बाधाओं और समस्याओं का सामना करते हुए अन्ततोगत्वा वह नेपाल पहुँचता है, उसके पाता-पिता प्रसन्न हो जाते हैं और वे उसका राज्याभिषेक कर देते हैं। सुजान अपनी रानियों चित्रावली और कंकठावती के साथ आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगता है।

उपर्युक्त कथासार को पढ़ने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चित्रावली की कथा लोककथा पर आधारित है और उस्मान ने इसके प्रस्तुत करने में कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है। कथा को उस्मान ने अत्यधिक रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। इस ह ना से कवि उस्मान के काव्य कौशल का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है— उस्मान का कथन है—

जादि कुता विधि नाथे लिता । अच्छ चारि पढ़े हा सिता ॥

देखत जात थला सब जाह । एक बचन पे क्जर राह ॥

बचन समान सुधा का नाहीं । बेहि पार कवि क्जर राहहीं ॥

मोहू चारु उठा पुनि हीर । होउं क्जर यह बमिरित पीर ॥^१

उपर्युक्त कथन से यह ज्ञात होता है कि सुफ़ी कवि उस्मान का उद्देश्य इस रचना को प्रस्तुत करते समय यश प्राप्त करने का था। संसार में ज़ार रज़े की प्रवृत्ति इस रचना के मूल में है और कोई भी व्यक्ति अपनी प्रतिभा एवं रचनाओं द्वारा इस संसार में ज़ार हो सकता है। उस्मान ने अपनी इस रचना में "प्रेम की पीर" को गाँपा रखते हुए कलात्मक अभिव्यक्ति को अधिः महत्त्व दिया है जबकि अन्य सुफ़ी कवियों ने प्रेम की पीर को ही प्रमुख स्थान दिया है। किन्तु ऐसा करते हुए भी उस्मान ने इस्लाम और सुफ़ी साधना को अपनी रचना में स्पष्ट महत्त्व दिया है।

इसीलिए उन्होंने अपनी रचना का आरम्भ करते समय मसनवी पद्यति पर सर्वप्रथम इशतिाति की है और फिर पैगम्बर मुहम्मद साहब की प्रशंसा की है और फिर उनके सहाबियों और स्त्रीफ़ाजों की प्रशंसा की है।

कवि उस्मान का कथन है कि "चिन्नायली" की कहानी का आधार काल्पनिक है, किन्तु मैंने इसे अपने स्तेबे के रज़त को पानी से परिणत करके रचा है और इसका प्रत्येक वचन मोती के समान है।" उस्मान के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जितने हूब कर इस ग्रन्थ की रचना की है वे यश लोभ से होते हुए भी इरिब (हुदा) के महत्त्व को मानते हैं और इस्लाम के सभी सिद्धान्तों के मूल भी इस्लाम और तसव्वुफ़ का प्रचार एवं प्रसार है।

माँलाना काज़िद, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, पंफ़न और उस्मान आदि प्रमुख हिन्दी सुफ़ी कवियों तथा उनकी प्रमुख रचनाओं का हमने विशिष्ट विवरण प्रस्तुत किया तथा इन कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा इस्लाम और तसव्वुफ़ को बहुत स्पष्ट रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने धर्म के सिद्धान्तों और अपनी विचारधारा का ज़दायूक अपनी रचनाओं में स्थान देते हुए समसायायिक भारतीय विचारधाराओं के साथ ही साथ हिन्दू धर्म का भी आदर सहित उल्लेख

किया है। उपर्युक्त कुछ सुफ़ी तो अत्यधिक उदार, सहिष्णु और समन्वयवादी थे।
जो: उन्होंने सभी विचारधाराओं तथा विद्वान्तों को अपने ग्रन्थों में सम्मानपूर्वक
चित्रित किया है।

अब हम शेष सुफ़ी कवियों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त उल्लेख
करेंगे तथा जिन कवियों ने इस्लामी विद्वान्तों तथा तसव्वुफ़ का विशद विवेचन
अपनी रचनाओं में किया है उनका उल्लेख विस्तार पूर्वक करेंगे ।

शेख नबी

यह सुफ़ी कवि ज्ञानपुर के निवासी थे । उन्होंने "ज्ञानदीप" नामक ग्रंथ
की रचना १०२६ हिजरी अथवा संवत् १६७६ अथवा सन् १६१६ के समय में की थी ।
इस ग्रन्थ में राजा ज्ञानदीप और रानी देवयानी की कहानी है। "ज्ञानदीप" की
रचना का उद्देश्य है- ईश स्तुति, पैगम्बर मुहम्मद साहब की वन्दना एवं प्रीति,
वानन्द की निष्पत्ति, पाप का नाश और पुण्य की उत्पत्ति । कवि ने देवयानी को
परम सौन्दर्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इस रचना में प्रेम की उत्पत्ति के मूल में प्रत्यक्षा
दर्शन को ही महत्त्व दिया, जो: इसकी प्रेमकथा इश्क-ए-सुफीकी है एहकर इश्क-
ए - मज़ाबी की ओर प्रवृत्त हुई है। यह प्रेमकथा सुखान्त है ।

कासिम शाह

कवि कासिमशाह ने एक स्थान पर लिखा है-
है ठमनऊ अवध मफियारा । दरियाबाद नार उकियारा ।।
दरियाबाद नाँक का ठाऊं । इना नुल्लाह पिता कर नाऊं ।।
तहवाँ मोहि जनम विधि दीना । कासिम नाउं बात का हीना ।।

उपमूर्ख स्वीकारोक्ति से कासिमशाह के स्पष्ट वक्ता एवं सत्यवादी होने का पता चलता है करना आवश्यक कि उन अपने आपको हीन जाति का होने पर गर्व कर सकता है। कासिमशाह दरियावाद के रहनेवाले थे। उन्होंने 'हंस जवाहिर' नामक ग्रन्थ की रचना, दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय में अर्थात् ११४६ हि. में की थी। इस ग्रन्थ में राजा हंस और रानी जवाहिर की प्रेमकथा वर्णित है।

कासिमशाह के 'हंस जवाहिर' ग्रन्थ का कथानक अन्य सुफ़ी कवियों के कथानकों से भिन्न है। इस कथानक में कवि ने हामा सभी पात्र इस्लामी नामों से चित्रित किए हैं जैसे- बलनार का सुल्तान बुरहान, खुरत खाना जिश, चीन का राजा जालमशाह, सुल्तान भोलाशाह, खीन जादि। इस रचना में चीन, बल्ल और हम जादि देशों का भी उल्लेख है।

कासिमशाह ने अपने पीर के रूप में करीमशाह की प्रशंसा की है। उन्होंने ग्रन्थ की रचना भी सुफ़ी कवियों की भांति कसनवी पद्धति पर की है।

नूर मुहम्मद

नूर मुहम्मद जौनपुर जिले के सबरकद स्थान के निवासी थे, जोकि आवश्यक शास्त्रों के नाम से जाना जाता है। नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती' और 'अनुराग बांसुरी' नामक ग्रन्थों की रचना की। उनके अन्य ग्रन्थों के नाम हैं- प्रेम-वाटिका, मोहन-माछ, मलकन तथा फ़ारसी में रोज़-उल-हिनायत, जाम-ए-शहादत जादि।

इन्द्रावती -

नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती' की रचना ११५७ हिजरी अर्थात् सन् १७४४ में की थी। शाह-ए-वक्त के रूप में उन्होंने मुहम्मदशाह की प्रशंसा की है। नूर

मुहम्मद की रचना 'इन्द्रावती' की कथा अत्योक्तिमूलक रूप के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस रचना में काठिहार के राजा भूपति के पुत्र राजकुंवर और जागनपुर के राजा कापति की पुत्री इन्द्रावती की प्रेमकथा वर्णित की गई है। यह कथा अध्यात्मवाद पर आधारित है- राजकुंवर साधक है, बीवात्मा है, गुरुनाथ मार्गदर्शक है, बुद्धिसेन ज्ञान है, इन्द्रावती - परमात्मा, परमरूप-सौन्दर्य-युक्त, परमशक्ति सम्पन्न ईश्वर के प्रतीक रूप में प्रस्तुत हुई है। कथा के अन्य पात्र बुद्धि, मन, देह, प्राणा, व्या, रूपा, रसना, प्रेम, स्नेह, काम, क्रोध, मद, शिवन, पवन, सुज्ञान प्रभृति नाम मनोभावमूलक हैं। इसी कथा में वर्णित स्थान- त्रिपुर- आत्मा का स्थान और जागनपुर - परमेश्वर के निवासस्थान के रूप में हैं तथा वेला, प्राणायोत्री, दुर्जन आदि भी अध्यात्ममूलक पात्र हैं।

नूर मुहम्मद ने अपनी रचनाओं में गुरु को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है। नूर मुहम्मद ने बहुत अधिक कट्टर मुसलमान के रूप में अपने दीन इस्लाम का प्रचार किया है। यहां तक कि उनकी हिन्दू नायिका 'इन्द्रावती' भी 'मुहम्मद' का नाम स्मरण करती है।

अनुराग बांसुरी -

कवि नूर मुहम्मद की यह रचना उनकी 'इन्द्रावती' के बीकानेर पर आधारित है। इस कथा में उन्होंने प्रतीकात्मक पात्रों के द्वारा अपने अभीष्ट उद्देश्य को व्यक्त किया है। 'अनुराग बांसुरी' द्वारा नूर मुहम्मद ने इस्लाम धर्म की बहुत अधिक प्रशंसा की है।

'अनुराग बांसुरी' की रचना १९८७ हिजरी ब्याद १३६४ में हुई थी। इस रचना में नूर मुहम्मद ने संस्कृतभाषी शब्दों का सुंदर प्रयोग किया जो अन्य सूफियों ने नहीं किया। इससे यह प्रमाणित होता है कि नूर मुहम्मद को अन्य सूफ़ी कवियों की अपेक्षा हिन्दी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान था।

"अनुराग बांसुरी" में राजकुमार अन्तःकरण और राजकुमारी सर्वज्ञता की कथा है। ये दोनों पात्र कथा के प्रारम्भ से अन्त तक "फल-प्राप्ति" के लिए संघर्षरत दिखाये गये हैं। इस रचना के सभी पात्र प्रतीकात्मक हैं- नूरतिपुर अर्थात् शरीर का राजा बीब है, राजा बीब का पुत्र अन्तःकरण है और उनके मित्र हैं- संकल्प, विकल्प, बुद्धि चित, वल्लभार आदि। सनेह गुरु रसूल के प्रतीक हैं, ज्यवा उन्हें खिन्न का प्रतीक भी माना जा सकता है। इस रचना में प्रेम का लौकिक रूप गाँगा है और आध्यात्मिक पदा ही प्रसूत है, इस रचना को यदि प्रेमकथा के स्थान पर धर्म कथा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। कवि के अनुसार "अनुराग बांसुरी" की कथा सुनने से विवाह सम्पादित होना और संयोग की प्राप्ति होगी -

रहि अनुराग बांसुरी प्रेमी लोग ।

सुने विवाह जाह भिटि, मिले संयोग ॥

इस प्रकार नूर मुहम्मद ने स्पष्ट रूप से अपनी रचनाओं द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार किया है। वास्तव में नूर मुहम्मद एक पक्के मुसलमान थे, वे कहते हैं-

वास्तव है वह शिरकान हारा । वो कुछ है मन मरम ह्यारा ॥

हिन्दू का पर पांव न राखे । काजो बहो हिन्दी भाखे ॥

मन इस्लाम मस्लक मांखेन। दीन जेवरी करकस भाखेन ॥

अर्थात् मेरे हृदय की बातें सुदाबन्द करीम जानता है, क्या कहूँगा जो मैंने हिन्दी भाषा में लिखा है, मैंने केवल इस्लाम का प्रचार ही किया है। मैं हिन्दुओं के मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहा हूँ। मैंने तो अपने मन को इस्लाम मजहब के मस्लक पर पांव कर उज्ज्वल और कपकपार बना लिया है और उसने उस दीन को रस्सी की

१- अनुराग बांसुरी , पृ० १८६

२- -वही- पृ० ८६

भाति नांकर अत्यन्त दृढ़ भी बना रहा है । वास्तव में नूर मुहम्मद ने अपने दीन इस्लाम के प्रचार और आत्माभिव्यक्ति के लिए ही काव्य रचना की थी । वे अपने उक्त उद्देश्य में पूर्ण सफल हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी का इतिहास" (संशोधित एवं प्रबद्धित संस्करण) के पृष्ठ ११४ पर लिखा है- "नूर मुहम्मद को हिन्दी भाषा में कविता करने के कारणों का एक-मात्र इसका सूक्त देना पड़ा है कि वे इस्लाम के पहले अनुयायी थे -

यह बांसुरी सुने सो कोई । हृदय मोत सुहा बेहि लोई ॥
 निसरत नाद बारूनी साधा । सुनि सुधि को रहे केहि लोपा ॥
 सुनत जो यह सबद मनोहा । होत अके कृष्ण मुरलीधर ॥
 यह मुहम्मदी जन की बोली । जामे कंद नवातें घोली ॥
 बहुत देवता को चित हरं । बहु मूरति जोषी लोई परं ॥
 बहुत देवजरा डाहि मिरावे । संत नाद की रीति मिटावे ॥
 वहं इस्लामी मुल सो निसरी बात ।
 वहाँ सकल सुते मंगल, कष्ट न सात ॥

आचार्य शुक्ल नूर मुहम्मद की "अनुराग बांसुरी" रचना के साथ ही सुफ़ी आत्मान परंपरा की स्थापना मानते हैं। जबकि नूर मुहम्मद के बाद भी अनेक सुफ़ी कवियों ने अनेक रचनाएं प्रस्तुत की हैं जो इस्लाम तथा तसव्वुफ़ के प्रचार में सहायक सिद्ध हुई हैं ।

जान कवि

जान कवि फ़तेहपुर (जयपुर) के नवाब अलफ़ खां के दूसरे पुत्र निवान्त खां थे, जान उनका उपनाम था। उनके पूर्वज राजपूत थे और बाद में मुसलमान हो

गर थे। जान कवि के अब तक लगभग ८२ ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं। हिन्दी के किसी भी कवि के इतने अधिक प्राचीन ग्रन्थ सुरक्षित उपलब्ध नहीं हुए हैं।

नियामत खां "जान" कवि ने संवत् १६६६ से संवत् १७२१ तक साहित्य-सेवा की। ५२ वर्ष की दीर्घ साहित्य सेवा में उन्होंने अनेक ऐसे ग्रन्थों की रचना की जिन्हें प्रेमास्थानों की कोटि में रखा जा सकता है। जान क्लृप्पेण कवि पहेले हैं और सुफ़ी साधक बाद में। इसीलिए उनकी रचनाओं में अन्य सुफ़ी कवियों की भांति नियमानुसार इस्लाम तथा तसव्वुफ का रूप उपलब्ध नहीं होता है। उनके ग्रन्थों में इस्लाम और तसव्वुफ के साधारण उदाणों के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

वे "करता" (गुदा) की स्तुति करते हैं। फौजदार मुहम्मद के गुण गाते हैं और कभी-कभी मुहम्मद के चार साधियों का भी उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार वह किसी-किसी रचना में शाह-ए-बख्श का वर्णन करते हैं तो किसी-किसी ग्रन्थ में अपने पीर की प्रशंसा करते हैं। किन्तु सुफ़ी बाद से सम्बन्धित कोई भी बात नियमित रूप से किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती।

जान कवि ने अपने प्रेमास्थानों में प्रचलित प्रख्यात कथाओं को लिखा है। अरबी, फ़ारसी, संस्कृत भाषाओं में प्रचलित कथारं भी उन्होंने गृह्य की हैं और उनकी प्रेम पद्धति में सुफ़ी तथा असुफ़ी दोनों प्रकार के तत्त्व उपलब्ध होते हैं। जान कवि का इस्लामी तथा हिन्दू ग्रन्थों का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत था।

जान कवि के पीर (गुरु) शेख मुहम्मद बिरती थे। उनका उल्लेख जान ने निम्न शब्दों में किया है-

पीर शेख महमद हैं बिरती । बदन नूरि भाषातु है फिस्ती ॥

रक्त गांव जानहुं तिहि हांसी । केतु कटे चित की फांसी ॥

जान कवि द्वारा लिखित रचनाएं निम्न हैं-

(क) रीतिपरक ठाकिक प्रेम मुक्तक -

१- जानदीप २- बुद्धिसागर ३- संगीत गुनदीप ४- मदन विनोद ५- गुरु
गुन्थ ६- देवाकली ७- उन्नत सवद ८- पालन परीक्षा ९- वननामा
१०- नाममाता अनेकाथी ११- विरह सत १२- विद्योत सागर १३- अट्ठकु
वरुवा इन्द १४- पद्मनाभ अट्ठकु वरुवा, १५- भावसति १६- सिद्धोत्तार सति
१७- भाव कलोल १८- ललक नावा मुद्दल १९- सवयया २०- कन्दुप कलोल
२१- मान विनोद २२- बारम्नासा २३- बरवा २४- वरसनावा २५- बारम्नासा
२६- पेमनामा २७- पेम सागर २८- धुंष्टनामा ।

(ख) नीति उपदेशक मूलात्मक गुन्थ -

१- संत नावा २- शिक्षासागर पन्दनामा ३- ज्ञाननामा ४- विष्णुगुन्थ ५- बुद्धि
दीप ६- कथा कलावन्ती ७- कथा- अंशुलावन्ती ८- कथा कांतुल्ली ९- कथा
कनकाकती १०- कथा कामलता ११- कथा सतवन्ती १२- कथा स्पन्दवरी १३- कथा
मोहिली १४- कथा तिनर सां साख्वादे वा देखु दे १५- कथा कलन्दर १६-
कथा समीप अन्तारी १७- कथा इविसागर १८- कथा नलकनवन्ती १९- कथा
पुष्प वरिषा २०- कथा रतनमंजरी २१- कथा अरदेसर पातिशाह २२- कथा
निरम्भ २३- लल मजनु २४- कथा रतनावती २५- मधुकर मालती २६- कथा
कुलवन्ती २७- कथा शीता २८- कथा सीलवन्ती आदि ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त जान कवि ने काव्यशास्त्र तथा आयुर्वेदिक
अनेक गुन्थों की रचना की थी ।

जान कवि के प्रेमास्थानों के नाम प्रायः नायिका के नाम पर रचे गये हैं।
प्रायः सभी गुन्थों में मवी, मुहम्मद, कुरात, करतार, शिखर, चार बार, विरंचि,
जगदीश, रवि, सति, पवन आदि की स्तुति है ।

शाह-ए-बक्श के रूप में जान कवि ने जगन्गीर, शाहजहाँ और औरंगजेब आदि प्रसिद्ध मुगल शासकों का कृतकः कालक्रमानुसार उल्लेख किया है। जान कवि के लगभग 30 चरित काव्यों का विषय प्रेमकथा है। इनमें दाम्पत्य, सत्, अध्यात्म और स्वच्छन्दतामूलक प्रेमाख्यान हैं। सुकृती काव्य के दृष्टिकोण से इन की रचनाएं अधिक महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी अत्यधिक साहित्यिक रूप लिये जा सकते हैं।

हुसैन खती

हुसैन खती ने अपना उपनाम सदानन्द रख लिया था। वे हरिगाँव के निवासी थे। उनके कवि गुरु का नाम केशवलाल था।

हुसैन खती की रचना का नाम 'पुतुपावती' है। इस ग्रन्थ में काशीपुर राजा जहङ्गर नामिक चन्द और रजनार की रानी पुतुपावती की प्रेमाकाथा है। कथा सुलान्त है। पुतुपावती के प्रारम्भ में कवि ने अपना परिचय दिया है। किन्तु पुतुपावती काव्य की प्रति स्थान-स्थान पर सज्जित होने के कारण उसके शुरू के तथा अन्त के अनेक पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं, इसी लिए ईश्वर, मुहम्मद, चार बार, शाह-ए-बक्श की प्रशंसा आदि ने सम्बन्ध में कुछ फटा नहीं चला। किन्तु विषय के आधार पर कहा जाता है कि यह सुकृती सिद्धान्तों पर आधारित रचना है।

शेरू निसार

शेरू निसार ने अपनी रचना युसुफ़ कुंठा के प्रारम्भ में इस प्रकार किया है-

शेरूपुर जति गाँव सुहावा । शेरू निसार जनम तहं पावा ॥

शेरूपुर फ़ाँवाबाद ज़िले का एक कस्बा है। शेरू निसार का मूल नाम गुलाम अशरफ़ और निसार उपनाम था।

लेख निवार ने आत्मकथा के समय में "युसुफ़ कुंठा" ग्रन्थ की रचना १९०५ खिलवी में की थी। इनके अन्य ग्रन्थ हैं- मेहरनिवार, रस मनोब, दीपन, अक्षय वांछनी, सुंदरी, मरु, विद्यानक आदि।

लेख निवार की रचना युसुफ़ कुंठा का एक "कुरबान तरीफ़" है। "कुरबान तरीफ़" में फाम्बर वाज़व के पुत्र युसुफ़ की कथा है। उसी कथा को आधार मानकर फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि मोहाना जामी की मसनवी "युसुफ़ कुंठा" लिखी गई थी। लेख निवार ने जामी की रचना का ही सफ़ट अनुकरण किया है। किन्तु लेख निवार ने अपनी रचना में पूर्ण स्वतंत्रता रखी है। इस रचना को प्रस्तुत करते समय कवि की मनोवृत्ति पूर्ण भाषिक रूप में दिखे हुए है। युसुफ़ कुंठा के पात्र ठाकुर न होते हुए अलौकिक होते हैं।

लेख निवार ने अपनी इस रचना द्वारा अस्लाम के प्रचार में सहयोग प्रदान किया है।

शार नज़फ़ अली सलोनी

शार नज़फ़ अली सलोनी का निवास स्थान सलोन ज़िला रायबरेली था। उनके पीर शार करीम थे। उन्होंने दो ग्रन्थों - "प्रेमसिंहारी" और "अंतराक्षी" की रचना की।

"प्रेम सिंहारी" में शारनज़फ़ अली सलोनी ने मोहाना जामी की मसनवी की दो कहानियों को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है- प्रथम "बांसुरी" कहानी में ईशान को बांसुरी पाने से हुए सूफ़ी अंतर्वेद को स्पष्ट किया गया है और द्वितीय कहानी बहकियों के फाम्बर क़ुरबान मूसा और नहरिये की है। दूसरी कहानी में निर्गुण ब्रह्म का अध्ययन है।

“प्रेम चिंतारी” की पहली कथा बांसुरी अत्यधिक मार्मिक कहानी है जोकि प्रतीकात्मक स्तरों में प्रस्तुत की गई है। कवि के अनुसार बांसुरी अपने उद्गम स्थान अर्थात् जंगल से पृथक् हो गई है। उसका हृदय बेध दिया गया है (अर्थात् उसमें देव कर दिये गये हैं), बजाने वाला बांसुरी के द्वारा अपनी ध्वनि को सृष्टि में प्रसारित करता है। इस ध्वनि का बजना तो सभी करते हैं किन्तु इसको गुनसेवाले अल्प संख्या में हैं, जो भी इस गुन लेता है, वह माया मोह के बन्धन तोड़कर वियोगी हो जाता है - आत्मा तो परमात्मा की अभिव्यक्ति ही है। यही सुफुली साधना का परम उद्देश्य है।

“प्रेम चिंतारी” की दूसरी कथा में छत्रत मूसा ने एक गढ़रिये को ईश्वर के प्रेम में रत देखा। मूसा के पूछे जाने पर गढ़रिये द्वारा ईश्वरीय प्रेम एवं ईश्वर सेवा की बात कही। तब छत्रत मूसा ने उससे कहा कि ईश्वर प्रेम न करके ज्ञान द्वारा ईश्वर को जानना चाहिये। गढ़रिये यह बात सुनकर दुःखी हो जंगल में चला गया। ईश्वर को पूजा की यह बात प्रिय न ली और ईश्वर छत्रत मूसा के पास प्रेम संदेश प्रेषित किया, तब छत्रत मूसा ने गढ़रिये से दामा मांगी और उसके प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा की। छत्रत मूसा के कहने पर गढ़रिये का प्रेमी और प्रिय वाला दंत भाव मिट गया और वह ईश्वरमय हो गया। यह कहानी भी इस्लामी सुफुली विचारधारा पर आधारित है।

स्वाजा अहमद

स्वाजा अहमद प्रतापगढ़ के निवासी थे। उन्होंने अपनी रचना सूर-जहाँ १३१२ ई में लिखी थी। इस रचना की प्रेरणा स्वाजा अहमद को मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत तथा काश्मिरीयों के ग्रन्थ “संजवहार” से प्राप्त हुई थी।

स्वावा लखनद की गुरुवर्षों का इतिहास प्रसिद्ध गुरुवर्षों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक काल्पनिक कथा है जिसमें इराक़ के सुल्तान नलिकशाह के पुत्र खुरेशेवशाह और ख़ुतन के शाह सुल्तान नज़रशाह की प्रेमगाथा को प्रस्तुत किया गया है। कथा सुगम है।

स्वावा लखनद ने भी अन्य सूफ़ी कवियों की भांति अपने उपर्युक्त ग्रंथ में नलिकशाह की कथा को अपनाया है और सूफ़ी विचारों को प्रस्तुत किया है।

शेर रहीम

शेर रहीम उत्तरप्रदेश के बहराच ज़िले के रहने वाले थे। वे हिन्दी उर्दू हिन्दी और फ़ारसी के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। शेर रहीम ने भी पद्मावत और संजयवाहिर से प्रेरणा ग्रहण कर 'प्रेमरस से परिपूर्ण' भाषा में रस काव्य की रचना की। इस काव्य की कथा काल्पनिक है। इसमें कलकल्लस चन्द्रिका और प्रेमसेन की प्रेमगाथा वर्णित की गयी है। कथा सुगम है। शेर रहीम ने अपनी रचना प्रेमरस में अनेक स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग एवं घटनाओं को भी अंकित किया है। कवि शेर रहीम ने अपने ग्रन्थ भाषा प्रेमरस की रचना का समय वर्ष १६१५ ई. दिया है, अतः इस तिथि के दृष्टिकोण से वे आधुनिक प्रेमगाथा कवि हैं। किन्तु आधुनिक प्रेमगाथा होते हुए भी इसकी रचना स्वर्णी भाषा में ही हुई है।

नसीर कवि

नसीर गान्धीपुर के बननिया गाँव के रहने वाले थे। उनके पीर का नाम सन्तु लख्ठी था। नसीर का जीवन अनेक कष्टों और दुर्गति में व्यतीत हुआ। कलकता निवास में नसीर के एक मित्र मुहम्मद हफ़ी ने उनका थिठ बल्लाने के लिए

अनेक प्रेमगाथाएँ सुनाई जिनमें से इन्होंने कवि जामी की युसुफ कुंसा बहुत पसन्द लायी
 अतः परिणामस्वरूप उन्होंने उक्त काव्य के आधार पर "प्रेम दर्पण" की रचना
 की। इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने १३३५ खिलजी में की थी। "प्रेम दर्पण" में
 नसीर ने युसुफ कुंसा की प्रेमगाथा का उल्लेख किया है।

"प्रेम दर्पण" में कथानक नवीन न होते हुए भी नसीर ने उसे रोचक
 ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की। इस ग्रन्थ को भी मसनवी पद्धति पर प्रस्तुत किया
 गया है और प्रारंभ में इरेवर और पैगम्बर मुहम्मद की स्तुति की गई है।

लठी मुराद

लठी मुराद क़रत निजामुद्दीन औलिया के पुत्र पीर फ़ख़रुद्दीन के
 शिष्य थे। उन्होंने अपनी रचना के प्रारंभ में लिखा है-

निजामुद्दीन के लाल फ़ख़रुद्दीन बिनती सुनो क्वारी ।

भव सागर से पार उतारो बेगहिं लियो उतारी ॥

बाँझि बड़ी भंभधारी ॥

निजामुद्दीन का सुंदर संवरिया उन गैरो बाँह धारी ॥

लठी मुराद ने "कुंवरावत" नामक प्रेमालयान की रचना की है।

"कुंवरावत" में अहमदनगर के राजा इन्द की पुत्री फूँतमती तथा राजकुमार
 कुंवर की प्रेमगाथा कवित्व वर्णित की गई है। कुंवर फूँतमती के रूप में मग्न हो गया
 और उसकी प्राप्ति के लिए उसे अनेक यत्न करने पड़े। जादू-टोना-टोटका भी उसे
 सीखना पड़ा। राजा इन्द के परामर्श से जादू के ताँते बेधने के पश्चात् फूँतमती से
 कुंवर का विवाह हो गया। स्वदेश छोड़ते समय मार्ग में अनेक व्यवधान पार करते

हरे कुंवर फूलमती के साथ अपनी पछी पत्नी के पास पहुंचा और दोनों रात्रियों के साथ सानन्द रहने लगा । किन्तु कुछ दिन के पश्चात् गोरनगर के सुल्तान से युद्ध करते हरे कुंवर ने प्राण त्याग दिये और उसके साथ ही फूलमती भी सती हो गयी कथा दुःखान्त है ।

जहाँ मुराद की कुंवरावत भी सुफ़ी प्रेम पद्धति पर भी आधारित है । इसमें भी मसनवी जैसी जो अपनाया गया है ।

दक्षिणी हिन्दी के सुफ़ी कवि और प्रेमात्मान

उत्तरी भारत के सुफ़ी हिन्दी कवियों में लाला दाऊद, कुतुबन, मलिक मोहम्मद जायसी, बंभन आदि का प्रभाव दक्षिणी हिन्दी के कवियों पर भी पड़ा । दक्षिण में बल्लभी राज्य की स्थापना के पश्चात् ही दक्षिणी हिन्दी में सुफ़ी काव्य-रचना होने लगी ।

दक्षिणी हिन्दी के सुफ़ी कवियों ने फारसी काव्यों और लोककथाओं को अपने काव्य के विषय के रूप में चुना । दक्षिणी हिन्दी के सबसे पहले सुफ़ी कवि तुषाबा बन्दा गवाज़ गेसूदराज़ थे । उन्होंने ८१५ हिजरी से ८२५ हिजरी अर्थात् सन् १४१२ ई० से सन् १४२२ ई० तक रचना की । दक्षिणी हिन्दी का सर्वप्रथम प्रेमात्मान काव्य "कदमराव पदमराव" है जिसके रचयिता निज़ामी हैं।

दक्षिणी हिन्दी के प्रमुख सुफ़ी कवियों तथा उनकी रचनाओं का विवरण निम्नलिखित है-

निज़ामी

सुफ़ी कवि निज़ामी ने दक्षिणी हिन्दी की सबसे पछी मसनवी

‘कदमराव पदमराव’ लिखी । निज़ामी बहमनी सुल्तान का दरबारी कवि था । निज़ामी ने अपनी रचना में बसनेकी पद्धति को अपनाते हुए ‘गुलशन’ परमेश्वर की उपासना के पश्चात् फारुख मुहम्मद शाह की प्रशंसा के साथ बड़े लोगों का गुण गाव किया है। फिर क्या बर्णित की है ।

मुल्ता बजही

मुल्ता बजही गोलकुण्डा के कुतुबशाही सुल्तान के दरबारी कवि थे । उन्होंने सुल्तान इक़ासीम आज़िज़ शाह के समय (सन् १५५० ई० - सन् १५८० ई०) में ‘कुतुब मुस्तरी’ की रचना की । मुल्ता बजही ने कुतुब मुस्तरी का नायक सुल्तान कुली कुतुब शाह को बनाया है। इसकी कथा कल्पना पर आधारित है। मुल्ता बजही ने उक्त ग्रन्थ की रचना केवल बारह दिनों में पूर्ण कर ली थी । इस रचना में कुतुब-शाह और मुस्तरी की प्रेमादा है ।

कुतुब मुस्तरी में मुल्ता बजही की कल्पना शक्ति का सुन्दर परिकल्प प्राप्त होता है। इस रचना में कवि ने अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से उभारा है। इसका आध्यात्मिक पक्ष खुब नितरा हुआ है। मुल्ता बजही की कुतुब मुस्तरी बर्हिनी हिन्दी की एक अत्यधिक सफल एवं सतृक रचना है ।

मुल्ता बवासी

मुल्ता बवासी की निम्नलिखित तीन रचनाएं प्राप्ता हुई हैं-

- १- सैफ-उल-मुल्क व बदी-उल-जाल
- २- तूली नामा
- ३- मेना सतधन्ती

सेफ़-उल-मुल्क व बदी-उल-ज्जाल मसनवी ने मिस्र देश के शासक नव्व कासिम के पुत्र सेफ़ और राजकुमारी बदी-उल-ज्जाल की प्रेमाथा है। इस प्रेमाथा का बहुत श्रोत प्रसिद्ध काव्यान-स-कलिक़ उल्ला है। गवासी की यह रचना सुशान्त है।

“तूतीनामा” का आधार संस्कृत की शुक सप्तति है। “तूतीनामा” में गवासी ने सूफ़ी विचारधारा का कोई विशेष उल्लेख नहीं है।

“मेना सतवन्ती” फ़ारसी की कथा का हिन्दी रूपान्तर है। इस ग्रन्थ में वही कथा है जो गवासी से २५० वर्ष पूर्व उत्तरी भारत के सूफ़ी कवि बाज़द ने कन्दान से प्रस्तुत की थी।

सन् १६३५ ई० में अब्दुल्लाह कुतुबशाह सुल्तान ने मुल्ता गवासी को “नलिक-उल-शोबरा” की उपाधि से विभूषित किया था।

शेर अलमद बुन्दी

शेर अलमद बुन्दी गोलकुण्डा के रहनेवाले थे। उन्होंने माह फ़ैर नामक ग्रन्थ की रचना की। माह फ़ैर की रचना मसनवी शैली पर आधारित है। इसमें गुजनी के बज़ीर ख़ान मेकदी की पुत्री माह और गुजनी के सांदागर अब्दुल्लाह के पुत्र फ़ैर की प्रेम गाथा है। कथा सुशान्त है।

मुल्ता नुसरती

मुल्ता नुसरती ने “गुलशन-स-इश्क” और “जाहीनामा” नामक ग्रन्थों की रचना करके बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। नुसरती को अपनी दक्षिणी हिन्दी

पर बहुगर्व था -

दक्खिन का कहे होर उनके अदब ।
छिव कुछ ना सकुबीम मानिन्द रद ॥^१

"गुलशन-ए-इरक" की रचना ईरान की प्रसिद्ध मसनवियों के आधार पर हुई है। इसका रचनाकाल सन् १६५७ ई० है। इसमें राक़ुमार मनोहर और मधुनालती की प्रेम गाथा है।

सुरती की गुलशन-ए-इरक और मदन की "मधुनालती" रचनाओं में बहुत साम्य है।

६ इदन -ए-निशाती

निशाती ने दक्खिनी हिन्दी की एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचना "फूल बन" को प्रस्तुत किया है। निशाती ने स्वयं स्वीकार किया कि "फूल बन" फ़ारसी मसनवी "निशाती" का अनुवाद है।

"फूल बन" में केवल एक कहानी न होकर अनेक कहानियाँ हैं- प्रमुख कथा कंचन फटन से सम्बद्ध है। एक झुलझुल और पुष्प की कथा है, जो ज़ाफ़ वर पुनः च और स्त्री से झुलझुल और पुष्प बन गये थे।

दक्खिनी हिन्दी के उपर्युक्त प्रसिद्ध सूफ़ी कवियों के अतिरिक्त अनेक सूफ़ी कवि हुए जिन्होंने दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी काव्य की प्रीति की, उनमें से ६ प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं के नाम निम्नलिखित हैं -

- १- बाज़िब - लंछा मकनू
- २- मुहम्मदी - चन्दर बदन
- ३- अमीन व दाँलत - किस्ता-ए- महरानशाह

- ४- कवच सनती - मसनवी गुलवस्ता सनती
 ५- सक्क - बहराम व गुलु बन्दान
 ६- गुलाम खली- पद्मावत
 ७- फायज़ - रिज़वान हाह कह अफ़ज़ा
 ८- हासनी बीबापुरी- यूसुफ़ कुलेता
 ९- संयद मुहम्मद जाविक- किस्ता -२- नलिका-२- मिस्र
 १०- कुर्फ़ी - इरक़ सादिक
 ११- कशरती- दीफ़ फ़तं
 १२- जमीन - यूसुफ़ कुलेता
 १३- काज़ी मल्मुद बहरी- मन लगन
 १४- जारिफ़-उदीन जाज़ि - ठाल-व- गांहर
 १५- हुनर - नेह दर्फ़ा
 १६- बबीख़दीन बबदी- बाग़-२- जाफ़िज़ा
 १७- सिराज औरंगाबादी- बुस्तान-२- कुवाल

दक्षिणी हिन्दी के प्रेमास्थानों का मूल प्रोत अधिकांश में फ़ारसी की प्रसिद्ध मसनवियां हैं। कुछ कवियों ने अपनी रचनाओं के लिए ठोकाशाओं को आधार बनाया है।

दक्षिणी हिन्दी के काव्यों में स्पष्ट रूप से काव्य लिपि भाव दृष्टि-गोचर होते हैं। उनके सूफी साधना और विचारधारा के दर्शन होते हैं। दक्षिणी हिन्दी के प्रेमास्थानों में उदारी भारत के सूफी प्रेमास्थानों जैसी उदारता के दर्शन नहीं होते हैं और न ही उन में हिन्दू धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति को ही महत्त्व दिया गया है। दक्षिणी हिन्दी के प्रेमास्थानों में फ़ारसी मसनवी शैली का पूर्णरूपेण प्रयोग किया गया है। इन कवियों ने सूफी मत के प्रचार के लिए ही रचनाएं की हैं। इसीलिए दक्षिणी हिन्दी के सूफी काव्य पर स्पष्टतः फ़ारसी सूफी काव्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

फुटकर सूफ़ी काव्य-

उत्तरी हिन्दी सूफ़ी काव्य तथा दक्खिनी हिन्दी सूफ़ी काव्य के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे कवि हिन्दी में मिलते हैं जिन्होंने सूफ़ी काव्य की रचना की है, उनमें से प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं-

सुदरत अमीर सुसरो -

सुदरत अमीर सुसरो का असली नाम अब्दुल हसन था । वे झिठा रटा में संवत् १३१२ में उत्पन्न हुए थे । अमीर सुसरो प्रसिद्ध सूफ़ी संत सुदरत निवान्दहीन जोलिया के शिष्य थे । सुसरो ने हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि भाषाओं में लगभग ६६ ग्रन्थ लिखे थे । उन्होंने मसनवियां अधिक लिखीं। उन्होंने अपने जीवन काल में तुलानवंश, खिलजी वंश और तुग़लक वंश के सुल्तानों और बादशाहों का राज्य देखा व उनके दरबारों से सम्बन्धित भी रहे । सुसरो को अरबी, फ़ारसी, तुर्की, हिन्दी का बहुत अच्छा ज्ञान था । सही सोही का सर्वप्रथम रूप हमें सुसरो के काव्य में ही उपलब्ध होता है। सुसरो ने अनेक प्रसिद्ध पहेलियां, मुहरियां और गीत आदि लिखे । उन्होंने सूफ़ी विचारधारा के आध्यात्मिक पक्ष को भी अपने काव्य का विषय बनाया था जैसे-

बहुत रही बाबुल कर दुलहिन बल, तेरे पी ने कुहार ।

बहुत खेले खेती सखियन सों, संत करि ठरिकाह ॥

तथा

सुसरो रैन सोहाग की, जागी पी के सं ।

तन मेरो, मन पीऊ को, दाऊ भयो एक रंग ॥

किन्तु सुसरो ने सूफ़ी कवियों की भांति कोई प्रेमात्मक काव्य नहीं लिखा ।

सुरारो का देहान्त संवत् १३८१ को हुआ ।

अबुल फुद्दुस गंगोही-

अबुल फुद्दुस गंगोही अपने समय के अत्यधिक धार्मिक व्यक्ति थे । उनका सम्मान सम्राट तक किया करते थे । वे हर समय सुदा की इबादत में लीन रहा करते थे । वे विनम्र स्वभाव के व्यक्ति थे, मानकता की सेवा ही उनका परम धर्म था । वे किसी के प्रति कटु नहीं थे। सरल स्वभाव वाले अबुल फुद्दुस गंगोही वास्तव में ही "जलाह वाले" थे । उनका जन्म उत्तरप्रदेश के फ़िठा बाराबंकी की रुवांठी तहसील में संवत् १५१३ में हुआ था। उनकी अनेक रचनाएं हैं । उन्होंने फ़ारसी में बहुत अधिक लिखा है। उनकी हिन्दी की रचना का नाम "रुश्दनामा" है, रुश्दनामा को रचनाकार ने फ़ारसी लिपि में लिखा था । अबुल फुद्दुस गंगोही ने अपना उपनाम "अल्लदास" रखा था । उनको देहावसान संवत् १५६४ में हुआ था ।

अबुल फुद्दुस गंगोही "अल्लदास" ने इस्लामी और सुफ़ी विचारधारा को अपने काव्य का विषय बनाया है और "बहक़-उल-बख़्द" व "ताहीद-ए-बख़्दी" के साथ ही साथ शरिफ़त मजारिफ़त आदि को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। अबुल फुद्दुस गंगोही का कथन है कि मजारिफ़त सुफ़ी साधना का मुख्य उद्देश्य है-

यह का नहीं था कि फिर बूझें बरक़त ज्ञान ।

सोई पानी, सोई कुक़ुला, सोई सरोवर जान ॥

अबुल फ़ज्ज मजारिफ़त के हेतु फ़ोन्वर ख़ुरत मुहम्मद साहब द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलना करी है-

महमद मल्लद का कहें बीन्हे नाहीं कोय ।

अल्लद मीम गंगाहवा कह ल्यो दुवा होय ॥

बलमुकुटवन्द के सम्बन्ध में वे कहते हैं-

जैसे ठहर समुंद की बाहर निकरी माय ।

सदा बाहि समुन्दी पेठी बाय ॥

सेहू फ़रीद -

सेहू फ़रीद गुरू नानक के समय में हुए थे । वे दीपावली के समीप स्थित गांव कांठीवाल के निवासी थे । उनकी शिष्य परम्परा में सबसे अधिक प्रसिद्ध सलीम चिरती थे जिनकी सनाधि जागरा, फतेहपुर सीकरी में है।

सेहू फ़रीद की रचनाएं "आदि ग्रन्थ" में संगृहीत हैं । उन्होंने सलोको (सलोको) और पदों की रचना की । उनके काव्य में उनके कोमल स्वभाव और विशाल अनुभव के दर्शन होते हैं-

विरहा विरहा जातीअ, विरहा तू सुखान ।

फरीदा किंतु तनि विरहु न उपजे, से तनु जाति बाणु मसाणु ॥

तथा

फरीदा णालुक णलक मंहि । णलक जसे रव मांहि ।

मंदा कितनो जाणिके, तिसु बिनु कोइ नांहि ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि सेहू फ़रीद ने अपने दोहों या सलोको में सूफी भावना व इस्लाम की अभिव्यक्ति की है ।

बारी साल्व -

इनका असली नाम "बार मुहम्मद" था । बारी साल्व प्रारम्भ में सूफी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे किन्तु बाद में वे "बीक साल्व" के प्रभाव में आकर बारी

सम्प्रदाय के प्रचारक हो गए थे । यारी साहब की प्रारम्भिक रचनाओं में सूफ़ी विचारधारा स्पष्ट झलकती है-

हमारे एक "क़लह" फ़िषियारा है ।

तथा

घट भट नूर मुहम्मद " साहब बाकी सबल पसारा है ।

तथा

सुन्न के मुक़ाम में बेधुल की भित्तानी है ।

बिज़िर है सोई अनइद बानी है ॥

प्रेमी कवि -

वरकत उल्लाह "प्रेमी" ने "प्रेम परकाश" नामक रचना की जिसमें सूफ़ीवाद के अनुसार ईश्वर प्रेम वर्णित किया गया है। प्रेमी कवि ने अपनी रचना में सर्वप्रथम "बुदा" की वन्दना की है, फिर "मुहम्मद" साहब की स्तुति प्रस्तुत की है, तदपूरान्त अपने पीर "मुहीउद्दीन" की प्रशंसा की है । "प्रेम-संदेश" को प्रेमी कवि सूफ़ी विचारधारा के अनुसार एक मशान् उद्देश्य द्वारा प्रस्तुत किया है-

प्रेमि हिंदू गुरुक में, हर रंग रहो उनाह ।

देवल जोर मरोत में, दीप एक ही भाह ॥

तथा

तुम सूरत का दीप निस, जक़ाति कह सुनाय ।

बिन को नहिं रहि सकूं, देखे रहो न बाय ॥

बुल्ले शाह-

बुल्लेशाह 'सगरी सम्प्रदाय' के अनुयायी थे। वे कबीरदास की भांति बहुत ही साफ-साफ अर्थात् खरीब बात कहते थे। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं इस प्रकार हैं-

१- सीहरफ़ी २- कठवारा ३- काफ़ी तथा ४- बाराभासा ।

बुल्लेशाह की रचनाओं में तत्त्वबुद्धि के साथ ही साथ उपदेशात्मकता तथा केतावनी भी दृष्टिगोचर होती है-

ना में मुल्ला ना में काबी, न में सुन्नी ना में हाबी ।

बुल्लेशाह नाउ लाई काबी, अल्लह सबद बजाया है ॥

तथा

हीन सुलहा नाहीं करा एक इसमें, सदा आपणा आपत रूप है बी ।

नहीं जान अज्ञान पी और जोये, कहां सूर में हांड कर भूष है बी ।

पढ़ा सेव के नाही ही सही सोया, कूट सुप्त ना रंगवर रूप है बी ।

बुल्लेशाह संभाव जब मूढ देख्या, और और में बह अपूप है बी ॥

सगरत अमीर ख़ारो, अब्दुल क़दूर गंगोही, शेख़ अज़ीज़ फ़रीद, यारी साहब, पेसी और बुल्लेशाह के अतिरिक्त भी अनेक फुटकल सफ़ी कवि हुए हैं जिनमें से सूफ़ी काव्य की रचना की। उनमें से प्रमुख हैं- १- दीन दरवेश २- नज़ीर अकबराबादी ३- हाबी फ़ी ४- अब्दुल समद ५- बबलन ६- अल्लानाना के रचनाकार अज्ञात कवि ७- फ़कीरा ।

उपर्युक्त सभी कवियों ने अपनी-अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य के अनुसार अपनी काव्य रचना में इस्लामी सिद्धान्तों के साथ ही साथ सूफ़ी विचारधारा को प्रस्तुत करके इस्लाम धर्म और तत्त्वबुद्धि का भरसक प्रचार किया है। अतः मोलाना दारुल-उलूम, लाहौर, मुहम्मद, मक़न आदि की भांति ही उपर्युक्त कवियों का भी सूफ़ी (हिन्दी) काव्य में अपना एक महत्त्वपूर्ण योगदान तथा स्थान है।

निष्कर्ष -

हिन्दी सूफ़ी काव्य पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सम्पूर्ण सूफ़ी काव्य इस्लामी तथा सूफ़ी विचारधारा से जोतप्रोत है। इस पर इस्लामी सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। झुलान उरीफ़ की जायतो के आधार पर सूफ़ी कवियों ने अपनेकाव्य का विशाल प्रासाद सजा दिया है। कुछ सूफ़ी कवियों ने तो केवल इस्लामी सिद्धान्तों को ही अपना प्रतिपाद विषय बनाया है, जबकि ऐसे कवियों की संख्या अधिक है जिन्होंने इस्लाम को आधार बनाते हुए सूफ़ी विचारधारा को ही अधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने "प्रेम की पीर" को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रूप प्रदान करते काव्य-रचना की है।

हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में "प्रेम" अथवा इश्क़ को ही वर्य विषय बनाया गया है। इन आख्यानों में कवियों ने प्रेम का स्फुरण, स्वप्न द्वारा, चित्र द्वारा, क्लृप्ति के द्वारा बताये गये रूप, गुण, वर्णन को सुनकर अथवा स्वयं ही क्लृप्ति को सामने पेशकर किया है। उदाहरणार्थ- "मृगाक्षी" में राजकुमार ने छतराँ की छिरणी की मधुमाळती के दर्शन किए, तभी वह उसके प्रति आसक्त हुआ। "इन्द्राक्षी", "अंत कवाक्षि", "रत्न मंजरी", "गूरुबहाँ", कया कमकावती, "यसुफ़ कुंता", "क़ुब मुरतरी" आदि सूफ़ी प्रेमाख्यानों में प्रेम का अंगूरण स्वप्न दर्शन द्वारा होता है।

इसी प्रकार चन्दावन, पद्मावत, मधुमाळती, चित्राक्षी आदि में प्रेम का उक्त रूप-गुण वर्णन द्वारा होता है। जायसी आदि कवियों ने अपनी नायिकाओं का रूप-वर्णन क्लृप्ति तीसरे के मुख द्वारा कराया है जिसको सुनकर अधिकतर नायक मूर्च्छित हो जाते हैं और फिर वे उस नायिका की प्राप्ति के लिए उक्त होते हैं।

सूफ़ी कवियों का यह रूप-सौन्दर्य वर्णन परम्परागत है। सूफ़ी साधक तथा कवि अल्लाह (ईश्वर) के बनाव (रूप) और बनाव (सर्वव्यक्तिसम्पन्नता) का बहुत अधिक जोश से वर्णन किया है। यही वर्णन सूफ़ी प्रेमात्मानों में दृष्टिगोचर होता है।

सूफ़ी काव्यों तथा प्रेमात्मानों की कथा के विकास का सबसे पतत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रेमी (नायक) का प्रेयसी (नायिका) की प्राप्ति के लिए संघर्ष एवं प्रयत्न करना है। प्रेमी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए जोगी बन जाता है और नाना संघर्षों तथा परीक्षाओं से गुजर कर प्रेयसी की प्राप्ति करता है। सूफ़ी कवियों द्वारा प्रस्तुत यह प्रेम-साधना पूर्णतः तसव्वुफ़ पर आधारित है, सूफ़ियों के प्रेमात्मानों की प्रेमकथा इश्क़-ए-मशाक़ी से इश्क़-ए-सुकीकी की ओर अग्रसर होती है।

सूफ़ियों ने उपर्युक्त प्रेमात्मानों में आध्यात्मिक प्रेम को ही चित्रित किया है। ऐसा उन्होंने प्रतीकों द्वारा किया है। शुक, गुरु के समान हैं, नायिका ईश्वर स्वयं है, राजा अथवा नायक साधक है। नायक और नायिका का मूल्य के अंत में विवाह आध्यात्मिक मिलन है।

संदेह में हम कह सकते हैं कि सूफ़ी कवियों ने इस्लाम और तसव्वुफ़ के आधार पर ही अपने प्रेमात्मानों की रचना की है, किन्तु कोरे सिद्धान्तों का ही उल्लेख न करके उन्होंने मनोरंजक कथाओं को भी स्थान दिया है, ताकि उनके उद्देश्य अर्थात् तसव्वुफ़ के प्रचार एवं प्रसार में उनके मूल्य सहायक हो सकें।

पंचम अध्याय

हिन्दी सुफुर्ती काव्य में कहानियत तथवा जा ध्यात्मिकता

हिन्दी सुफ़ी काव्य में क्लानियत अथवा आध्यात्मिकता

सुफ़ी दर्शन -

अने पिछले अध्याय में 'ख़ुआन शरीफ़' में प्रस्तुत 'सुदा' के ६६ नामों तथा विशेषताओं का उल्लेख किया है। इन नामों में सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम 'बल्लाह' है जोकि प्रत्येक मुसलमान के लब पर हर समय रहता है। इसी के साथ ही दूसरा लोकप्रिय नाम (फ़ारसी शब्द) 'सुदा' है। इस्लामी दृष्टिकोण से वही है कि जो कुछ है वह 'बल्लाह' या 'सुदा' की ज्ञात है। जो कुछ इस संसार में हो चुका है, हो रहा है और होनेवाला है, वह उसी 'बल्लाह' के द्वारा ही हुआ, हो रहा है और होगा। 'बल्लाह' सर्वशक्ति सम्पन्न, परमसदा, परमात्मा, परमेश्वर है। वही दृष्टा है, वही पालक है और वही संसारक है।

'बल्लाह' की ज्ञात के साथ किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को जोड़ना अथवा किसी वस्तु को उसके साथ शरीक करना इस्लाम धर्म के विरुद्ध है जैसे उदाहरण के लिए ईसाई धर्मावलम्बी अपने धर्मप्रचारक ईसा मसीह को 'सुदा का बेटा' मानते हैं। यह बात इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार 'ग़ल' है। यद्यपि ख़ुआन शरीफ़ में ख़ुरत 'ईसा मसीह' का बिक्र जाया है और उनको सुदा का पंख़र माना है।

हिन्दी के सुफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं में बल्लाह, सुदा, करतार, रहमान, रहीम, मालिक, परमेश्वर, परमात्मा, हरिबर आदि शब्दों का प्रयोग किया है और साथ ही साथ उस परमसदा के गुणों, विशेषताओं अथवा 'सिफ़ात' का भी उल्लेख किया है। इन प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने 'ज्ञात-ए-इलाही' और

“सिफात-ए-इलाही” का अपने काव्यों में वर्णन स्पष्ट रूप से किया है जो मलिक मुहम्मद जायसी बल्लाह की ज्ञात और सिफात को अपने काव्य में इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

बीउ नाहिं पे फिर गुलाही कर नाहिं पे कर सजार् ॥
बीम नाहिं, पे सब किहु बोला । तन नाहिं, सब ठाहर ढोला ॥
हं नाहिं कोई ताकर रूपा । ना जोहि सन कोह जाहि बनूपा ॥^१

कुरबान शरीफ की जायत १०७ में कहा गया - “तू (मुहम्मद) कह दे
आर मेरे रब की बातों को लिखने के लिए समुन्दर स्याही बन जाये, तों भी
उसकी सिफात को पूरी तरह से लिखा नहीं जा सकता ।”^२

इसी भाव को जायसी निम्न शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

कति अपार करता कर करना । करनि न पावे कोई करना ॥
सात सरग को आगद करई । धरती दुहुं मसि भरई ॥
बावत का साजा बन डाला । बावत अस रोस पंति पाला ॥
सब लिखनी के लिहु संसारा । लिखि न जाइ गत समुद अपारा ॥^३

हिन्दी सूफ़ी कवि इस्लाम धर्म के अनुयायी थे, जो: उन की रचनाओं पर इस्लाम का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । “कुरबान शरीफ” की जायतों के आधार पर हिन्दी सूफ़ी कवियों ने आध्यात्मिक पदों को अपनाया है। इन कवियों की आध्यात्मिक स्थापनाएं फारस मुहम्मद सात्व के सत्य-वचनों अर्थात् हदीसों पर भी आधारित हैं । उदाहरणार्थ जायसी ने एक “हदीस” को निम्नलिखित

१- जायसी गुंथाकली, पृ० ३

२- कुरबान शरीफ, सूरत कहफ़, १८

३- जायसी गुंथाकली, पृ० ४

शब्दों में प्रस्तुत किया है-

मूल हवीस यों है- "सर्वप्रथम खुदा ने उसी का (मुहम्मद का) मूर बनाया और फिर उसी के इरक में पूरी कायनात को बनाया ।"

प्रथम जोति विधि साकर साबी । जो तेहि प्रीति सिद्धि उपराबी ।

तथा

प्रेम प्रीति पुरुष एक किया । जोनके प्रीति जोति परगासा ।

घट-घट पूरि भरत सब अपा । उनते भ्या संसार सम्पूर्ण- सुनहु बेन बस्यहु॥

हिन्दी सूफ़ी कवियों के काव्य तथा सूफ़ी मत में ब्रह्म का स्वल्प

जैसा कि विदित ही है कि लगभग सभी हिन्दी सूफ़ी कवि इस्लाम धर्म के अनुयायी थे, अतः उनके ग्रन्थों में प्रस्तुत ब्रह्म अथवा परमात्मा पर कुछ कहने से पूर्व "कुरबान शरीफ़" में वर्णित अल्लाह (ब्रह्म) के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है ।

अरबी भाषा के शब्द "अल्लाह" इस्लाम तथा मुसलमानों के मतानुसार मुत्तकल्लु अनान अर्थात् सर्वशक्तिसम्पन्न, परमात्मा, ईश्वर, खुदा, ब्रह्म और सारी कायनात (वृष्टि) का रचयिता है। अल्लाह की मर्जी के बिना "तिनका" भी नहीं छिड़ सकता । कुरबान शरीफ़ में खुदा के ६६ नाम दिये गये हैं जिनका उल्लेख लम्पिछले अध्याय में कर चुके हैं। इस्लामी विचारधारा के अनुसार अल्लाह की ज्ञात में किसी को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है, वह अकेला है, "अल्ल" से है "अवद" तक उसी का "मूर" रहेगा । न उसका आदि है न अंत, वह तो काल है ।

१- नायसी ग्रंथावली, पृ० ४

२- मतजलानाना, पृ० ६६

“सिफ़ात-ए-इलाही” अथवा ईश्वर के गुणों का विद्वान्त वर्णन से सम्बद्ध है। कुरआन शरीफ़ में अनेक स्थलों पर सिफ़ात-ए-इलाही का उल्लेख है यथा- “सूरा सुल्मान” में कहा गया है- “जो रज़िज़ में कितने बड़ा है यदि छेतनी बन जाये और समुद्रों की नसि हो तो भी इलाह का पूर्ण वर्णन नहीं हो सकता।”

इलाह (ब्रह्म, ईश्वर) एक है, सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है और मानव की ज्ञान परिधि के परे है, वह ज़ाहिक (दृष्टिकर्ता) है, वह अवतार नहीं लेता, उसके और बन्दे (मानव) के बीच बहुत बड़ा अन्तर है वह स्वामी है, बन्दा सेवक है। यही मान्यता इस्लाम, कुरआन शरीफ़, मुहम्मद साहब और मुसलमानों की मान्यताओं में जागे चलकर कुछ मतभेद हो गया है, किन्तु सूफ़ी मुसलमान भी “इलाह” की वरक़ा (एकता) में विश्वास रखते हुए उसे अद्वितीय मानते हैं। सनातन पंथी मुसलमानों और सूफ़ियों के दृष्टिकोण में भिन्नता यह है कि पिताहूँ नेवाले संसार में एक ही सत्य व्याप्त है।

फ़ारसी के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि जामी का कथन है कि “वह (इलाह) अद्वितीय पदार्थ को निरपेक्ष है, जोवर है, अपरिच्छिन्न है तथा जो नानात्व से परे है, वही “अल-हक्क” (परमसत्य) है। दूसरी ओर अपने नामत्व और अनेकत्व में जब वह सभी गोचर वस्तुओं में स्वयं को प्रकट करता है, तब सम्पूर्ण रची हुई दृष्टि वही है।” इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह दृष्टि उस “परम सत्य” की दृश्यमान अभिव्यक्ति है और वह परम सत्य इस दृष्टि का आभ्यान्तर अदृश्य सत्य है। सूफ़ियों के मतानुसार यह दृष्टि गोचर होने से पहले उसी परम सत्य (इलाह, ब्रह्म) के सद्गुण थी, गोचर होने के पश्चात् उस परम सत्य का इस दृष्टि के साथ सादृश्य है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम ने “एकेश्वरवाद” को मान्यता दी है जबकि सूफ़ी “अंतर्वाद” के हामी हैं।

हिन्दी सूफ़ी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन, उस्मान और ग़ूर मुहम्मद ने उपर्युक्त सूफ़ी मत को ही अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। इन सूफ़ी

कवियों ने स्वीकार किया है कि इस्म (परमेश्वर) के दृष्टिकोण, संचालन, पालन, संहारक आदि रूप हैं तथा वह सभी जीवों एवं जग-जग में व्याप्त है। वही सृष्टियों का अंतर्वादी दृष्टिकोण है।

मलिक मुहम्मद जायसी अपनी रचनाओं में स्वीकार करते हैं कि इस्म एक है, उसके समान दूसरा नहीं। अतएव वह अद्वितीय है, उसके गुणों का कोई अन्त नहीं। जायसी का कथन है-

ताके अस्तुति कीहिं न शई । कौने जीम में करौ बड़ाई ॥
जगत पाताल जो सै कोई । तेनी विरत समुद मसि होई ॥
ताग तिते सिष्टि मिळि जाई । समुद घटे पे तिति न चिराई ॥^१

कुरबान हरीफ़ ने अल्लाह की सिफ़ात सम्बन्ध में कहा गया है कि अल्लाह परवर-दिगार (पालक), सुबहान (पवित्र), कालिक (जन्मदाता), रज़्जान (हुपात), करीम (दयालु), कादिर (समर्थ), रज़्ज़ाक (रोज़ीदाता) माज्जद (पूज्य) है ।

हिन्दी साहित्य में सूफ़ी काव्य के अतिरिक्त भी अल्लाह की उपर्युक्त सिफ़ात को अनेक भक्तियुगीन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। सूफ़ियों ने अल्लाह की सभी विशेषताओं का उल्लेख अपने ग़ज़लों में किया है ।

मंज़न का कथन है कि उसी (इस्म) का स्वरूप ही जिस ओर उसी का रूप त्रिभुवन के जीवों में व्याप्त है। दृष्टि के अनेक रंग रूपों में वही रूप समाविष्ट है, चाहे रावा हो, चाहे रंक-

यह रूप सस्ती और सीज़ ।
 यह रूप त्रिभुवन कह बीज़ ॥
 यह रूप निरस्त बहु भेदा ।
 यह रूप का रंग न रेखा ॥^१

कवि उस्तान भी कुछ ऐसी ही बात इस प्रकार कहते हैं-

आग्नि पवन रज पानि के, भांति भांति व्यवहार ।
 आपु रज सब नाहि मिलि, को निरावे पार ॥^२

अर्थात् अग्नि पवन धरती और जल से नाना प्रकार के शरीर का वह (ब्रह्म) निर्माण करता है और शरीरों व पदार्थों में इस प्रकार अनुस्यूत रहता है कि कोई उसे जल नहीं कर सकता ।

नूर मुहम्मद कहते हैं, "वह (ब्रह्म) अकेले ही दृष्टिकर्ता है, वह प्राणिमों के बाह्य-आन्तर सब कुछ का जानने वाला है। इस आकाश, सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का रचयिता है, उसके समान दूसरा कोई नहीं-

जल्ल अकेल सो धिरजनहारा ।
 जानत परगत गुह्य हारा ॥
 कीन्ह गान रवि ससि महि मेरा ।
 काउ नाहीं जोरी तोहे तेरा ॥^३

१- मधुसूतनी, पृ० ६६

२- चित्राकटी, पृ० १

३- इन्द्रावती- पृ० १

मलिक मुहम्मद जायसी ने बल्लाह अथवा ब्रह्म के सम्बन्ध में जाने और भी कहा है कि उसके समान दूसरा नहीं, न तो उसका कोई स्थान विशेष है, न उससे कोई स्थान रिक्त है। वह आकृतिविहीन किन्तु विष्णु रूप है, उस(ब्रह्म) ने सर्वप्रथम 'भूर' (ज्योति) से सूर्यत मुहम्मद साहब को प्रकाशित किया और उन (मुहम्मद) के प्रेमवत् दृष्टि का निर्माण किया। अग्नि, जल, पवन और धरती की दृष्टि की। नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण किया। उसी (ब्रह्म) ने धरती, आकाश और पाताल लोक का तथा उनमें नाना जीवों का निर्माण किया। उसी ने दिवा और दिवाकर, निशा और निशाकर का निर्माण किया। तारों की जाणित पंक्ति और नक्षत्रों की रचना की। धूप, रश्मि और छाया को बनाया। उसी ने मेघ छटाओं और कोष से बकाबोंध कर देने वाली बिजुल का निर्माण किया तथा उसी ने सात लोकों, चांदर भुवनों और ब्रह्माण्ड का सृजन किया -

हे नाहि कोई ताकर क्या । ना जोहि सन कोई जाहि बन्या ॥
ना जोहि ठाऊं न जोहि बिन ठाऊं । उप रेख बिन निरमल नाऊं ॥

तथा

कीन्हैसि प्रथम जोति परकासु । कीन्हैसि तेहि पिरित कंठासु ॥
कीन्हैसि हनिनि पवन जल सेहो । कीन्हैसि बहो रंग उरोहा ॥
कीन्हैसि धरती सागर फाड । कीन्हैसि बरन बरन जोटाड ॥
कीन्हैसि दिन-दिन अर ससिराती । कीन्हैसि नक्त तराइन पाती ॥
कीन्हैसि धूप सीउ और हांहा । कीन्हैसि मेघ बीजु तेहि पांहा ॥
कीन्हैसि सयत मही बर लंडा । कीन्हैसि भुवन चांदहो संडा ॥

जायसी ने 'आराकट' में ब्रह्म विनायक भाव निम्नलिखित रूप में प्रकट किये

हैं-

बह (बल्लारह, ब्रह्म) अकेला वीर केवल एक है-
एक अकेल न दूसर जाती । उपन सत्त बटारह भाँति ॥^१

बह काव का आवि कारण है-

बिना उरेहु करं बरवाना । हुता आपु मंड आपु समाना ॥^२

बह रंग-रूप- वातिरत्ति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी भरो दार्शनिकों का निरु-
पधि ब्रह्म है । बह ज्ञान है, आविचर है-

सरग न धरती न खंभ भ्रम,

बारम्ह न विषुन मत्त ।

बजर बीज बीरों अंत,

ओहि न रंग न भेत्त ॥^३

सूफ़ी अतवाद -

ब्रह्म निरूपण के विचार से मलिक मुहम्मद जायसी अतवादी प्रतीत
होते हैं-

जो किहु है ता है सब, जोहि किनु नाहिं जोई ।

जो मन चाहा सो किया । जो गाहे सो सोई ॥^४

तथा

एक से व्हा नहिं, बाहर भीतर बूझि छे ।

सांढा फु न समाइ, मुहम्मद एक म्यान मंड ॥^५

१- बल्लारह, ३०३

२- -बही- ३०४

३- -बही- ३०४

४- -बही- ३२४

५- -बही- ३३५

कुछ विद्वानों का कथन है कि मलिक मुहम्मद जायसी, मंझर आदि कवियों ने ब्रह्म और जीव के अन्धे सिद्धान्त अथवा अंतर्वादी रूप को भारतीय परम्परा से गृह्य किया है, हालांकि तत्त्वज्ञ के अभ्युदय के समय "राखिया कल अदयिह" (सन् ७५३ ई०) ने कहा था कि ब्रह्म और जीव में कोई अन्तर नहीं है। खेन भिन मंझर इलाज (सन् ६२२) ने अपने "अल ठक्क" (अल् ब्रह्मास्मि) के सिद्धान्त को निर्भीक्तापूर्वक संसार के सम्मुख रखकर तत्त्वज्ञ के अनुयायियों के लिए एक वाक्य उपस्थित किया था। तत्पश्चात् अनेक सूफियों जैसे इब्न-अल-अरबी, झिरी, गिज़ाली, अज़ार, इब्न सीना आदि ने भी अंतर्वादी भावनाओं को महत्त्व प्रदान किया।

उपनिषदों में "नास्ति द्वैत" (हान्दोग्य उपनिषद्), "एकमेवतत्" (बृहदारण्यक उपनिषद्) आदि सत्तात्मक शब्दों में अंत की क्रांति की गई है। जीव मूलतः ब्रह्म का ही व्यक्त रूप है।

हमारा विचार है कि हिन्दी सूफ़ी कवियों ने अंतर्वाद के अन्तर्गत एक प्रकार का समन्वयवादी रूप गृह्य किया है। उन्होंने अपने से पूर्व की चली आ रही सूफ़ी परम्परा के अन्तर्गत प्रस्तावित अंतर्वाद और भारतीयोपनिषद् के अंतर्वाद का समन्वय किया है क्योंकि सूफ़ी "अल ठक्क" और भारतीय "अहं ब्रह्मास्मि" में कोई अन्तर नहीं है।

काव्यनात (दृष्टि) -

हिन्दी सूफ़ी कवियों ने "दृष्टि रचना" के विषय में "क़ुबान शरीफ़" को ही आधार माना है। इस्लाम के अनुसार "बासमानों और जमीन में जो कुछ है, सब उसी का है, वह उसका बनाने वाला है। वह बरलाह जब किसी काम का हुक्म देता है, तो कहता है "कुन" अर्थात् "हो जा", और वह जो जाता है जो बरलाह

चाहता है। सृष्टि की रचना भी "हुन फ़ायकून" मात्र से हुई।

"क़ुरआन शरीफ़" के सूर अक़र की आयत ११५-११६ में कहा गया है कि "अल्लाह वह है जिसने निराधार आसमान ऊँचे किये बिना तुम देखते हो और वह जहाँ पर है और सूर्य व चन्द्र को एक निश्चित समय तक बर्तीभूत किया।" "सूर अक़र" की आयत २-४ में कहा गया है कि "वही है जिसने पृथ्वी का विस्तार किया और पहाड़ों व नहरों को रक्त और ख़ालि प्रत्येक मेघ में दोहरे बोंदों को। रात को दिन में ढाँचा, सत और बागों को बनाया।"

"सूर नूर" की आयत ४४-४५ में आया है कि "अल्लाह जो चाहें उत्पन्न करे वह प्रत्येक वस्तु पर अधिकारी है।" "क़ुरआन शरीफ़" में स्थान-स्थान पर सृष्टि रचना सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होता है और "हुन फ़ायकून" इस सब का मूल मंत्र है।

"हुन फ़ायकून" अर्थात् हुन कथना आदेश मात्र से सृष्टि की रचना के संबंध में कुछ नवी कहते हैं-

हं बेहिनाद कात यह करो ।^१

जायसी, ज़ैनु नबी आदि हिन्दी सूफ़ी कवियों के सृष्टि रचना विषयक विचार इस्लामी होने के साथ ही साथ भारतीय भी हैं। किन्तु जायसी द्वारा वर्णित सृष्टि रचना सम्बन्धी विचार इस्लाम के अनुसार हैं-

पवन होइ भा पानी, पानी होइ भा आग ।

आगि होइ भा भाटी, गोरख-धन्धे ठागि ॥^१

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण को ध्यान में रखते हुए हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि हिन्दी सूफ़ी कवियों का कालनात अथवा सृष्टि रचना सम्बन्धित वर्णन पूर्णतः क़ुरआन शरीफ़ पर आधारित है।

क़्यामत -

अरबी शब्द "क़्यामत" का अर्थ है "निर्णय का दिन"। इस्लामी विचारधारा के अनुसार मानव को इस जीवन के उपरान्त "क़्यामत" पर विश्वास रखना चाहिए। क़ुरआन हरीफ़ में क़्यामत का उल्लेख बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है। इस्लाम के अनुसार यह कादनात प्रकट और अन्तिम दृष्टि है क़्यामत पर सभी जीवात्माएं एकत्र होंगी। जीवन में किये गये उन कर्मों के आधार पर निर्णय लिया जायेगा। पुण्य-आत्माओं को बहिस्त (स्वर्ग) प्रदान की जायेगी और पापियों को जहन्नम (नरक) की अग्नि में डाल दिया जायेगा।

हिन्दी के सुफ़ी कवियों ने अपने काव्यों में क़्यामत का वर्णन किया है- सवाल-जवाब, सज़ा व नज़ा, बहिस्त व जहन्नम, फुल-र-सरात, सफ़ाया, वाक-र-कोसर आदि का क़ुरआन हरीफ़ के आधार पर इन कवियों ने उल्लेख किया है।

जायसी का आशिरी क़ावम तो क़्यामत से ही सम्बन्धित है। जबकि जायसी ने इस ग्रन्थ में क़ुरआन हरीफ़ और हदीसों को आधार मानकर क़्यामत का बहुत रोचक, विशाक़्क़ वर्णन किया है, किन्तु कहीं-कहीं पर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने से वे इस्लामी विचारधारा एवं विश्वासों से दूर हो गए हैं। जायसी ने "सद्माक़त" में भी क़्यामत के दिन का उल्लेख किया है-

गुन आंगुन विधि पूज्य, लोहहि छेत जो जोत ।
बे बिन उब जागे लोह, करब जगत कर मोत ॥^१

क़ुरआन हरीफ़ के अनुसार बुद्धा के प्यारे रसूल ख़ुरत मुहम्मद साहब अपने क़ु-

वायियों की लफ़ाक़्त ज़बान सिफ़ारिश, बुदा से, क्यामत के दिन करेंगे।
बाहिरी क़ात्त व पदनाक़्त के अतिरिक्त मधुनालती और छां ज़बाहिर बादि काव्यों
में भी क्यामत का उल्लेख किया गया है।

हिन्दी सूफ़ी कवियों ने बहिस्त के लिए स्फ़ा, केलास, कविलास बादि
भारतीय शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टि की रचना से
सम्बन्धित विचारों की भांति हिन्दी सूफ़ी कवियों ने क्यामत के कर्णन में भी झु-
बान शरीफ़ को ही आधार माना है।

पीर (गुरू)-

पीर-ख़ां-मुहिंदि या ख़ां ज़बादि फ़ाग़िल का सूफ़ी साधना में अत्यधिक
महत्त्व है। गंभीर ज्ञानी, परिपक्व, अनुभवी और पवित्र व्यक्ति को ख़ां या पीर-
ख़ां-मुहिंदि (गुरू) की संज्ञा दी जाती है। "पीर" साहिक "ज़बादि बवदीदात साफ़क़"
का अल्लाह की उपासना का सीधा मार्ग बताता है और उस भक्ति साधना सम्बन्धी
सूफ़ी मार्ग का निर्देशन करता है। पीर बही बन सकता है जिसने अल्लाह को साधना
द्वारा को ठीक प्रकार पहिचान लिया हो और अल्लाह ने उसे सद्बुद्धि दे रखी हो।

इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि संसार के सभी देशों तथा धर्मों में
गुरू को एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन भारत में
महान् गुरू जनों का बहुत आदर-सम्मान था। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में तो
कई कवियों ने तो गुरू को हरिहर स्वरूप ही नहीं बल्कि उसके भी महान् घोषित
किया है।

सूफ़ी मार्ग पर चलने के लिए साहिक को अपना एक आध्यात्मिक गुरू या
पीर बनाना आवश्यक होता है। पीर का एक-एक शब्द उसके शिष्य के ^{लिए} अन्तिम कानून
की हंसीयत रखता है। जो साहिक बिना किसी पीर के सूफ़ी मार्ग पर चलना चाहेता

है उसके लिए कहा जाता है कि उसका गुरु ज्ञान बन जाता है जो उसे पथप्रष्ट कर देता है। प्रसिद्ध सूफ़ी साधक कुन्वेरी का कथन है- "जब कोई साहिक उनको अपना गुरु मानता है तो साहिक को तीन वर्णों तक इलायत के आध्यात्मिक अनुशासन में रखा है। प्रथम वर्ण में उसे जन साधारण की सेवा करनी होती है। द्वितीय वर्ण में उसे बल्लाह की इबादत और सेवा करनी पड़ती है और तृतीय वर्ण में उसे स्वयं अपने हुक्म की निष्पत्ती करनी होती है- इन तीनों वर्णों की अवधि में सभी गये कार्यों में पूरा उत्तरने पर ही साहिक को सूफ़ी मार्ग में प्रविष्ट करते हैं और उसे "मुरीद" बना लिया जाता है।"^१

प्रसिद्ध कवि हाफ़िज़ का फ़ारसी में एक शेर है-

ब मैं सज्जाद : रंगीं कुन गरत पीर-ए-मुल्कांगोयद ।

कि साहिक बे नज़र न मुबद बे राहों-रस्मे मंज़िलहा ॥^२

अर्थात् यदि शेरु कहे शराब से मुस्तले को शराबोंर कर दे तो तू ऐसा कर डाल ।

इस शेर के सीधे अर्थ से तो साहिक और शेर दोनों ही इस्लाम के विरुद्ध बागी माने जायेंगे, किन्तु यहाँ पर आध्यात्मिक अर्थ लगाते हुए शेरु का आदेश साहिक को जिस सीमा तक मानना चाहिये । इसी बात का संकेत है ।

सफ़ियों में पीर या शेर का ऐसा महान् व्यक्तित्व है जो शिष्य अथवा मुरीद को मंज़िल तक पहुँचाता है।

हिन्दी साहित्य की सूफ़ी काव्य-परम्परा के अन्तर्गत सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमात्मानों की रचना फ़ारसी मसनवी शैली के आधार पर ही की है और

१- इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० २७

२- उक्त शेरु जन्मोहिम्मातुल तसव्वुफ़, पृ० १२०

अपनी रचना के प्रथम छण्ड में अथवा स्तुति छण्ड में नात, हम्द, मन्क़त आदि के साथ ही साथ अपने शेर, पीर-जो-मुशिद या गुरू की चर्चा भी करे की है ।

जायसी के अनुसार "पीर" या मुशिद या शेर या गुरू ही सच्चा पथ-प्रदर्शक होता है, उसकी सहायता के बिना साधक अपने चरम उदय की प्राप्ति नहीं कर सकता ।

जायसी गुरू की सेवा के बिना उद्धार का कोई अन्य मार्ग नहीं मानते-

जो चाळीस दिन सेवे, बार बहार कोइ ।

दरसन होइ मुहम्मद , पाप जाइ सब थोइ ॥^१

जायसी के अनुसार यदि गुरू की अनुकम्पा हो जाये तो सहज ही अधि-लक्षित कार्य का प्रदर्शन होकर भयं तक पहुँचा जा सकता है-

तिन्ह घर हो मुरीद , सो पीर । संवरत किनु गुन लावे तीर ॥^२

तथा

जो अस पूरुषाहिं सन बित लावे । इच्छा पूरे जास ललावे ॥^३

जायसी के अनुसार पीर (मुशिद) के साथ होने पर साधक को निश्चिन्त रहना चाहिए, क्योंकि वह पीर के हाथ में पूर्णतः सुप्राप्त है । जब नाव (साधना) का संकेत (पीर, गुरू) साथ में तो दूसरे तीर (परमात्मा प्राप्ति) तक कोपूँक पहुँचा जा सकता है-

महमद तहं निकिं पथ बेहि सं मुरशिद पीर ।

१- जायसी क़ताब , पृ० ३४२

२- -वही- पृ० ३४२

३- -वही- पृ० ३४२

बेहि रे नाव करि जा जो सेवक को पाव सो तीर ॥^१

बायसी के पदमावत के साथ रत्नसेन का गुरु हीरामन सोता है। कवि
उत्तमान के यहाँ नायक के साथ गुरु-रूप में 'परेवा' मिलता है। हिन्दी के सुफ़ी
कवियों ने विस्तार सहित गुरु मस्जिद का गान किया है। अपने को न जानकर,
इस्लाम से अपने को पूज्य मानकर जीव जलानान्धकार में भटकता रहता है, गुरु जान
दीप है, वह शिष्य को प्रेम पथ पर गतिमान करकेता है-

बिन गुरु पन्थ न पाइय भूँ सो जो भेट ।^२

जो गुरु से भेट हो जाने पर शिष्य के पशुप्रेष्ट होने का भय नहीं रहता -

के प वा गुरु मीठ, सो सुज मारग महं चं ।

सुज अनन्द भा दीठ, मुसलद साथी पोट बिमि ॥^३

'वति काम जेरी रंग' में ज़ुबा का होना उत्पन्न आवश्यक है-

रंगि जेरी काम वति ज़ुबा नाही संग ।

पन्थ जेठा बापुरा, किमि कर पावों कन्त ॥^४

कभी-कभी गुरु के रूप में ठा भी मिल जाते हैं, ऐसे धूर्त व्यक्तियों के संबंध
में भी सुफ़ी कवियों ने लिखा है-

तपी न होहिं भेस के किहें । रंग सुजु माता के छिहें ॥

मन के पाछें सुमिरें लोग । ध्यान बां सुमिरन सो, पूरा योग ॥^५

१- पदमावत, १६

२- बायसी गुंथावली, पृ० ६२

३- -वही- पृ० ३२२

४- चित्रावली, पृ० ४३

५- अनुराग बांछरी, पृ० ३२

सही प्रकार के आचार-विचारों द्वारा साधक बनने पर ही सच्चे गुरु की प्राप्ति होती है, जायसी ने कहा है-

आधुनि गुरु आप भा चेला ।^१

राजा रत्नसेन के लिए छु तो गुरु था ही-

गुरु सुना बेहि पन्थ दिखावा ।^२

किन्तु जायसी ने पद्मावती को ईश्वरस्वरूप होते हुए भी गुरु माना है-

सो पद्मावति गुरु हों चेला ।

बोग सन्त बेहि कारन खेला ॥^३

उस्मान कवि ने भी ईश्वर को मार्ग-दर्शक माना है-

पावे सोन तुम्हारा सो, बेहिं देलाबहु पंथ ।^४

गुरु भ्रमित को सही मार्ग दिखाता है, गुप्त रत्नों को उद्घाटित करता है और ईश्वर से साक्षात्कार करानेवाला है। गुरु ही साधक नाव को से कर पार पहुंचाने वाला है, उसी की कृपा से सब कुछ मिल सकता है-

गुरु मोह्वी सेवक से सेवा । चं उताड़ल बेहि कर सेवा ॥

बोहि सेवक में पाई करनी । उधरी बीभ प्रेम कवि जरनी ॥

वे सुगुरु हों चेला, नित बिनबों भा बेर ।

उन्ह हूँ देते पायउं, दरस गोसाईं केर ॥^५

१- जायसी गुंथावली, पृ० ३३४

२- -वही- पृ० ३३४

३- -वही- पृ० १०५

४- चित्रावली पृ० ४८

५- जायसी गुंथावली, पृ० ८

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी सुफ़ी कवियों ने पीर, मुरशिद, ज़ेद या गुरु को अपने काव्यों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

सुफ़ी कवियों की रहस्य भावना-

रहस्यवाद का कर्म से सीधा और सच्चा सम्बन्ध होता है जोकि बहुत विस्फूर्ति होता है। संसार के लगभग सभी कर्मों में भेद होते हैं भी उन कर्मों में मूलभूत एक प्रकार की सनाकता के दर्शन होते हैं जैसे सभी कर्म एक क्योंकि परम शक्ति या परम सत्ता में विश्वास रखते हैं जो इस दृष्टि का कर्ता, पालक और संहारक है, उसे अपने-अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार अलग-अलग कर्मों के द्वारा अल्लाह, परमात्मा, गार्ड आदि नामों से स्मरण करते हैं।

परम सत्ता के प्रत्यक्षानुभव का तत्त्व रहस्यवादी तत्त्व है और सभी कर्मों का मूलाधार वही रहस्यवाद है। परम सत्ता के इस संसार में अनन्त रूप दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी मनीषी उसको अनेक रूपों में देखकर भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त करते हैं।

प्रो० आर० डी० राणा है रहस्यवाद की परिभाषा को इस कहे हैं- "रहस्यवाद का अभिप्राय ईश्वर-देव्य सत्ता का मान उपभोग करना है।"

डा० रामकुमार काँ का कथन है-

"रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना ज्ञान और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।"

वास्तव में रहस्यवाद भौतिक जगत् और इसकी परिस्थितियों की विषमताओं के मूढ़ में विद्यमान एकात्मता की अनुभूति है जिस के कारण पूर्णता का अनुभव और अन्ततः मुक्ति की उपलब्धि होती है।

मुद्रा: रहस्यवाद शब्द संस्कृत भाषा के रहस्य तथा बाद दो शब्दों से मिलकर बना है, किन्तु वाक्य हिन्दी भाषा में रहस्यवाद अंग्रेजी भाषा में "मिस्टिसिज़्म" के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है।

इस्लाम और रहस्यवाद -

"इस्लाम" धर्म में रहस्यवादी साधना का सूत्र स्वयं क़ुरान मुहम्मद साहब के जीवन में उपलब्ध होता है। मुहम्मद साहब ने तापसी साधनों, रात्रि जागरण, व्रत, प्रार्थनाओं की उपयोगिता पर क़द दिया है। उक्त साधनों का प्रयोग वे स्वयं भी करते थे। आगे चलकर सूफ़ी साधकों ने इस रहस्यवाद का सूत्रपात एक आन्दोलन के रूप में तसव्वुफ़ में किया।

सूफ़ीवाद की स्थापना के प्रारम्भ में सूफ़ी इस्लाम धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे और उसके सिद्धान्तों तथा विधि विधेयों का अटल पालन करते थे। दूसरी क़ताबदी शिखरी में रात्रियाँ क़द बढ़ाकर एक महीना सूफ़ी सन्त ने सर्वप्रथम रहस्यवादी प्रेम का सिद्धान्त प्रचारित किया। उसके बाद ईश्वर के प्रति भक्ति और उसके मिलन के रहस्यों की अभिव्यक्ति लौकिकप्रमाण और सुरापान की शब्दावली में होने लगी। तत्पश्चात् सीरिया देश में सुलेमान अल-दरानी ने ज्ञान और जीवन के माध्यम से रहस्यानुभूति के सिद्धान्त की स्थापना की। तीसरी क़ताबदी शिखरी के पश्चात् सूफ़ी सम्प्रदाय के सुसंछिन्न होने के बाद उसमें साधना के पथ-प्रदर्शक ग्रंथों की रचना हुई। सूफ़ी साधना में दारिद्र्य, तप और यविक्तायुक्त जीवन आदि के लिए सङ्कलन की कृपा अनिवार्य रूप से स्वीकृत है।

भारतवर्ष के सूफ़ी साधकों को वेदान्तियों के अंतवाद ने बहुत प्रभावित किया तथा इस्लाम व हिन्दू धर्मों के समन्वित रूप से एक सामान्य भक्तिमार्ग का विकास हुआ। इस सामान्य भक्तिमार्ग के सर्वप्रथम प्रचारक कबीरदास थे। उनके

रहस्यवाद में साधना की प्रमुखता के कारण अपेक्षित सरसता न आ सकी ।

मलिक मुहम्मद जायसी ने साधनात्मक रहस्यवाद के स्थान पर भावनात्मक रहस्यवाद को अपनाकर सत्य की अत्यन्त सरस अभिव्यक्ति की और इस प्रकार साहित्य जगत में अपना अद्वितीय स्थान बना लिया है ।

हिन्दी सूफ़ी कवियों में रहस्यानुभूति -

सूफ़ियों ने भावात्मक रहस्यवाद को स्वीकार करते हुए "दृष्ट" के भीतर देखने के बजाय कण-कण में "उसकी" सना व्याप्त मानते हुए बाह्य कात् में उसे देखने का समर्थन किया है। उनके अनुसार मूल तत्त्व परमात्मा के प्रति साधक का आकर्षण उसी प्रकार होता है जिस प्रकार लोक में एक प्रेमी का अपने प्रिय पात्र के प्रति होता है । जिस प्रकार स्वप्नदर्शन, विषदर्शन, लुटा-भरणा या प्रत्यक्षा दर्शन द्वारा प्रेमी अपने प्रेमपात्र के प्रति आकृष्ट होकर उसे प्राप्त करने के लिए बधीर एवं उत्सुक हो उठता है, उसी प्रकार एक साधक भी अपने गुरु या पीर द्वारा परमात्मा की फलक प्राप्त कर उसके विषय में चिन्तन करता हुआ उसकी प्राप्ति के लिए बधीर हो उठता है। साधक संसार से विरक्त हो जाता है। अन्त में परमात्मा की प्राप्ति करके बहुत प्रसन्न होता है । साधक बाह्ये हुए भी अन्य व्यक्तियों को अपनी अनुभूति से पूर्णतः अज्ञात कराने में असमर्थ रहता है । इसीलिए सूफ़ी कवियों ने उस अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए किसी-न-किसी प्रेम-कथा का आश्रय लिया है, कवि द्वारा इस प्रेम-कथा में लोक तत्त्व के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यञ्जना की जाती है ।

मलिक मुहम्मद जायसी ने सूफ़ी कवियों की इसी परम्परा का पालन करते हुए अपने "पद्मावती" प्रेमास्थान में रत्नसेन-पद्मावती के माध्यम से साधक-साध्य के मिलन का वर्णन किया है। रत्नसेन और पद्मावती उक्त प्रेमास्थान में आत्मा और परमात्मा रूप में जायसी द्वारा प्रस्तुत किये गए हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद की रमणीयता के सम्बन्ध में कहा है- "हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अंती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्च कोटि की है।"

जायसी रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिए अत्यधिक रमणीय और नर्मरूपी दृश्य-संकेत उपस्थित करने में बहुत सफल रहे हैं। उदाहरणार्थ- पद्मावती के "पारस रूप" का प्रभाव दर्शनीय है-

जोहि दिन जोति दसन जोति निरमल । बहुं जोति जोति जोहि भ ॥
रवि ससि नक्त दिपहि जोहि जोति । रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जहं जहं बिहंसि सुभावहि छंती । सहं सहं छिटकि जोति परगसी ॥
दमिनि कमकि न सरबरी पूजी । धुनि जोहि जोति ओर को दूबी ॥^१

नवन जो देखा कमलभा, निरमल नीर परीर ।
छंसत जो देखा छंस भा, दसन जोति जा हीर ॥^२

उपरोक्त पंक्तियों में जायसी द्वारा उस परोक्ष ज्योति फुल की ओर अलौकिक दीप्ति के द्वारा संकेत किया गया है, उसकी रमणीयता और प्रभाव-विशदता अनुपम है।

जायसी की भावनात्मक रहस्य भावना -

मलिक मुहम्मद जायसी ने साधनात्मक रहस्य भावना की अपेक्षा भावनात्मक रहस्य भावना को ही अधिक महत्त्व दिया है।

जायसी के अनुसार प्रथमतः ब्रह्म और प्रकृति एक थे। परन्तु न जाने कैसे वे एक दूसरे से जुदा हो गये -

१- जायसी गुंथावली, पृ० ४४

२- -वही- पृ० २५

धरती-सराग मिले हुए दोऊ । केँ नितार के दीकह बिहोह ॥^१

तथा

उहै एक छि भी निह चिन्तू । दूसर ना हिं नाथ जोहि जन्तू ॥^२

अतः समस्त महाभूत 'उस' (परमतत्त्व) तक पहुँचने का प्रयत्न करते रहते हैं, असफल होने पर भी तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार वायसी सम्पूर्ण सृष्टि को 'उसी' के अन्तः-राग में डूबी पाते हैं।

इसी प्रकार वायसी को प्रकृति में किसी परम सत्ता का आभास होता है, उसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक कण में एक अनन्त सत्ता विद्यमान है। प्रकृति के समस्त तत्त्व उसी अनन्त सत्ता से चालित, अनुशासित और आकर्षित हैं। उसी परम सत्ता ने ही सम्पूर्ण दृश्य जगत् की रचना की है-

जाकर सबे जात यह साजा ॥^३

उसी परम सत्ता ने सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वन, पक्षी, समुद्र आदि की रचना की है, सारी सृष्टि का संचालन उसी के इशारे पर होता है-

सा बहु सब जन साज चलावा । जो जस पावैं ताजन्ह लावा ॥^४

नाथे होर जाठ जस नाचा । केँ सेलाई फेरि गहि लांचा ॥^५

उपयुक्त भावना कुराना शरीफ़, वेद, उपनिषद् और सूफी कवियों के

-
- १- बिहोहा, पृ० ६७
 २- -वही- पृ० ६७
 ३- -वही- पृ० ६५
 ४- -वही- पृ० ६५
 ५- -वही- पृ० ६५

काव्यों बंदायन, मधुमालती, बिजावली आदि में समान रूप से उपलब्ध होती है। इस दृष्टि की प्रत्येक वस्तु उसी परमसत्ता की प्राप्ति हेतु कार्यरत है।

भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए प्रकृति में परमसत्ता का भान करना अनिवार्य सा है। इसीलिए समस्त रहस्यवाद की प्रकृति के भीतर परमात्मा के बसने करते हैं।

“पद्माक्ष” में सिंह की घनी कमराह की अनिवर्णीय सुखदायी शक्ति का वर्णन करते हुए जायसी ने आध्यात्मिक संकेत किये हैं-

घन कमराह लाग चहुं पासा । उठा भनि कुलागि कसासा ॥
पथिक जो पहुँच सहि के घानू । कुल किरं सुख होइ बिसरामू ॥
जै पाव वह जाँह अनुपा । फिर नहि जाइ सह यह धूपा ॥

सूफ़ी कवियों ने प्रकृति को भी एक साधिका के रूप में प्रस्तुत किया है, वह प्रकृति भी परमपिय की साधना में निरत है। मानसरोवर साधक है, पद्माक्षी विराट् ब्रह्म व्योति रूप है, उसे देखकर सरोवर विस्मय-किमुग्ध है-

सरवर रूप किमोला, छि छिओरहि ठेठ ।
पाँव कुँ महु पावों, रहि मिस लहरहि के ॥^२

वास्तव में जायसी तथा अन्य सूफ़ी कवियों की रहस्य भावना बड़ी उच्च कोटि की थी, वे साधक संसार के प्रत्येक व्यापार में उसी परमसत्ता की झलक देखते थे। प्रकृति उस परमसत्ता के किमोम से उन कवियों को दुर्लभ प्रीति होती थी।

१- जायसी गृध्रावली, पृ० १०-११

२- वही- पृ० २५

प्रतीक-रहस्य-भावना -

जायसी पद्मावती को ईश्वर के प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हुए पद्मावती का जो रूप-सौन्दर्य कर्मान्तरात्मिका नर-लिंग कर्मान्तरात्मिका है, वह शक्तिमय है। वहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि जायसी ने ईश्वर को पत्नी अथवा प्रेयसी रूप दिया है और जीवात्मा को पति अथवा प्रेमी के रूप में चित्रित किया है, जबकि भारतीय मनीषा ईश्वर को पति के रूप में जीवात्मा को पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार जायसी ने पद्मावती को ईश्वर के प्रतीक रूप में गृह्य करके साध्य-साधक अथवा ब्रह्म बीज के भारतीय रूप को एकदम उलटकर रख दिया है। जायसी द्वारा प्रस्तुत इस प्रतीक के मूल में सफ़ी मान्यता का प्रभाव स्पष्ट है।

“पद्मावती” के २१ वें छण्ड में जायसी ने भगवान् शंकर को पद्मावती के दिव्य रूप-सौन्दर्य के वर्णन मात्र से मूर्च्छित होते चित्रित किया है। उन भगवान् शंकर को बेहोश होते दिखाया जिनके तीसरे शिव नेत्र द्वारा स्वर्ग “कामदेव” भस्म हो गया था। रत्नसेन ने जब शिव पर आरोप लगाया कि उन्होंने उसकी सहायता नहीं की तो भगवान् शंकर ने उत्तर दिया- जरे, फाटे, देक्ता तो तुझ से भी पहले ब्रह्म-वाक्ता हो चुका है, रावकुमारी पद्मावती अपनी सतियों सहित वहाँ जाई थी, उसके क्लृप्त चन्द्रबदन को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो गृह्यारा सेवित स्वर्ग चन्द्र उपस्थित हो, उस अपाधिब दीप्ति को निहार कर मैं मूर्च्छित हो गया, मेरी सारी केना ही उसके रूपपाश में बंध कर रह गई -

देव कहा सुनु कोरे राजा । देवहिं जलन मारा गजा ॥
 जो पहिले अपने सिरपरह । सो का काहु के धरहरि करह ॥
 पद्मावती राजा के वारी । जाई सतिन्ह सो मंडप उवारी ॥

जैसे चांद गोले सब तारा । परेड भुंदा देति उजियारा ॥

चमकें दसन दीप की नाई । नैन कहु कमलात भवाई ॥

हो, तेहि दीप पलंग होइ पर । किउ कम गहा सरग भरा ॥^१

जायसी का उपर्युक्त कथन हिन्दू धर्म तथा भारतीय मान्यता से मेल नहीं खाता है परन्तु क्योंकि रूप-गुणमा के सर्वातिशयी मोहक प्रभाव का चित्रण इससे बढ़कर नहीं किया जा सकता । इस प्रकार जायसी ने पद्मावती को आदर्श सौन्दर्य की प्रतिभा और प्रतीक के रूप में चित्रित किया है और इस चित्रण में अपनी समस्त वृत्तियों को ईश्वर के उस पदा पर केन्द्रित कर दिया है जिसे आदर्श सौन्दर्य कहा जा सकता है।

जायसी मुसलमान पक्षे थे, सूफ़ी और कवि वाद में । इसी लिए उन्होंने कुरबान शरीफ़ में वर्णित "नूर-ए-बहाही" की सूदनातिसूदन कल्पना करके पद्मावती (ईश्वर) के सौन्दर्य का वर्णन करने के प्रयास किया है। एक प्रतिभा-संपन्न कवि की कल्पना नूर या ज्योति के सम्बन्ध में जहां तक पहुंच सकती है, उसी को जायसी ने पद्मावती के सौन्दर्य रूप में चित्रित किया है। यहां तक भारतीय देवताओं तक को उस परमसौन्दर्य के सम्मुख मुच्यति होते दिता किया है ।

किन्तु जायसी तथा अन्य सूफ़ी कवि अपनी रहस्य-भावना और अंतर्वादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते समय इस्लाम से बहुत दूर हो गये हैं क्योंकि एक सच्चा मुसलमान, जीवात्मा और परमात्मा में किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता । अतः सूफ़ी कवियों की रहस्यभावना तसव्वुफ़ और भारतीय मान्यता के लक्ष्याधियों के लिए प्रिय हो सकती है , किन्तु एक सनातनी मुस्लिम के लिए ऐसा सोचना भी शिक है, एक जज़ीम गुनाह

हैं, एक मलान् पाप हैं । सूफ़ी कवियों ने अपने उत्पत्ति की प्राप्ति के लिए सूफ़ी साधना और भारतीय मान्यताओं में समन्वय तो त्वर्य किया है किन्तु वे मुसलमान होते हुए भी इस्लामी सिद्धान्तों के विरुद्ध रचना करते हैं । यह इस्लाम से अज्ञात है ।

हिन्दी सूफ़ी कवियों की प्रेम-साधना -

सूफ़ी-साधना तथा प्रेम-साधना -

सूफ़ी साहित्य में इबादत (साधना) और इश्क़ (प्रेम) को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है। संसार के सभी सूफ़ी साधकों की साधना "प्रेम" पर आधारित है क्योंकि सूफ़ी साधना-मार्ग वास्तव में "प्रेम-मार्ग" है। "तसव्वुफ़" के प्रारम्भ में ही जो सूफ़ी साधकों में "प्रेम-रूप" के दर्शन होते हैं। एक प्रकार से प्रेम तसव्वुफ़ का सार है और यदि "सूफ़ी दर्शन" को "प्रेम-दर्शन" की संज्ञा प्रदान की जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी।

"तसव्वुफ़" में इश्क़ या प्रेम का स्वरूप अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। "तसव्वुफ़" में "शुद्धि" (इरीवर) द्वारा इस "कायनात" (सृष्टि) के निर्माण सम्बन्धी अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की गई हैं और उन कल्पनाओं के माध्यम से "इश्क़" अथवा प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

नूर (ज्योति)

डा० मुहम्मद इनाम-उल-हक़ ने एक स्थान पर लिखा है कि "अनेक सूफ़ियों की मान्यता है कि परमात्मा अपनी असीमता में अकेला था, ऐसा कोई न था जो कि उसकी सुन्दरता की प्रशंसा कर सके। एक बार उसने अपने सौन्दर्य की भूलक देती और उसकी पूर्ण अनुभूति के लिए उसने अपने स्वत्व को प्रकट किया। अपने अभिव्यक्त सौन्दर्य को देखकर वह मुरझ तथा प्रेम डीन हो गया। इस पर उसने प्रेम को प्रकट किया और मानव की सृष्टि की ताकि वह उसका सह भागी बन सके।"

“सूफ़ियों का एक बहुत बड़ा कार्य उक्त बात को मुहम्मद साहब से संबंधित करके करना है, उनके अनुसार अभिव्यक्त होने की इच्छा उत्पन्न होने पर परमात्मा ने अपनी ज्योति से एक और ज्योति का निर्माण किया वह ज्योति “नूर-ए-मुहम्मद” थी। परमात्मा “नूर-ए-मुहम्मद” पर मुग्ध हो गया और यही प्रेम का प्रथम प्राकट्य था।”^१

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों के सम्बन्ध में कुछ कहने से पूर्व हम देखें कि इस्लाम धर्म तथा कुरआन शरीफ़ इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं? कुरआन शरीफ़ में एक सूरा “अन्नूर” है। इस सूरा में कहा गया है “अल्लाह जानमानों और ज़मीन का “नूर” है। उसके नूर की मिसाल ऐसी है, जैसे एक दीक़ हो, जिसमें चिराग़ हो और वह चिराग़ एक फ़ानूस में हो। वह फ़ानूस ऐसा हो मानो वह एक चमकता हुआ तारा हो। अल्लाह अपने “नूर” की ओर जिसे चाहेता है, राह दिखाता है।”^२

“सूरा अलज़ाव” में आया है “हे नबी (मुहम्मद) हम (अल्लाह) ने तुझे सुलसवरी देने वाला बनाकर भेजा और अल्लाह की ओर से उसके हुक्म से रोशन चिराग़ बनकर।”^३

“सूरा तगावुन” में कहा गया है “हमारे लाजो अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस “नूर” पर जिसे हमने उतारा।”^४

इसी प्रकार “नूर” का अर्थ क्या बताने “सूरा सफ़फ़” में इस प्रकार कहा है, “अल्लाह जाहिलों को राह नहीं दिखाता, जो चाहते हैं कि अल्लाह का “नूर” अपनी फूकों से बुझा दे।”^५

१- सूफ़ी मत और साधना और साहित्य, पृ. ३२६

२- सूरा नूर (कुरआन शरीफ़), आयत ३५

३- सूरा अलज़ाव (कुरआन शरीफ़), आयत ४६

४- सूरा तगावुन (कुरआन शरीफ़), आयत ६४

५- सूरा सफ़फ़ (कुरआन शरीफ़), आयत ८

क़ुरआन शरीफ़ की उपर्युक्त सूरतों में अल्लाह के नूर तथा मुहम्मद साहब के नूर की बात स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की गई है। अतः इस्लाम और क़ुरआन की इ ये "नूर-ए-इलाही" और "नूर-ए-मुहम्मदी" वाली बात एकदम सत्य एवं सनातन है। अब रह गई बात कि अल्लाह ने अपने नूर से सर्वप्रथम सर्वप्रथम मुहम्मद साहब का नूर क़य्या ज्योति बनाई फिर उसी की प्रीति में इस कायनात क़य्या सृष्टि की रचना की। इस सम्बन्ध में क़ुरआन शरीफ़ एकदम मौन है। किन्तु कुछ हदीसों क़य्या ऐसी हैं जिनके आधार पर उक्त बात सुफ़ी और पैर क़य्या हैं। इस प्रकार की दो हदीसों निम्नलिखित हैं-

१- "अच्छा मा क़ल्लाहो नूरी क़य्या मिन्नूरिल्लाहे- व मुसू ज़ेन मिन नूरी।"

२- "कुन्तो कन्ज़न मज़फ़ियन् क़वह्वकतो अन ज़रफ़ा क़ल्लक़तसु।"

इन दोनों हदीसों में इसी भाव को व्यक्त किया गया है कि अल्लाह ने सर्वप्रथम नूर-ए-मुहम्मदी को अपने क़य्या से बनाया और उसी "नूर-ए-मुहम्मद" की प्रीतिस्वरूप सृष्टि की रचना की।

सुफ़ियों ने क़ुरआन शरीफ़ की नूर सम्बन्धी आयतों को और उपर्युक्त हदीसों पर बहुत अधिक चिन्तन किया है। जब सुफ़ी सूदम अनुभूतियों की ओर बढ़ते हैं तो उस दिव्य शक्ति क़य्या अल्लाह को "नूर" कहकर अभिहित करते हैं तथा जब सूदम चिन्तन से स्थूल चिन्तन की ओर उतरते हैं तो वे मुहम्मद साहब को "नूर" कहकर अभिव्यक्त करते हैं और जब बिल्कुल ही स्थूल होकर जगत् की बात करते हैं तब भी इस जगत् को उसी नूर से प्रकाशित करते हैं तब भी इस जगत् को उसी नूर से प्रकाशित मानते हैं और वे क़य्या हैं कि अल्लाह परम सौन्दर्य या नूर है, इसीलिए प्रेम का पात्र या प्रीतिम भी है। सुफ़ी अल्लाह को परम आकर्षण्य मानते हैं।

हृदय माधुर्य भाव का आधार है। हृदय में निमग्नता जाने पर उसका आभास मिलता है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रियजन का वास हृदय में है -

हिरण्य भीतर पीठ बसे, भिले न पूछो कहि ।^१

जायसी ने अल्लाह को मूर या अनन्त सौन्दर्य मानते हुए ही पद्मावती के रूप की भी ऐसी ही उफ़ा दी है ।

हिन्दी साहित्य में प्रकाश, ज्योति के मूर खूब को लेकर बहुत बर्ण मिलती है।

हरक (प्रेम)-

‘तसव्वुफ़’ के प्रारम्भिक युग के सूफ़ी अज़ाब-ए-इलाही (हरिवर प्रदत्त कण्ड) से, जहन्नूम से बचने के लिए और जन्नत की प्राप्ति के लिए मुहब्बत, तसव्वुफ़ व तस्लीम-ओ-रज़ा पर ही अधिक जोर देते थे और उनकी मान्यता थी कि अल्लाह ही एक मात्र इबादत लायक है ।

तत्परचाहू धीरे-धीरे सूफ़ियों ने अल्लाह से सम्बन्ध स्थापित करने का एक अन्य मार्ग ढूँढ़ निकाला और वह था ‘हरक’ या प्रेम । इस सम्बन्ध में बहरा की मशहूर सूफ़ी राबिया बिरोण उल्लेखनीय है। इस युग के सूफ़ी सांफ़-ए-बुदा के बजाय हरक-ए-बुदा में हब गये ।

क़ुत्बान शरीफ़ और हदीसों में अनेक स्थानों पर मुहब्बत (प्रेम) की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, उदाहरणार्थ-

“और जो इमान लानेवाले हैं उन्हें सबसे बढ़कर ‘मुहब्बत’ अल्लाह से ही होती है, नहीं मोमिन हो सकता है तुमसे से कोई यहाँ तक कि मैं ‘महबूब’ हो जाऊँ उस शक़्स को--- ।”^२

१- जायसी ग़ुंथावली, पृ० २७६

२- क़ुत्बान शरीफ़ - सूरत बकर, जायत १६५

इसी संतान्य से सम्बन्धित एक हदीस इस प्रकार है-

“ता यो यिनो अहदो कुम ला अहना अहना इलेहं मिन बाउदेही व कलेही वन्नासे अबमईन ।” (बुद्धारी व मुस्लिम)

इश्क की सामान्य व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि किसी वस्तु की विशेषताओं पर जब मन बाहुल्य होता है तो उस वस्तु को मुख्यतः कहते हैं किन्तु यही मुख्यतः जब बढ़ते-बढ़ते जब चरमसीमा पर पहुँच जाती है तो इश्क कहलाती है और वाशिक (प्रेमी) और माशुक (प्रिय, प्रेयसी) के बीच के सम्बन्ध की एक कड़ी बन जाती है जिसके द्वारा नैकदय प्राप्त होता है अर्थात् वात्सानुभूति प्राप्त होती है ।

“तसकूफ़” का तात्पर्य-स्तम्भ इश्क है । सूफ़ी इश्क को एक अथाह सागर बताते हैं और वहाँ तक कहते हैं-

“अल इश्क-को-शेखल अल्लाह, सूफ़ी पूरी कायनात का मूल इश्क को ही मानते हैं । इस बात की पुष्टि के लिए सूफ़ी निम्न हदीस प्रस्तुत करते हैं-

“इज़ा अहक़ातों उन जो अरेफ़ा फ़ज़लक़तून क़लक़ ।” अर्थात् मैंने चाहा कि मैं पक्ष्याना जाऊँ वस मैंने पैदा किया ।

कुछ सूफ़ियों ने इश्क वाशिक और माशुक का एक ही माना है और कहते हैं कि वाशिक वह है जो अल्लाह के नूर पर वासका हो । वाशिक जब सारी सीढ़ियाँ पार करे और उसका व्यक्तिगत इश्क केवल परमात्मा के लिए हो जाता है, तभी पूर्ण बनता है ।

इब्न-अरबी का यह दावा है कि इस्लाम क़िदाय़ा इप ओहदक़ेअल अरज़ालक़ेअल ओहदक़ेअल ओहदक़ेअल से इश्क का र्थ है क्योंकि फ़ाख़र मुहम्मद साहब को हबीब-अल्लाह अर्थात् परमात्मा का प्रिय कहा गया है जिससे सूफ़ियों ने सदा भाव की भक्ति का सूत्रपात किया । इसके अतिरिक्त अल्लाह के अनेक नामों

जोर गुणों में "बावदूदों" ज़्यादा नेकी को दोस्त रखनेवाला ज़्यादा दोस्तों का मल्जुम या प्रिय, भी एक नाम है। सूफ़ियों की इस मान्यता का हिन्दी साहित्य पर भी स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रसिद्ध सूफ़ी साधक इश्क़ या प्रेम को अनेक रूपों में प्रकट करते हैं-

"इश्क़" अरबी इश्क़ को ईश्वर की उपासना का उच्चतम रूप मानते हैं।

"गुनाही" कहते हैं - "सौन्दर्य वह है जो इश्क़ या प्रेम को जन्म देता है," और इस बात से उनका अभिप्राय "गूर-ए-इलाही" ही से है।

मंसूर हल्लाज की दृष्टि में "इश्क़ प्रभु के सत्य का सार है।"

हिन्दी सूफ़ी काव्य में इश्क़ ज़्यादा प्रेम -

हिन्दी के सभी सूफ़ी कवियों ने भाव-विश्व लेकर प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। जायसी को तीन लोक, बाँदह छण्डों में प्रेम से अधिक कोई सुन्दर और कमीय पदार्थ नहीं दिखाई देता वे कहते हैं-

"तीनि लोक बाँदह संढ सबे परे मोहि सूझि ।

प्रेम झाँढि किछु और , लोना जो देखो न सूझि ॥"

जायसी के अनुसार मनुष्य प्रेम के कारण ही देवी हो उठता है, अन्यथा वह रात की मुठ्ठी के अतिरिक्त और क्या है-

"मानुष प्रेम भरत बंछी, नाहि कह शर एक मुँठी ।"

कवि उस्मान का विचार है कि सबसे पहले परमात्मा ने प्रेम को बन्धन किया और इसीलिए सृष्टि की रचना हुई-

“जादि प्रेम विधि के उपराजा,
प्रेमहि लग जातु सब जाना ।”^१

उस्मान कहते हैं-

“कों में प्रेम की रस पीया,
मरें न मारें का कु जीया ।”^२

क्योंकि प्रेम एक ऐसा तत्त्व है जिसका रसपान करके मानव ऊपर हो जाता है।

“मंझन” इस बात में प्रेम को अमूल्य मानते हैं। उनके अनुसार इस इन्द्रिय-गोचर सृष्टि में उससे विवर्जित कुछ नहीं है। मंझन के अनुसार जिसके हृदय में प्रेम है, वह धन्य है। प्रेम की ज्योति से ही संसार में प्रकाश हुआ है। कोई वस्तु इसकी तुलना नहीं कर सकती। कोई विरला सांभान्यशाली ही इसे पा सकता है-

“प्रेम पदार्थ जात अमोला,
निहंन बिबं जानहु यह बोला।
देला सुना जहां छवि होई,
प्रेम विवर्जित किहु नहीं सोई ॥”^३

सूफ़ी काव्य परम्परा में हिन्दी सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमात्मियों ने “प्रेम” की जो “पीर” दिखाई है, वह फ़ारसी के सूफ़ी कवियों तथा दाहीनकों से

१- चित्रावली, पृ० १३

२- वही- पृ० २३६

३- वही- मधुमालती, अन्ध २६

बहुत ही प्रभावित है और हिन्दी के संत कवियों ने सूफियों के प्रभाव में इश्क, जाशिक, मासूम शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है।

एक बात बिल्कुल निर्विवाद और स्पष्ट है कि "सूफी चाहे किसी को प्रेम का पात्र कहे, परन्तु उनका प्रियतम परमात्मा ही है। उसी जल्लाह कपी प्रियतम को वे अपने प्रेम का जालध्वन मानते हैं। उसी के प्रेम में समस्त संसार को निमग्न देखते हैं। प्रेम के फुल पर खलर ही सूफी साक भक्तांगार पार करते हैं। प्रेम ही उनका कर्मोप ज्ञान या परम साधन है।"^१

वस्तुतः सूफी साधकों का प्रधान लक्ष्य कायनात के ज़र्रे ज़र्रे में क़दा का जलवा देवना है ज़हवा क़्या-क़्या में प्रियतम को देवना, उसके प्रेम-विरह में तड़पना, फ़ोष करना आदि का ज्ञानन्द उठाना है। प्रियतम के साक्षात्कार और चिर मिलन का ज्ञानन्द उठाना है। बायसी, क़ुब्रन, मंज़न आदि कवियों ने ज़ाकि प्रेम के बताने पारज़ाकि प्रेम का वर्णन किया है। वे कवि अपनी साधना द्वारा निराकार प्रेम प्रभु की आरती उतारते हुए अपना सब कुछ उसी में निमग्न कर के हैं। पद्मावत, मधुनालती, इन्द्राकती आदि में प्रेममार्ग, उसका मक़्दद, प्रेम की गरिमा, उसका सौन्दर्य, उस पंथ की कठिनाई आदि का स्फ़ान-स्थान पर क़वन्त सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसका हृदय प्रेम बाणों से बिद्ध है, वही इसके मर्म को जानता है।

सूफी प्रेम का लक्ष्य-

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूफी साक एवं कविमण्ड में वही भाव लेकर चलते हैं कि जल्लाह ने रसूल (मुहम्मद साहब) के प्रेम में सृष्टि की रचना की तथा

१- पद्मावत का काव्य-सौन्दर्य, पृ० २२१

प्रेम का ही प्रकट रूप इस दृष्टि को मानना चाहिए, अतः प्रेम की स्थिति इस संसार में इसीलिए अनिवार्य सी है ।

सूफियों के प्रेमात्मानों का चरम उच्च ईश्वरीय प्रेम है और इन्होंने आत्मा के उन्नयन के लिए प्रेम का संदेश दिया है जिसके माध्यम से मनुष्य-मनुष्य के बीच आर्त-कुल संकीर्णताओं को तोड़ा है और ये सूफ़ी इश्क-ए-मजाज़ी अर्थात् मानवीय प्रेम से इश्क-ए-क़ीकी अर्थात् ईश्वरीय प्रेम की ओर उन्मुख होते हैं। अतः सूफ़ियों की संपूर्ण साधना इश्क या प्रेम पर ही आधारित है ।

बायसी कहते हैं कि प्रेम का तेल कठिन तो है किन्तु जिसने यह तेल रेंगा, वह तर गया । जो प्रेम के रंग में रंग जाता है उसकी भूल, नींद आदि सब जाती रहती है-

“भेहि प्रेम है कठिन चुला । कु का तरा प्रेम जेह तेला ।
जो नहीं सीस पे पथ लावा । तो प्रियिनी महं कोलक जावा ॥”^१

तथा

“जेहि के लिये प्रेम रंग जाना । का तेहि भूल नींद बिचरामा ॥”^२

उस्मान और नूर मुहम्मद आदि सूफ़ी कवियों की भांति अनेक अन्य कवियों ने प्रेम की मल्ला का सहोगान किया है ।

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमात्मानों में यदि प्रेम के स्वरूप को देखना हो तो हमें यह बात स्मरण रहनी चाहिए कि हिन्दी सूफ़ी कवि इस्लाम धर्म का बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे और इस्लाम में उन कुछ आस्था भी थी । उन लोगों की दृष्टि में कुरान इदीस तथा अरबी-फ़ारसी सूफ़ियों की परम्परा भी थी, इसीलिए ये सूफ़ी बल्लाह के स्वरूप के विषय में सहमत हैं ।

१- बायसी गुंथावली, पृ० ४०

२- -वही- पृ० ५८

जायसी ने पद्मावत में कहा है कि बरहाह एक है, वह जलत है, कप है, फुट और गुप्त सभी स्थानों का इलाका गिये हुए है, न उसके कोई पुत्र है, न माता-पिता । जायसी का यह वर्णन कुरान शरीफ के सूर अक़लास (११२) का अनुवाद है। जायसी कहते हैं-

जलत कप कुरान सो बता ।

वह सब सो सब जोहि सो बता ॥

परगट गुफा सो सरब बिजायी ।

धरमी नीन्ह, न नीन्ह पापी ॥

ना जोहि धू न पिता माता ।

ना जोहि कुटुंब न जोहि संग नाता ॥

जना न जाहु, न जोहि जोहु जाना ।

जहं लुगि सब ताकर सिरबना ॥^१

मर्दन कहो है-

निरगुन एककार गुसाई ।

जलत निरबन करता ।

एक कप बहु भेस ॥^२

उस्मान कहो है-

जाप कुरति पुरति उपाई ।^३

१- जायसी गुंथावली, पृ० ३

२- मधुसालती पृ० ४

३- चित्रावली पृ० २

शेरु नबी का कथन है-

पाक पवित्र एक जोह करता ।
कलस करत पातक करता ॥^१

उपर्युक्त सभी कवि तथा अन्य सूफ़ी भी ज़लाह को पाक, मिठा, कलस, कर्तुर् मानते हैं ।

जायसी और शेरु नबी तरीक़ा के पावनन्द सूफ़ी ज़लाह (गुफ़्टा) और जायनात गुफ़्टि में किसी प्रकार की रक़्ता का सम्बन्ध नहीं मानते, उसने सम्पूर्ण नार की रचना की है किन्तु उसके नूर का प्रकाश संसार में है।

जायसी का कथन द्रष्टव्य है-

ना वह मिला ना बेहरा कलस रहा भरपूर ।
दिस्तिख़्त कहां नीकरे अंध मुख कहां दूर ॥^२

तथा

शेरु नबी कहते हैं-

बो ही के रूप सब होत सकपा ।
बोह निरूप नहिं काहुं अपा ॥^३

हवीसों के ही आधार पर हिन्दी सूफ़ी कवि कहते हैं कि ज़लाह ने मुहम्मद के नूर को सबसे पहले बनाया -

पहले नूर मुहम्मद कीन्हा ।

१- जानदीप, पृष्ठ १

२- जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ ३

३- जानदीप, खण्ड २

पाँखें तेहि क बनता सब कीन्हा ॥

अपनी दिखि जाइ वह करी ।

सोवें तहें जात सत तेरी ॥^१

तथा

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा ।

नाउं मुहम्मद पुनिउ करा ॥

प्रथम बोति विधि तेहि करवावी ।

जो तेहि प्रीति सिष्टि उपरावी ॥^२

तथा

प्रथमहि जादि प्रेम प्रविष्टि ।

पाँखें भई सकल सिरिष्टि ॥

उतपति सिष्टि प्रेम जो जाई ।

सिष्टि रूप भर प्रेम सवाई ॥

जात बनमि जीवन फल ताही ।

प्रेम पीर उपवी विव जाही ॥^३

उपर्युक्त सभी उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बल्लाह द्वारा सृष्टि की रचना ही प्रेम के कारण कताई जाती है तब इस बात में तो प्रेम की महत्ता अनिवार्य होनी ही चाहिए। इसीलिए सूफ़ी कवि प्रेम को अधिक महत्ता देते हैं। प्रेम और सौन्दर्य, प्रेममार्ग की कठिनाइयों और प्रेम तथा विरह का इन सूफ़ी कवियों ने बड़ा व्यापक चित्रण किया है। हिन्दी के प्रेमास्थानों ने ये सूफ़ी कवि

१- गुणावती,

२- जायसी गुणावती, पृ० ४

३-

भारतीय कथाओं को लेकर ठोक्कि प्रेम से ठोक्कि प्रेम की ओर बढ़े हैं।

हरक-ए-नवाजी और हरक-ए-लकीकी -

एक हुज्वेरी ने एक स्थान पर कहा है-

“प्रेम प्रियतम की प्राप्ति के लिए विच्छेदता का ही नाम है।” वह
हरवरीय प्रेम क्लृप्ता बनाता है कि उसमें एक बार फंसकर व्यक्ति मोक्ष की कामना
ही नहीं करता। इस प्रेम बन्धन में बंधा हुआ व्यक्ति छूटना ही नहीं चाहता-

अतीरस न ज़ाहद रिहाई ने बन्द ।

शिकारस न ज़ाहद ज़ाहद अब कमन्द ॥^१

एक स्थान पर उमर श्याम कहते हैं-

मय कुच्छते जिस्मो कुच्छते जानस्त मरा ।

मय काशिकुं अरारै मिहानस्त मरा ॥

दीगर कहुं दीनवो उक़्बा न कुम् ।

यक बुर्जा पूर अब हर दो जहानस्त मरा ॥^२

क्याच वास्तव में प्रेम की मदिरा बहुत ही गुणकारी है, उसके शरीर और प्राणों
को शक्ति प्राप्त होती है, उसके पीने से वह रक्तस्रोतों में उद्विग्न होता है। कतः में
उस मदिरा का एक घंट पीना चाहता हूँ पीने के बाद मुझे जीवन और मृत्यु की

१- हरान के सुफ़ी - शेर सादी, पृ. २२४

२- वही- उमर श्याम, पृ. ५१

चिन्ताएं न बताएंगी ।

वासना के बहिष्कार के साथ ही लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है । सूफियों के अनुसार "इश्क-ए-मजाज़ी" (सांसारिक प्रेम) वगैरह "इश्क-ए-हकीकी" (ईश्वरीय प्रेम) का प्रथम सोपान है। सम्पूर्ण सूफ़ी प्रेमकाव्य इसी पर आधारित है ।

सूफ़ी साधक स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि इश्क-ए-मजाज़ी, इश्क-ए-हकीकी की सीढ़ी है और इसी के द्वारा इंसान खुदी को भिटाकर खुदा बन जाता है। सूफ़ी साधकों को अपने इस भाव को प्रकट करने पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था- खुदा के इश्क में जलमस्त मंसूर को "तल्लुल्लुक" कहने पर फांसी दे दी गई थी । राबिया को अनेक दुःख भोगने पड़े थे ।

सूफ़ियों में प्रेम या इश्क का बहुत मान है, उनके लिए प्रेम ही कर्म है, प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही पंथ है और वहां तक कि परमात्मा कभी प्रेममय है। इसी प्रेम से हिन्दी सूफ़ी काव्य जोत-प्रांत है। हिन्दी सूफ़ी काव्य की प्रत्येक कहानी का मूलाधार प्रेम ही है। सूफ़ी प्रेमात्मानों का उद्देश्य प्रेम की विजय दिखाना ही है।

प्रियतम से मिलन ही सूफ़ियों का परम लक्ष्य है । इस संदर्भ में साधक के अस्तित्व की समाप्ति हो जाती है । उसका वह भाव नष्ट हो जाता है। विरह, वेदना, क्लृप्ता आदि अनेक कठिनाइयों को पार करके ही प्रियतम की प्राप्ति संभव होती है । फ़ारसी और हिन्दी के समस्त प्रेमात्मानों में नायक को अनेक कष्टपूर्ण स्थितियों से गुज़ारा गया है और इन्हीं परिस्थितियों में तपकर वह नायक कुन्दन बनकर निकलता है और अन्ततोगत्वा अपने प्रियतम की प्राप्ति करता है । सच्चा साधक मृत्यु का भय नहीं करता, क्योंकि मृत्यु तो उसके प्रिय के मरने का रास्ता है। उसके बिना उस तक पहुंचना ही नहीं सकता ।

सावक इशक के मजहब पर चलता है। प्रेम पय के पथिक को बुद्धि का आशय त्याग कर अज्ञा और विश्वास के सहारे आगे बढ़ना होता है। तुवाजा महुन्गुन चिन्ती ने कहा था कि - "रे महुन ! कलु की आँख से दोस्त का छुन न देख, तू मजनू की आँख से लुटा के छुन को देख ।"^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण सूफ़ीवाद एवं सूफ़ी साहित्य में प्रेम का ही डंका बज रहा है। सूफ़ी कवियों ने जागतिक सौन्दर्य को रक्ष्य हरिबरीय सौन्दर्य के प्रेम सूत्र में बंधा हुआ माना है और इसी को अकलमन पाकर जीव उस प्रेममय रूप तक पहुँच सकता है ।

विरह-भावना क्या प्रेम की पीर -

"पद्मावत" और "चित्ररेता" में जायसी ने अपनी प्रेम-साधना का सविस्तार विवेचन किया है।

चित्ररेता में जायसी कहते हैं-

जब उगि विरह न लोई तन लिये न उपवस पेम ।

तब उगि हाथ न जाव तप, करम, धरम, सत, नेम ॥^२

अर्थात् विरह का हृदय में उत्पन्न होना बहुत ही आवश्यक है ।

जायसी के "पद्मावत" की समस्त कथा का केन्द्र "प्रेम-साधना" ही है। जायसी ने स्वयं को "प्रेम मधु-भोरा" कहा है-

महुनद मलिक प्रेम मधु भोरा ।

१- दीवान-२-तुवाजा गुरीब नवाब, पृ० २४

२- चित्ररेता, पृ० ७७

उन्होंने प्रेम प्रीति का अन्त तक निवाह किया है-

हाथ पिवाला हाथ घुराही ।

प्रेम प्रीति छड़ जोर निवाही ॥^१

पद्मावत में हीरामन शुक द्वारा यणित पद्मावती के नर-शिव कर्ण के अनन्तर राजा रत्नसेन के मन में प्रेम-भाव उदय होता है । राजा राय-पाट, सुन, वैभव, भोग आदि का परित्याग करके योगी बन जाता है और वह तब तक प्रयत्न करता है जब तक वह पद्मावती को प्राप्त नहीं कर लेता है । किंतु सें सिद्ध तक का मार्ग वास्तव में प्रेम-पथ ही है और उस कठिन प्रेम-मार्ग पर चलकर वह अंत में अपने प्रियत्व की प्राप्ति कर ही लेता है ।

हीरामन ताते ने रत्नसेन को परार्थ दिया था-

प्रेम सुनत मन भूछ न राजा ।

कठिन प्रेम सिर पेड़ तो झाबा ॥

प्रेम फाव जो परा न छटा ।

जीउ दीन्ह बहु फावैन छटा ॥^२

पद्मावती का रूप कर्ण सुनकर राजा मुग्ध हो गया, इस प्रेम भाव को भला कौन जान सकता है-

प्रेम भाव दुख जान न कोउ ।

बेहि लागे जाने पे सोई ॥

परा प्रेम समुन्द अपारा ।

छहरिं छहर होइ विसम्भारा ॥

१- चित्ररेखा, पृष्ठ ७५

२- जायसी गुणावली, दोहा ६७

प्रेम मार्ग वास्तव में बहुत ही दुष्कर एवं कठिन मार्ग है। परन्तु दुःख के भीतर भी प्रेम और सुख का बहुत स्रोत बहता रहता है। इस ज्ञात को वही प्राप्त कर सकता है जो मृत्यु की भी पीड़ा को सहने के लिए तैयार हो, उसी को प्रियतम की प्राप्ति और अपार अनन्त सुख मिलता है।

सृष्टी प्रेमात्म्यानों में प्रेम को सौन्दर्यविन्य रूप में चित्रित किया गया है। चन्दा, मृणावती, पद्मावती, नकुमालती, उन्नावती आदि सभी नायिकाएं अष्टमि सौन्दर्य सम्पन्न हैं। उनके सौन्दर्य में ईश्वरीय सौन्दर्य भान होता है। इसीलिए इन नायिकाओं की प्राप्ति के लिए नायक सर्वत्याग कर के जांगी बनकर निकल पड़े होते हैं। प्रारम्भ में उनका प्रेम वासनायुक्त होता है। फिर विरहाग्नि में तप्त होकर उनका प्रेम सार्वत्रिक हो जाता और दिव्य रूप प्राप्त कर लेता है, वही सृष्टी साधना का इशक-र-मवाड़ी से इशक-र-ल्लीकी की ओर जानेवाला सिद्धान्त है।

बावसी के लज्जार सब समाप्त हो जाता है किन्तु प्रेम कभी नहीं मरता-

कहं सुख पद्मावती रानी ।
कोई न रहा का रही कहानी ॥
धन सोई जस कीरति बासु ।
फूट मरे पे मरे न बासु ॥

प्रेम मार्ग के पथिक के लिए पथिकता, उदारता, सहिष्णुता परम आवश्यक है। प्रेमी के हृदय में क्रोध, ईर्ष्या आदि के लिए स्थान नहीं होता-

गुरु कहा चेहा सिध होइ । प्रेम बार सोई करहु न कोइ ॥

वा क्य सीस नाइके दीये। रंग न होइ ऊम वा की ये ॥
 बेहि छि पेन पानि भासोइ । बेहि रंग छि जोहि रंग होइ ॥
 जो पं जाइ पेन सो बुझा । कि तप मरहि सिद्ध जो बुझा ॥
 सीस दीन्ह में काम, पेन पानि सिर मेछि ।
 अब सो प्रीति निवाहो, चहों सिद्ध होइ मेछि ॥^१

वास्तव में जायसी ने पद्मावत में रत्नसेन को एक उत्कृष्ट प्रेम-पथिक के रूप में चित्रित किया है।

सुफ़ियों ने विरह को प्रेम का सर्वस्व बताया है, उनके अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में भी विरह-भावना ही दिखाई देती है। वास्तव में सुफ़ियों के लिए विरहरहित प्रेम की भावना अकल्पनीय ही है। जायसी ने प्रेम में रस और विरह दोनों माने हैं जैसे मोम के झूले में उलद और मक्खी दोनों रहते हैं-

फेरि मांह विरह ओ रसा ।
 मेन के धर मधु अंशित बसा ॥^२

संभ्रम की दृष्टि में विरह की प्राप्ति बिना पूर्व-पुण्य के नहीं होती। जिसके हृदय में फरा बीब होता है, वह सदैव ऊपर होता है। सुफ़ियों के अनुसार विरह की तीव्रता ज्वाला मानव की समस्त ह्य कामनाओं, विकृतिओं और बुराइयों को भस्मीकार कर देती है और जीवात्मा परमात्मा अभेद प्राप्ति करके अधिक योग्य और उपयुक्त होकर निकलती है।

उत्तमान कहते हैं-

१- जायसी गृथावली, पृ० १०४

२- पद्मावत, १६।६

विरह जगिनि जरि कुंतन होइ ।

निरमल तन पावें पे सोइ ॥^१

जायसी कहते हैं-

मुकुन्द जिनगी पेन के, सुनि महि गगन डराइ ॥

धनि विरही जो धनि लिया, तहं जस जगिनि समाइ ॥^२

प्रभु विरह का अनुभव करनेवाला साधक धन्य है। विरह की चिन्तारी का नाम सुनकर धरती और आकाश कांप जाते हैं, पर धन्य है विरही और धन्य है उसका विरह जहां विरह की सम्पूर्ण आवृत्ति ज्वाला ही समा जाती है, चिन्तारी का तो उल्लेख ही क्या ?

जब प्रिय निकटतम रहते हुए भी दूर-दूर रहे, तब प्रेमी के विरह संताप अत्यधिक बढ़ जाता है। आत्मा की भीतर ही ही परमात्मा विद्यमान है, परन्तु भावना की दृष्टि से परमात्मा जीव से कितनी दूर है ? साधक ईश्वर का सामीप्य चाहता है, वह उसके विरह में अत्यधिक वेदनारं और कष्ट झेलता है, जगिनि के कोर साकर जीवन धारण करता है-

फूट बास छिड़ झीर जिनि निवार निरे एक ठाढ़ ।

तस कन्हा घट धरके, जियं जगिनि कहं ताढ़ ॥^३

विरह की ज्वाला बड़ी दाहक होती है-

जो मंह कठिन सरग के धारा ।

तेहि अधिक विरह के झारन ॥^४

१- चित्राकली, पृ० १०७

२- जायसीगुंथाकली, पृ० ८८

३- डा० मुंजीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ० ५६३

४- जायसी गुंथाकली, पृ० ६५

जब तक बीच ईश्वर से मिलन नहीं कर उठता तब तक यह तड़फ़ा बनी रहती है। वास्तविकता तो यही है कि विरह के बिना प्रेम का अस्तित्व ही नहीं है।

हिन्दी सूफ़ी कवियों ने प्रेम की पीर और विरह को बड़ा महत्त्व दिया है। वस्तुतः ठोकि क्वाजे का यह विरह ईश्वरीय विरह की भूमिका पर पड़कर बहुत दिव्य बन गया है। भारतीय साहित्य में प्रेम और विरह की प्रतिष्ठा की दृष्टि से हिन्दी सूफ़ी कवियों का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष:-

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरणों में ध्यान में रखते हुए हमें एक बार फिर यह देखना होगा कि हिन्दी सूफ़ी कवियों द्वारा प्रस्तुत प्रेम भावना इस्लाम धर्म के अनुकूल है, अथवा नहीं ?

इसमें कोई संदेह नहीं कि फ़ारसी मुहम्मद का हज़रत बुदा के सबसे महत्वपूर्ण (प्रिय) फ़ारसी है, इस बात का उल्लेख क़ुरआन शरीफ़ में बार-बार आया है और मुहम्मद का उल्लेख भी "क़ुरआन शरीफ़" में उपलब्ध होता है। किन्तु बुदा का प्रेम करना-चाहे वह फ़ारसी मुहम्मद के प्रति ही क्यों न हो, एकदम इस्लामी सिद्धान्त के विरुद्ध उभरता है क्योंकि बुदा तो किसी भी बात में किसी का शरीक नहीं है और वह एकदम अकेला है-

"वहदहु ता शरीका लहु"

"वहदहुल वबुद" के सिद्धान्त पर तो पूरा का पूरा इस्लाम का प्राणाघात हुआ हुआ है, जो उल्लेख का उल्लेख होगा तो इस्लाम का अस्तित्व ही न होगा।

जः हमारी मान्यता है कि सुफ़ियों द्वारा प्रस्तुत इश्क़ या प्रेम की भावना सुफ़ियों की अपनी निजी कल्पना है कि मूर-ए-मुहम्मदी की प्रीति में कायनात की रचना हुई क्योंकि इस बात का कोई भी उल्लेख हमें "क़ुरआन शरीफ़" में नहीं मिलता ।

फिर एक सबसे अधिक आपत्तिजनक बात यह है कि प्रेमास्थानों में ईश्वर को मानवीय रूप प्रदान कर दिया गया है, जबकि इस्लाम का "क़ल्लाह" किसी भी रूप में अवतरित नहीं हो सकता । परमात्मा या क़ल्लाह को पदनाक़ी या मक़्ताज़ती के रूप में प्रस्तुत करना वास्तव में इस्लाम की भक्तियों करना है जिसे सच्चा मुसलमान किसी रूप में सहन नहीं कर सकता ।

जः सुफ़ी प्रेमसाधना एकत्र काल्पनिक है ।

जष्ठ वध्याय

हिन्दी सुफ़ी काव्य रूप

हिन्दी सुफली काव्य रूप

भारतीय काव्य रूप-

‘काव्य’ शब्द का प्रयोग भारत में पबबद्ध कविता के अर्थ में ही अधिक प्रचलित है, जबकि इस शब्द का प्रयोग साहित्यशास्त्र में बहुत अधिक व्यापक अर्थों में किया गया है।

काव्यशास्त्र अथवा छंदशास्त्र के अन्तर्गत संस्कृत में काव्य की गंभीर एवं विस्तृत मीमांसा प्रस्तुत की गई है, भागवत के ‘काव्य-छंदः’, कौटिली के ‘काव्य-आदर्श’, उद्भट के ‘छंदः-सार-संग्रह’, वामन का ‘काव्यालंकार सूत्र’, मम्मट के ‘काव्य-प्रकाश’, रुद्रक के ‘छंदः-सर्वस्व’, जगन्नाथ के ‘रस गंगा धर’, विश्वनाथ के ‘साहित्य दर्पण’ आदि साहित्य शास्त्रीय ग्रंथों में काव्य रूपों का सामान्य विवेचन किया गया है।

विश्वनाथ ने काव्य के दो प्रमुख रूप माने हैं- (१) प्रबन्ध काव्य और (२) निबन्ध काव्य। प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य एकांकीकाव्य और छंदकाव्य आते हैं तथा निबन्ध के अन्तर्गत मुक्तक गीत व पुराति को रखा गया है। इस प्रकार काव्य के दो मुख्य भेद प्रसिद्ध हैं- (१) प्रबन्ध काव्य और (२) मुक्तक काव्य।

प्रबन्ध काव्य-

जिस रचना में कोई नया क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत की जाये, उसे प्रबन्ध काव्य की संज्ञा दी जाती है। ऐसी रचना जिसे पूर्ण जीवननाथा विस्तारसहित प्रस्तुत की जाये, महाकाव्य कहलाती है। आचार्य विश्वनाथ महाकाव्य के सम्बन्ध में कहते हैं-

सर्विधो महाकाव्य तत्रैको नायकः पुरः ।
संदशः सात्रिधो वापि धीरोदावः गुणान्वितः ।
रक्षकभवा भवाः कुञ्जा बह्वो पि वा ॥^१

अर्थात् महाकाव्य सर्विध होना चाहिये । उसका नायक देवता या उच्च कुल में जन्मा धीरोदाव सात्रिध एवं गुणावान होना चाहिये ।

जिस रचना में कुछ जीवन महाकाव्य की ही शैली में वर्णित होता है उसे "कुण्ड काव्य" कहते हैं ।

मुक्तक काव्य-

मुक्तक काव्य तारतम्य के बंध से मुक्त होने के कारण मुक्तक कहलाता है-

"मुक्तो न मुक्तकम् ।"

मुक्तक काव्य का प्रत्येक पद स्वयं में पूर्ण होता है । विश्वनाथ कहते हैं कि "मुक्तक वह स्वच्छंद रचना है जिसके रस का उद्रेक करने के लिए अनुबन्ध की आवश्यकता न हो।"

मुस्लिम संस्कृति और हिन्दी काव्यरूप

काव्य रूप बराबर परिवर्तित होती हुई मनोबुद्धियों के अनुरूप नवीन रूप धारण करते रहते हैं। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अवस्थाओं एवं परिवर्तनों का प्रभाव काव्यरूपों पर अवश्य ही पड़ता है।

उदाहरणार्थ भारतीय साहित्य के वैदिक युग में तत्कालीन आध्यात्मिक मनोबुद्धियों के अनुरूप "सक्तियों" की रचना अधिक हुई। तत्पश्चात् सामाजिक व्यवस्था के अधिक प्रधान होने के कारण वाल्मीकि और व्यास के महाकाव्यों की रचना हुई।

इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक युग से आज तक साहित्य में परिवर्तन की यह प्रक्रिया दिखाई देती है।

मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क का परिणाम हिन्दी के काव्य रूपों में सामान्यतः दो प्रकार से दृष्टिगोचर होता है। एक तो हिन्दी में प्रचलित काव्यरूपों जैसे महाकाव्य, लघु काव्य, मुक्तक काव्यादि के स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया है और दूसरे मुस्लिम दरबार, अरबी-फ़ारसी काव्य और सुफ़ियों के सम्पर्क से हिन्दी में अनेक नये काव्य रूपों की उद्भावना हुई है।

मसनवी पद्य-प्रबन्ध काव्यत्व -

हिन्दी में प्रचलित काव्य-रूपों में महाकाव्य के अन्तर्गत "मसनवी" शैली के अनाये जाने से भारतीय महाकाव्य में जो परिवर्तन आया है, वह मुस्लिम संस्कृति का परिणाम है।

"मसनवी" अरबी शब्द है। ख़्वात-ए-किशवरी में कहा गया है कि "मसनवी"

सबुद की व्युत्पत्ति करबी सबुद "मसनवी" से छु" है जिके खर्ब होते हैं- "तो ।" मसनवी की हर बेत में दो काफ़िये जल-जल होते हैं, इसीलिए इसे मसनवी कहा जाता है। मसनवी इरानी खया फ़ारसी भाषा का विशिष्ट काव्य रूप है ।

"नामी" का मसनवी के सम्बन्ध में विचार है कि "मसनवियाँ" काव्य में काव्यात्मक प्रेम सम्बन्ध, वीर-काव्य तथा अध्यात्मिक भी होती हैं, इसमें "शेर" के पहले "मिसे" से छन्द, दूसरे "मिसे" का सम्बन्ध होता है तथा यह पाँच "बहरों" में लिखी जाती है। इनके नाम हैं- कज़, रमल, सारी, क़लीफ़ तथा धुकारिब । इनमें छम्बाई की कोई सीमा नहीं होती । कवि खया शायर को स्वतन्त्रता रखती है कि वह या तो सात छन्दों की "मसनवी" लिखे या इसे वह सात हजार छन्दों तक बढ़ा ले । इसमें पौराणिक, दार्शनिक, रहस्यात्मक, धार्मिक आदि विविध विषयों को बफ़ाया जाता है ।

मसनवी क्या है ? इस सम्बन्ध में उर्दू के प्रसिद्ध शायर "हाली" का कथन है, "मसनवी में छाया उन फ़राबु के जो "ग़ज़ल" या "क़सीदे" में बाबिल-उल-जदा है, वह और शराबत भी, जिनकी मराजात मिशायत करती है। ज़वाक़ुला एक रक्त-ए-जलाम है, जोकि मसनवी और हर मुसल्लस नज़्म की जान है। ग़ज़ल और क़सीदे में एक शेर का दूसरे शेर से रक्त नहीं होता । हर क़िलाफ़ मसनवी के, कि इसमें हर बेत का दूसरी बेत से तात्लुक होना चाहि, ज़ेता हर ज़बीर का दूसरी क़दी से होता है ।

"मसनवी" की एक विशेष पद्धति होती है, क्योंकि इसमें सबसे पहले "ईश्वर" की स्तुति की जाती है, फिर फ़ारब "मुहम्मद" साहब की प्रार्थना की

१- फ़ारसी साहित्य का इतिहास - डा० अमर किशत, पृ० १५३

२- मुक़दमा शेर-ओ-शायरी, पृ० २१५

जाती है और 'रसु' की 'मेराव' का कर्ण लिखा जाता है, उसके बाद 'शाह-
 र-वज' या 'जिही' 'हुगु' या 'महात्मा' की प्रशंसा की जाती है। फिर
 गुरु-शिष्य परंपरा का कवि उल्लेख करता है। तत्पश्चात् कवि अपनी रचना के लक्ष्य
 का निरूपण करता है। मसनवी काव्य की रचना प्रायः एक ही इन्द्र में होती है।
 यह इन्द्र अपने में पूर्ण होता है। उस इन्द्र अपने की दोनों आँखों समान
 जन्मानुष्ठान वाली होती है। पाँच या सात 'बन्दों' के अनन्तर एक 'कै' का
 प्रयोग किया जाता है। इस काव्य की सम्पूर्ण कथा- प्रकथन-प्रधान होती है और
 इसका विषय कथा-प्रधान होता है और उस कथा में विविध विषयों के विस्तृत
 वर्णन भी रहते हैं। मसनवी में 'साफी' संस्कृति का प्राधान्य रहता है। मसनवी
 काव्य का नामकरण प्रायः नायक-नायिका के नाम पर किया जाता है। इसमें 'साफी'
 का नाना प्रकार से वर्णन रहता है। शराब की भी चर्चा होती है तथा साफी और
 शराब का आध्यात्मिक भावों के प्रतीक होते हैं। मसनवी में कल्पना का प्राधान्य रहता
 है। इसमें धार्मिक उपदेश देने की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। यह प्रायः सर्गिक रचना
 होती है, सम्पूर्ण कथा को कथा में विभाजित किया जाता है। अन्त में कवि उपसंहार
 के साथ अपनी मसनवी की समाप्ति करता है।

फ़ारसी में लिखे गए मसनवी शैली में चार प्रकार के ग्रन्थ हैं-

- १- विशाल महाकाव्य
- २- विस्तृत प्रेमालोक काव्य
- ३- कथित विस्तारवाले साधारण आल्यानक काव्य
- ४- एकार्थक कथाएं

फ़िरदीसी का 'शाहनामा' विशाल महाकाव्य है। यह फ़ारसी की सबसे पछी मसनवी है।

फिरदौसी की दूसरी मसनवी "यूसुफ- कुंसा" विस्तृत प्रेमालोक काव्य के अन्तर्गत आती है।

पर्याप्त विस्तारवाले साधारण आल्यानक काव्य के अन्तर्गत अमीर खुसरो की मसनवियां आती हैं।

जलालुद्दीन रूमी की मसनवियां एक ध्येय विरोध को लेकर लिखी गई हैं, जो: रूमी की क रचनाओं को सकारण कथाओं के अन्तर्गत रखना ही उचित है।

हिन्दी सूफ़ी काव्य में कितने प्रेमालोक लिखे गये हैं, वे मसनवी शैली के पर्याप्त विस्तार वाले प्रेमालोक काव्य के अन्तर्गत आते हैं।

मसनवी का रूप कथवा शैली-

अरबी, फ़ारसी और तुर्की के काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से मसनवी की रचना में निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है-

हम्द -

ग्रंथ आरम्भ करते समय कवि हम्द (श्रीशर-स्तुति) करता है। हम्द अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है - अल्लाह की प्रशंसा करना। हम्द में अल्लाह की तौहीद का वर्णन, बन्दे का उसके भक्त होने में कल्याण है, अल्लाह पूरी सृष्टि का निर्माता है, पालक है तथा समस्त सृष्टि अल्लाह की भक्ति करके ही अपने सांसारिक जीवन को सफल बना सकती है। जो बहर मसनवी की होती है वही बहर हम्द की भी होती है।

फ़ारसी की मसनवियों में भी "हम्द" नामांतर पर दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ निज़ामी ने अपनी मसनवी "उला-मजनु" में, अमीर खुसरो ने अपनी

मसनवी 'हीरी'-सुमारो' में हम्द के अन्तर्गत सुदा की भक्ति एवं तारीफ़ की है।

'हम्द' एक स्वतन्त्र काव्य के रूप में भी प्रस्तुत की जा सकती है, पर मसनवी का आरम्भ ही 'हम्द' में होता है।

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों 'हम्द' की परम्परा फ़ारसी मसनवी की ही परम्परा है, चन्दायन^१, मुगावती^२, पद्मावत^३, बलरावट, बाबिरी क्लान, चित्ररेखा, मधुमालती, लस नवाहिर आदि सभी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में 'हम्द' की परम्परा उपलब्ध है।

नक़्त -

'नक़्त' अरबी भाषा का शब्द है। काव्य रूप की दृष्टि से फ़ौज़्ज़र ख़ुरत मुहम्मद साहब की इन्दोबद स्तुति को 'नक़्त' कहते हैं। नक़्त में रसूल या नबी मुहम्मद साहब की 'मेराब' (जल्लाह से भेंट) का वर्णन भी होता है। फ़ारसी मसनवियों में 'नक़्त' का विधान उपलब्ध होता है।

मिज़ानी की मसनवी 'छैला-मबनू' में 'हम्द' और 'नक़्त' के साथ ही 'मेराब' का विधान भी उपलब्ध होता है। फ़ारसी में ही 'नक़्त' की परम्परा हिन्दी में आई है और चन्दायन, मुगावती, पद्मावत के साथ ही साथ दक्खिनी हिन्दी के सभी प्रेमाख्यानों 'नक़्त' की परम्परा का पालन किया गया है।

मन्क़ुबत -

मसनवी में हम्द और नक़्त के बाद मन्क़ुबत का आयोजन होता है। 'मन्क़ुबत' अर्थात् ऐसा शब्द जिसे फ़ौज़्ज़र मुहम्मद साहब चार मित्रों, १- ख़ुरत ख़ू

१- चन्दायन, पृ० ८१

२- मुगावती, पृ० ११३

३- जायसी गुंथावली, पृ० १-४

बहु विद्वत्, २- हज़रत उस्मान गुनी, ३- हज़रत उमर फ़ात्क और ४- हज़रत ज़ही में से किसी एक की ज़्यादा चारों की प्रशंसा में शेर बने गये हों। काव्य रूप की दृष्टि से ऐसा इन्द्र 'मन्ज़ुक्त' होता है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में मन्ज़ुक्त कहीं है,^१ उस्मान और शेख़ नबी ने भी इन चारों इलीफ़ानों के बारे में अपने प्रेमाख्यानों में 'मन्ज़ुक्त' कही है। कासिम शाह ने भी 'हंस जवाहिर' में 'मन्ज़ुक्त' लिखी है।^२

मदह -

मन्ज़ुक्त के बाद मसनवी में सम्सामयिक बादशाह या किसी अन्य महान् व्यक्ति की स्तुति की जाती है, जिसकी फ़ारसी मसनवियों में पालन किया जाता है। हिन्दी साहित्य के सभी सुफ़ी प्रेम-आख्यानों के आरम्भ में कवियों ने 'मन्ज़ुक्त' के बाद 'शाह-ए-वक्त' की प्रशंसा की है जो एक प्रकार की स्तुति या मदह है। 'पद्मावत',^३ 'मधुनालती'^४ में 'शाह-ए-वक्त' की 'मदह' की गई है।

तज़क़िरा-ए-मुहिंद -

शाह-ए-वक्त की प्रशंसा के बाद फ़ारसी के कवि अपनी मसनवियों में पीर, मुहिंद, शेख़ या गुरु जिससे भी कवि का लगाव है, उसका प्रशंसात्मक इन्द्रोक्क उल्लेख कवि करता है। इससे कवि के दृष्टिकोण का पता लगता है कि वह किस शाखा विशेष से सम्बद्ध है। हिन्दी के सभी प्रेमाख्यानों में कवियों-गुरुओं का उल्लेख किया है। जायसी,^५ मंजन तथा अन्य सभी सुफ़ी कवियों ने अपने-अपने पीरों-

१- जायसी गुंथावली- पद्मावत, पृ० ५

२- हंस जवाहिर, पृ० ४

३- जायसी गुंथावली- पद्मावत, पृ० ५ से ७ तक

४- मधुनालती, पृ० १०

५- जायसी गुंथावली, जासिरी ख़तम, पृ० ३४२

६- मधुनालती, पृ० १३-१४

मुश्दि या गुरू की अपने-अपने जन्दाज में प्रशंसा की है।

उपर्युक्त विवरण को ध्यान में रखते हुए यदि उपरी तथा दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी काव्य पर ध्यान दिया जाये तो हिन्दी के सभी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में डॉ. हम्द, नक़्त, मन्ज़ुत, चक्र मदर्द, तज़किरा-ए-मुश्दि ग्रन्थ ऐसन विषयक उल्लेख आदि बातें उपलब्ध होती हैं। सूफ़ी प्रेमाख्यानों के प्रारम्भ में ही कवियों ने मसनवी के उपर्युक्त विषयों को दृष्टि में रखते हुए वर्णन किया है। हिन्दी सूफ़ियों के इस प्रकार के उल्लेख से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों का प्रारम्भ "मसनवी" पद्धति पर आधारित है।

निष्कर्ष-

मूलतः मसनवी फ़ारसी साहित्य की एक काव्य-शैली है। फ़ारसी साहित्य में मसनवी शब्द का प्रयोग बड़े काव्य के रूप में किया जाता है। मसनवी स्वयं में ही एक पूर्ण रचना या ग्रन्थ होता है। मसनवी का नामकरण उसके नायक-नायिका के नाम पर होता है। ये ग्रन्थ प्रतीकात्मक होते हैं। साधारणतः मसनवियाँ तीर्णकब्र, जण्डकब्र अथवा सगब्र होती हैं। इनके प्रारम्भ में इश-स्तुति या हम्द होती है, फिर मुहम्मद साहब की प्रशंसा नक़्त रूप में कवि प्रस्तुत कर करता है। तत्पश्चात् चार खलीफ़ाओं के महत्त्व का वर्णन होता है और उसके बाद शक-ए-वक्त की तारीफ़ होती है और फिर कवि अपने गुरू या पीर की प्रशंसा करता है। इन सबके वर्णन के बाद कवि काव्य उदय की चर्चा करता है। इसके बाद मूल कथा प्रारम्भ होती है।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने फ़ारसी के सूफ़ी कवियों की मसनवियों का अनुकरण किया है। हिन्दी की मसनवियाँ फ़ारसी साहित्य पर आधारित होती हैं। क्योंकि हिन्दी के सभी सूफ़ी ग्रन्थ फ़ारसी मसनवी के रूप पर आधारित होते हैं। सभी भारतीय प्रबन्ध काव्य-शैली को भी अपनाया गया है।

हिन्दी सूफ़ी साहित्य के लगभग सभी ग्रन्थों में फ़ारसी मसनवी शैली और भारतीय प्रबन्ध काव्य शैली का समन्वय उपलब्ध होता है। मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत में एक प्रबन्ध-काव्य के सभी गुण उपलब्ध होते हैं। कथा-प्रवाह सरलतापूर्वक पुनर्निबद्ध रूप में आगे बढ़ता है। इतिवृत्तात्मक तथा रसात्मक स्थलों का सुन्दर समन्वय स्थापित हुआ है। "पद्मावत" की कथा के घटनाक्रम में मानव जीवन के सुख-दुःख, प्रेम-विरह, मिलन, त्याग, तपस्या यात्रा, ममता, विपत्ति, जय-पराजय, युद्ध, कल, बर, देण, पतिव्रत धर्म, वीरता, ज़ुंजारक आदि सभी को जायसी ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में कवि ने सबसे अधिक सफलता प्रेम-पथ के निरूपण में पाई है।

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमास्थान काव्य-

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमास्थानों में अनेक ऐसे काव्य हैं जिन्हें श्रेष्ठ कहा जा सकता है। "पद्मावत" ऐसा ही एक श्रेष्ठ महाकाव्य है।

वाचार्य शुक्ल का कथन है, "प्रबन्ध दोष के भीतर दो सर्वश्रेष्ठ काव्य हैं, 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत'। 'पद्मावत' हिन्दी का एक जगमगाता हीरा है।"

शुक्ल जी के इस कथन से ही इस ग्रन्थ की महत्ता का बोध होता है। इस महाकाव्य में तथा इसकी शैली में विकसनशील महाकाव्यों में प्राप्त होनेवाले अनेक तत्त्व- लौकिक और अतिप्राकृत शक्तियों में विश्वास, कथात्मकता आदि कामान हैं। सिंहल की भ्रमंकर यात्रा, साहसिक कार्य, लौकिक और अतिप्राकृत शक्तियों का मानव के साथ समन्वय, वायू की सिद्धांतिका, शास्त्रज्ञ और मानव-भाषी शुक आदि रोमांचक तत्त्वों का भी उसमें समावेश है। इसमें रोमांचक तत्त्व बहु हैं, पर वे कवि के महान् उद्देश्य और प्रतीकात्मक शैली, काव्यात्मक बगन आदि के द्वारा नियंत्रित

हैं। अतः पद्मावत काव्याधिका न होकर रोमांचक शैली का एक महाकाव्य है।

पद्मावत की ही भांति अन्य सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। किन्तु पद्मावत के समान श्रेष्ठता उनको प्राप्त नहीं हो सकी है, हालांकि उनका सूफ़ी साहित्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सूफ़ी प्रेमाख्यान प्रायः श्रेष्ठ काव्य हैं। इनमें महाकाव्य के तत्त्व मिलते हैं। इन प्रेमाख्यानों को खूबी मसनवियाँ कहा जा सकता है। इसी प्रकार दक्खिनी हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों को दक्खिनी हिन्दी की मसनवियाँ कहा जा सकता है।

हिन्दी सूफ़ी काव्यों की इन्द-बोवना-

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में प्रायः दोहा-चोपाई इन्द पद्यों का प्रयोग हुआ है। नसीर कवि ने बदायुँ कर्ण के संदर्भ में कवि सवेदा का भी प्रयोग किया है। कवि नूर मुहम्मद ने दोहे के स्थान पर बरबे इन्द का प्रयोग किया है।

सूफ़ी कवियों ने मुक्तक काव्यों में झुलना, झुठलिया, चोरठा आदि इन्दों को अपनाया है।

दोहा-चोपाई यात्रिक इन्द हैं। यह इन्द पद्यति कथा-प्रधान कर्णनात्मक प्रबन्ध काव्यों को अपेक्षित गति और प्रवाह देने में पूर्णतः सक्षम हो अपनी इसी विशेषता के कारण ये इन्द खूबी कवियों में अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं। कालिदास के 'किन्मोर्वीयम्' से लेकर द्वारिकाप्रसाद के 'कृष्णायन' तक इन दोहा-चोपाई इन्द की एक अविच्छिन्न धारा के दर्शन होते हैं।

‘दोहा’ शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद है। ‘दोहा’ शब्द की

व्युत्पत्ति से सम्बन्धित बात निम्नलिखित हैं-

कुछ विद्वान् 'दोषक' शब्द से दोहा शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं, इसके विरोध में कहा जाता है कि 'दोषक' वर्णवृत्त है और 'दोहा' मात्रिक इन्द्र है। दोषक में तीन भाग और दो गुरु जाते हैं, उसके प्रत्येक चरण में ११ वज्र होते हैं, जबकि दोहा जहाँ सम इन्द्र है। अतः 'दोषक' से 'दोहा' का सम्बन्ध मानना उचित नहीं है।

कुछ विद्वान् 'दो पद' अथवा 'दो पथ' से 'दोहा' की व्युत्पत्ति मानते हैं। प्राकृत के 'गाथा' शब्द में इसकी निरुक्ति भी बताई गई है। 'दो गाथा - दो गाथा - दोहा' में 'हा' को प्रत्यय मानकर दोहा अर्थात् दो पंक्तिपोंवाला, की निरुक्ति की गयी है।

'दोहा' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय किन्तु यह तो सुनिश्चित है कि यह दो शब्द संख्या का ही बोध कराता है।

'साही-गवदी-दोहरा' में दोहा को दोहरा भी कहा गया है।

वस्तुतः दोहा शब्द के 'हा' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ निरव्यपेक्षक नहीं कहा जा सकता। इसका सम्बन्ध 'पंक्ति' से होना चाहिए। इस मात्रिक इन्द्र में कुछ मिलाकर ४८ मात्राएं होती हैं। इसमें कम से कम २४ और अधिक से अधिक ४६ वर्ण जा सकते हैं।

हिन्दी सुफ़ी कवियों के दोहों में मात्राओं की कमी-बेशी बुरी तरह लटक्की है। मालाना दाऊद, बलिक मुहम्मद जायसी, कुतुब प्रभृति सुफ़ी कवियों के काव्यों में प्रयुक्त चौपाइयों में मात्राओं की कमी-बेशी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। कहीं-कहीं १४, १५, १६ और १७ मात्रा वाली चौपाइयाँ भी मिलती हैं, पर

प्रायः १६ मात्राएं ही मिलती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि इन सुकृती कवियों के काव्यों का ठीक से सम्पादन नहीं हुआ है।

जायसी ने अपने "पद्मावत" में सर्वत्र दोहा-चौपाइ इन्द्र के अन्तर्गत सात अद्वालियों के उपरांत एक "दोहा" रखा है। जायसी ने "पद्मावत" में "चौपाइ" इन्द्र का निर्माण बहुत ही स्वतन्त्रता के साथ किया है, साथ ही "दोहा" इन्द्र का निर्माण भी उन्होंने समाने ढंग से किया है। "दोहा" निर्माण में जायसी "चौपाइ" इन्द्र की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र दीखते हैं, क्योंकि वे चौपाइ में १५, १६, १७ तक ही सीमित रहे हैं और अधिकांश स्थलों पर १६-१६ मात्राएं ही मिलती हैं, केवल अन्त में कहीं एक लघु और एक दीर्घ वर्ण तथा दो दीर्घ वर्ण ही मिलते हैं, जबकि "दोहा" इन्द्र में मात्राओं के बारे में कवि को कोई चिन्ता नहीं रही है। प्रायः दोहा इन्द्र के प्रथम और तृतीय चरण में १३-१३ तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में १२-१२ मात्राएं होती हैं। इस तरह दोहे की प्रत्येक पंक्ति में २४-२४ मात्राएं होती हैं और इस इन्द्र में कुल मिलाकर ४८ मात्राएं होती हैं। परन्तु जायसी के दोहों में विविधता के दर्शन होते हैं। "पद्मावत" के कुछ दोहों के अन्तर्गत तो १३-११ की यति से प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएं ही हैं, जैसे -

धिरनि परेवा आव जस, जाइ परहु पिय दूटि ॥ (२४ मात्राएं)

नारि पराए हाथ है, तुम्ह बिनु पाव न दूटि ॥ (२४ मात्राएं)

परन्तु कुछ दोहों में प्रथम पंक्ति के भीतर तो १३-११ की यति से २४ मात्राएं हैं, किन्तु दूसरी पंक्ति में १५-११ की यति से २६ मात्राएं हो गई हैं, जैसे -

१- पद्मावत, ८५।१

यह तन जारों द्वार के, कलों कि पवन उड़ाउ ॥ (२४मात्राएं)

महु तेहि नारग होई परों, कंत धरि जंह पाउ ॥^१ (२४मात्राएं)

ऐसे ही कुछ दोहों की पंक्तियों में १३-११ की यति से ठीक २४ मात्राएं मिलती हैं, किन्तु चूरी पंक्ति में १७-११ की यति से २८ मात्राएं हो गई हैं, जैसे-

नाभी लाभी पुन्य की, नासी जुड कहाउ ॥ (२४मात्राएं)

देक्ता मरहि कल्पि सिर जापुहि, दोस न लावहि काउ ॥^२ (२८मात्राएं)

इस प्रकार जायसी के दोहों की विविधता इस बात की परिचायक है कि जायसी ने इनका निर्माण संज्ञित की दृष्टि से स्वतन्त्रतापूर्वक किया है और मात्राओं की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है।

प्रायः चरित काव्य या आख्यान काव्य के लिए दोहा-चौपाई शैली अधिक उपयुक्त रही है। इस शैली की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और जगन्गी कवियों ने भी इस शैली में अपने-अपने चरित-काव्यों का निर्माण किया है। और इतना ही है कि कुबन और मंझन ने पांच-पांच चौपाइयों के परचाव दोहा या अन्य इन्द्रों का प्रयोग किया है, तुलसीदास ने जाठ-जाठ चौपाइयों के बाद दोहा या अन्य इन्द्रों का प्रयोग किया है और जायसी ने सात-सात चौपाइयों के परचाव दोहा इन्द्र अपनाया है।

‘कड़वक’ की अपभ्रंश रचना शैली में दोहा-चौपाई शैली जाती है। जायसी ने चरित-काव्य की इस शैली को अधिकधिक सरस और सजीव बनाकर पदना-कत की रचना की है। इतना अवश्य है कि जायसी ने उक्त दोनों इन्द्रों का निर्माण

१- पदनाकत ३५३।८-६

२- -वही- ३२१।८-६

पूर्ण स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दतापूर्वक किया है।

अन्य सुफ़ी कवियों ने जैसे ज़ुल रहस्य ने अपने "भाषा प्रेम रस" में चार चौपाइयों के बाद एक दोहे का विधान किया है। क़ली मुराद, कवि निज़ार, ताह नवफ़ क़ली सलौनी प्रभृति कुछ कवियों के काव्यों में स्तद्विषयक किसी विशिष्ट रूप का निर्वाह नहीं मिलता है। फलतः उनके काव्यों में क़दालियों की संख्या घटती बढ़ती रहती है। ग़ूर मुहम्मद ने अनुराग बांसुरी "दोहा" के स्थान पर "बरे" इन्द् का प्रयोग किया है।

जान कवि ने "चौपाई" के स्थान पर "चौध" इन्द् का प्रयोग किया है।

कवि नसीर ने षट्शतृ कणन में कवित्त, सबेरा और सोरठा इन्दों का प्रयोग किया है।

सुफ़ियों के स्फ़ुट काव्यों में पद, साखी, भुलना, कुठलियां आदि के भी प्रयोग मिलते हैं।

महाकवि जान के काव्यों में दोहा, चौपाई, सबेरा, भुलना, चक्राम, पदरी, कवित्त, सोरठना, बरे आदि अनेक इन्दों के प्रयोग मिलते हैं।

दक्खिनी हिन्दी के सुफ़ी प्रेमास्थानों में इरानी रचनाओं के आदर्श को ग्रहण किया गया है। अतः उन कवियों ने अपने काव्यों में फ़ारसी के अनुकरण पर सतत चरणबाले इन्दों की योजना की है। इन इन्दों में मात्राओं की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

वजही ने "कुतुब-मुहतररी" में रुबाई इन्द् का प्रयोग किया है। रुबाई फ़ारसी का प्रख्यात इन्द् है।

दक्षिणी हिन्दी के कुछ कवियों ने 'गुज़र' शब्द को भी अपनाया है। उदाहरणार्थ मुन्ना बक्शी द्वारा 'कुसुम गुज़री' में गुज़र शब्द का सुन्दर प्रयोग मिलता है।^१

उत्तरी हिन्दी सूफ़ी कवियों ने प्रायः एक ही प्रकार के काव्य-रूप का प्रयोग किया है। इन सभी कवियों की भाषा अवधी और शब्द बाँपाई और दोहा है।

प्रतीक-विधान

हिन्दी सूफ़ी काव्य में प्रतीक-बोझना-

प्रतीक शब्द का सबसे अधिक प्राचीन रूप 'रुग्वेद' में उपलब्ध होता है-

'दधाते ये वपुते सुप्रतीके।'^२

यहाँ पर 'प्रतीक' शब्द को 'रूप' अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

'प्रतीक' का प्रयोग तर्कशास्त्र, गणित, विज्ञान विज्ञान, ज्ञान सिद्धान्त, धर्मशास्त्र, उल्लिखित कला और कविता सभी में होता है।^३

दार्शनिक दृष्टि से प्रतीक का इतना व्यापक अर्थ है कि उसके अन्तर्गत शब्द, भाषा, मुद्रा एवं सम्पूर्ण वाङ्मय का आते हैं।

तर्कशास्त्र, गणित, समाजशास्त्र, विज्ञान, मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र आदि के प्रतीकों से साहित्यिक प्रतीकों का अस्तित्व अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होता है।

१- कुसुम गुज़री, पृ० ८७

२- रुग्वेद, १।१८।६

३- धर्मोरी आफ़ डिटेयोर, पृ० १६३

प्रतीक अर्थ, प्रयोग और महत्ता -

“प्रतीयते जनेन इति प्रतीकम् ।” अर्थात् जिससे प्रतिष्ठित हो, या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो वह “प्रतीक” है ।

भारतीय साहित्यशास्त्र में प्रतीक के लिए “उपलक्षणा” शब्द का प्रयोग किया गया है। उपलक्षणा के अर्थ होते हैं, अंकित करना, चिह्न, किसी ऐसी बात का चिन्तित होना जो वस्तुतः कही न गयी हो ।

आधुनिक साहित्य में प्रतीक जिस भाव को व्यक्त करता है, वह पूर्णतः “उपलक्षणा” से गृहीत नहीं है ।

“प्रतीक” का लैटिनी पर्यायवाची शब्द (सिम्बल) है ।

“प्रतीक” का प्रयोग उस प्रस्तुत या दृश्य वस्तु के लिए किया जाता है जो अप्रस्तुत या अदृश्य विषय का अपने सादृश्य से प्रतिविधान करती है ।^१

“जिसे अन्य स्तर की मनुष्य वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है। मूर्त, अदृश्य, कव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, कव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है जैसे अदृश्य ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति- का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।”^२

वस्तुतः प्रतीक उस विशेष संकेत चिह्न को कहते हैं जिसका प्रयोग स्वेच्छा या परम्परा से किसी अर्थ के प्रतिनिधित्व के लिए होता है ।

प्रतीकों के प्रयोग से अभिव्यक्ति को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और

१- इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, वाल्यूम २१, पृ० ७००

२- हिन्दी साहित्यकोश, पृ० ४७१

प्रभविष्णु बनाया जाता सकता है। प्रतीक के माध्यम से सूदन को स्थूल रूप में प्रस्तुत किया जाता है और अपरिचित का परिचय किसी परिचित वाचन पर दिया जाता है। इसके साथ ही विषय या अर्थ की व्यंजना बलिभा द्वारा न करके ध्वनि या व्यंग्य रूप में की जाती है। कभी-कभी एक ही शब्द या वाक्य या कथा के द्वारा दो विषयों का प्रतिपादन भी किया जाता है।

फ़ारसी काव्य में "गुल-बुलबुल", "सना-परवाना" आदि प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। इरान में "गुल" (पुष्प) को सौन्दर्य का उत्कृष्ट प्रतीक माना गया है।

सूफ़ी साधना और साहित्य में प्रतीकों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। फ़ारसी का सूफ़ी काव्य प्रतीकों से जोत-प्रोत है।

"प्रतीक ही सूफ़ी साहित्य के राजा है- सूफ़ी प्रेम को सभी प्रतीकों में ढेख बताते हैं। उनका सारा बंधन प्रतीकों पर अवलम्बित है।"

उत्तरी हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के प्रतीकों के मूल में भारतीय और इरानी - दोनों प्रभाव हैं। परन्तु दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के प्रतीक प्रायः फ़ारसी काव्य से ही गृहीत हैं।

लौकिक प्रणवानुभूति को लौकिक प्रणवानुभूति के माध्यम से स्पष्ट करने में कठिनाई होती है। सूफ़ी कवियों ने "इश्क-ए-मजाज़ी" वाले प्रतीकों के माध्यम से "इश्क-ए-हकीकी" की ओर इंगित किया है-

मजाज़ी में कूँ तो चुप सिर गंवार ।

हकीकी पे दौड़े तो मंजिल कूं पाए ॥^२

१- चन्द्रबली पाण्डेय, तत्त्वबुद्धि अथवा सूफीमत, पृ० ६७-६६ .

२- गुलशन-ए-इश्क , पृ० ३७

दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी प्रेमात्मानों का मूल स्वर आध्यात्मिक है, इसीलिए सूफ़ी कवियों ने जी लोलकर प्रतीकों का प्रयोग किया है। दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी काव्य में भी फ़ारसी की तरह निम्नलिखित प्रतीकों का बार-बार प्रयोग किया है—

साकी -	(मदिरा पान करनेवाला)
शराब -	(मदिरा)
मयताना -	(मधुमाता)
गुल -	(पुष्प)
बुलबुल -	(पक्षि का नाम)
पदा -	(जान्तारिक रूप)
ताज-ए-बुलुक -	(जेह की ज्योति को सहन करना)
तबल्ली -	(फ़ात)
पैहानी -	(ल्लाट)
तोबा -	(प्रायश्चित्त)
बाम -	(ध्याता, वषाक)
बान -	(प्राण)
बमाल -	(रूप)
बलाउ -	(तेज)
हिजाब -	(अन्तराय, पदा)
हुन -	(सौन्दर्य)
चरन -	(नेत्र)
हुमार -	(नशा)
सा ठिक -	(साधक)
शाम -	(सन्ध्या)

सहर	-	(नार)
सौर	-	(धूआ)
लव	-	(लौठ)
मंजिल	-	(गन्तव्य स्थान)
शोर	-	(बंल)
कल	-	(हृदय)

कहा जाता है कि तारिफ़ (शानी) अपनी भावनाओं को दरारों में उतार नहीं सकते, वे केवल प्रतीकात्मक ढंग से उनको अन्य लोगों को बतला सकते हैं, जो उन्हीं की तरह अनुभव करने लगे हैं।^१

दक्खिनी हिन्दी के कई सूफ़ी कवियों ने स्पष्ट रूप से प्रतीकों के माध्यम से सूफ़ी साधना के सात 'मुकामात' - तांबा, इरक, जुहद, मजारिफ़त, वज्द, हकीकत और वक़ल का वर्णन भी किया है।

लौकिक पात्रों में सूफ़ी कवि बल्लाह के नूर के दर्शन करते हैं।^२

रूप-सौन्दर्य वर्णन और प्रकृति वर्णन के संदर्भों में भी सूफ़ी कवियों ने प्रतीकों का भी भरपूर प्रयोग किया है। प्रतीकों के प्रयोग से इन कवियों ने अपने वक्तव्य को व्यक्त करने में अधिक सफलता प्राप्त की है।

सूफ़ियों का ध्यान है कि मानव में मर्त्य और अमृत दोनों तत्त्वों का समावेश है, मानव में देवी और मानवी दोनों शक्तों का निवास है। प्रेम से पवित्र होकर मानव

१- निकत्सन- इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० ८६

२- बन्दर बदन व मस्बियार, पृ० ७५

३- बहराम व गुलन्दाम (हस्तलिखित प्रति)

अपने स्थूल, सीमाभाव से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। मानवी और देवी स्वभावों के बीच का अन्तर प्रेम-साधना द्वारा समाप्त हो जाता है।

मुकुत-र-वाक -

मानुस प्रेम भराउ बैकुण्ठी ।
नाहिं काह द्वार भरि मुठी ॥^१

वास्तव में प्रत्येक मानव मुकुत-र-वाक या मुट्ठी भर फूल का बीजित रूप है। प्रेम तत्त्व से इस वाक में बिंदु का प्रकाश होता है। प्रम वह महान् तत्त्व है जिसके द्वारा मानव का पार्थिव रूप अन्तर्निहित देवी अंत से मिलने के लिए समाकुल हो उठता है। मानव और दिव्य आत्म भाव में प्रेम के ही कारण समरसता की स्थापना होती है-

फिउ हिरव्य मरुं भेंट न होई ।
कोरे मिलाव कहां केहि रोई ॥

यह दिव्य आत्म तत्त्व ही सुफुली शब्दों में प्रेमिका है ।

बल्लाह का प्रतीक -

सुफुली कवियों ने स्त्री को प्रेम का प्रतीक माना है ।

इबकुल खरबी का कथन है- "बल्लाह कभी क्षुब्ध रूप में दर्शन नहीं देता, स्त्री रूप में ही उसका सुन्दर साक्षात्कार होता है।"

सुफुली चाहे किसी को प्रियतम माने, पर वास्तव में उनका व प्रियतम परमात्मा ही है । जहां बल्लाह के जमाल का फूलवा होता है, वहीं रति का

१- नायली गुंथावली, पृ० २३२

२- स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज़्म, पृ० १६१

आत्मन्वन है। ठीक-ठीक हृन् का आकर्षण क्योंकि हों जाने पर ईश्वर की ओर गति हो जाती है। सूक्तियों के अनुसार वो रति का आत्मन्वन है वहीं प्रेम का प्रतीक है।

जब प्रियतम या प्रियतमा ही परमात्मा है, माशुक ही प्रतीक है, तब उस का नल-होत भी प्रतीक के अन्तर्गत ही आता है। उसका प्रत्येक अंग प्रतीक के रूप में गृह्यता किया जाता है।

जायसी, कृतुवन, मंभन आदि ने जो नल-हित काने किया है, उसे भी प्रतीक रूप में प्रयुक्त मानना चाहिए। रूप-सौन्दर्य के माध्यम से इन सूक्ती कवियों ने अल्लाह या परमात्मा बमाल-जो-जाल का उद्घाटन किया है।

पद्मावती - ब्रह्म का प्रतीक -

मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत महाकाव्य की नायिका ठीक-ठीक रूप में तो रत्नसेन की प्रेमिका है, परन्तु क्योंकि रूप में वह ब्रह्म है। वह परम ज्योति है। वही ज्योति चन्द्रमा के रूप में आकाश में प्रकट होती है, वही शिखरों की मणि है जो शिखरों को प्रकाशित करने के लिए प्रकट होती है। उसी महाज्योति की रश्मि पिता के मस्तक का तैज बनकर माता के घर में अवतरित होती हैं।

परमज्योति रूपा पद्मावती को बन्म लेने के लिए जाया रूप में परि-वर्तित होना पड़ता है-

चम्पावति जो रूप उति माहां । पद्मावती क जोति मन हाहां ॥

१- पद्मावत , पृ० ५०

चम्पावती रानी के मन में पद्मावती इसी महाज्योति की भास्वर झाँका पड़ती है । प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ईश्वर इसी परम ज्योति प्रतिबिम्ब या प्रति रूप है । उसी की झाँका घट-घट में प्रतिबिम्बित है ।

पद्मावती के मुख्य रूप से दो प्रतीक हैं, एक अमूर्त और दूसरा मूर्त-
दोनों निहित सौन्दर्य के प्रतीक हैं ।

सूर्य : चन्द्र -

डा० वासुदेवदरणा अग्रवाल का कथन है- "विशुद्ध महाज्योति के रूप में पद्मावती 'सूर्य' थी, जो रत्नसेन के हृदय में भर जाती है । वही पद्मावती अपने पंच भौतिक सौन्दर्य में 'चन्द्रमा' है जिससे मिलने के लिए रत्नसेन इसी सूर्य व्याकुल होता है। जो सूर्य को भी प्रकाश करने वाला निहित ब्रह्माण्ड व्यापी महाज्योति है, वही पद्मावती का अमूर्त रूप है- बायसी इसी रूप के लिए 'सूर्य' का प्रतीक प्रस्तुत करते हैं। पद्मावती की भौतिक देह उस अमूर्त ज्योति का मूर्त रूप है जो सौन्दर्य के अमूर्त तत्त्वों से अलंकृत है, जो योष्य द्वारा मण्डित है और जिसके सोलह कलाओं से पूर्ण सौन्दर्य को 'चन्द्रमा' मानकर सम्पूर्ण काव्य में वर्णन किया गया है। पद्मावती रूप की पारस है। वह रूपों को देने वाली है ।

पारस जोति ललाटहिं जोति । दिष्टि जो करं होहि तेहिं जोति ॥

कहा मानसर चाह सो पाव । पारस रूप इहाँ लयि जाई ॥

भा निरमल तिन्ह परै । पावा रूप रूप के दरै ॥

0 0 0

१- डा० वासुदेवदरणा अग्रवाल, पद्मावती, प्राक्कथन, पृ० ३६

इपं इपं प्रति इपो बभूव ।^१

वैदिक दर्शन के अनुसार प्रकृति की व्यक्त अवस्था दर्पण है जिसमें ज्योति का आभास पड़ता है। उससे ही प्रथम सृष्टि की रचना होती है किन्तु मूर्त इप हैं वे उस इप या ज्योति के प्रतिबिम्ब हैं ।

पद्मावती के मुख के लिए समस्त पदार्थ दर्पण के समान हैं। उसके नयनों के रूप से कमल, शरीर से निर्गल नीर, कंठी से श्वेत कंस और दर्शन ज्योति से नग-हीरे बने हैं। इप-सौन्दर्य की भावस्वराता के विविध अंगों का वर्ण नाभिक इप भी द्रष्टव्य है। नानसरोवर के पास इप की पारस खली जाई । वह निमलि हो गया ।^२ इस स्थल पर पद्मावती के अलौकिक सौन्दर्य की झलक भिज जाती है। उसकी प्राप्ति तो साधना मार्ग से, इन्द्र की सम्पूर्ण शक्ति से होती है ।

पद्मावती इपी सूर्य रत्नसेन के शरीर में भरकर उसके इन्द्र को प्रकाशित कर देता है। फलस्वरूप रत्नसेन स्वयं सूर्य बन जाता है और पुनः पद्मावती को उसी सूर्य का हाया या चन्द्रमा बताता है-

ज्व हों सुरुज चांद वर हाया । जल विनु मीन रक्त विनु काया ॥
किरिन-करा भा प्रेम अंकुश । जो ससि सरग, मिली होई सूर ॥
तहां भंवर जित कंकला गंधी । भव ससि राहु केरि रिनि बंधी ॥^३

सूर्य-चन्द्र पुरुष और स्त्री के भी प्रतीक हैं। रत्नसेन सूर्य है और पद्मावती चन्द्रमा कही जाती है ।

मङ्गल ने "पद्मालती" के इप-सौन्दर्य वर्णन में अलौकिकता का संकेत दिया है-

१- ऋग्वेद ६।४७।१८

२- पद्मावत, अन्द ६५

३- जायसी गुंथावली, पृ० ३६

ज्यों ज्यों वेद रूप लिंगारा । समरुद्धे सन भा बिकरारा।।^१

संभन ने आत्मा और परमात्मा में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं माना है-
“एक ही जीव है जो दो घटों में संवर्तित है, एक जन्म है और वह दो स्थानों पर
व्यवर्तित है।”^२

उत्तमान की “चित्रावली” भी ईश्वर के प्रतीक रूप में है ।

साधना के प्रतीक रूप

सूफ़ी साधना में यात्रा के प्रतीकों का बड़ा महत्त्व है। फरीदुद्दीन
अखार ने सोन, प्रेम, मवारिफ़्त, अनासक्ति, एकत्व, कुल्ल एवं परमात्मा प्रेम के
महासागर में निमग्न होने की सात घाटियोंवाली यात्रा का वर्णन किया है ।

सूफ़ी साधना में साधक को प्रेम मार्ग का पथिक अथवा साधक माना
गया है। उसे अपने गन्तव्य की प्राप्ति के लिए यात्रा की चार अवस्थाओं को पार
करना पड़ता है। बहालुद्दीन रमी का कथन है कि “ईश्वर के यहाँ जाने का यह
मार्ग कठिनाइयों से भरपूर है । यह पथ उसके लिए नहीं है जिसमें सुगता है।”^३

यदि साधक के पथ में कठिनाइयाँ आएँ तो भी उसे भय नहीं मानना
चाहिए । वीर की भाँति जाने जाना चाहिए ।

- १- तरीक़्त (धर्म ग्रन्थों के विधि निषेध का सम्यक् पालन)
- २- तरीक़्त (बाह्य श्रियाकलाप से दूर रहकर हृष्य शुद्धि द्वारा ईश्वर चिन्तन)
- ३- मवारिफ़्त (सिद्धावस्था- जिसमें साधक लीन होकर प्रेममय हो जाता है)

१- मधुमालती, पृ० २६

२- -वही- पृ० ३७

३- *कठि०* रमी पोस्ट एण्ड मिस्टिचिज़्म- निकित्सन, पृ० ७१

४- लङ्गीकृत (भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का सम्यक् बोध जिससे साधक तत्त्व-दृष्टि सम्पन्न और त्रिकालज हो जाता है)

बावसी ने पद्मावती के माध्यम से ईश्वरीय ज्योति को प्रकट करने का प्रयत्न किया है। इसीलिए उसने सांन्ध्य का विशद चित्रण किया है।

नायक रत्नसेन 'बात्मा' का प्रतीक है। सिंछयात्रा 'बाध्या-त्मिक यात्रा' की प्रतीक है।

रत्नसेन चारों बसेरों को पद्मावती को प्राप्त करता है।

हिन्दी के सभी हिन्दी सुफ़ी कवियों ने यात्रा के प्रतीकों को गृह्य किया है।

'चित्रावली' में यात्रा के संदर्भ में कवि ने 'पुरों' का प्रतीक रूप संयुक्त किया है। जैसे 'भोगपुर' शारीरिक इन्द्रियजनित सुखों का प्रतीक और 'गोरखपुर' बाह्यादम्बर का प्रतीक है। 'हपनार' परम ऐश्वर्य का प्रतीक है।

'इन्द्रावती' में आगमपुर की यात्रा के प्रसंग में बसेरों का प्रतीक रूप में उल्लेख हुआ है। जैसे 'जिउपुर' आत्मदेश का प्रतीक है।

'बन्धुग बांसुरी' में तो कवि ने प्रतीकों की भरमार कर दी है। 'मूर्तिपुर' शरीर का प्रतीक है, 'राजा' जीवात्मा का प्रतीक है, बन्तःकरण मन का प्रतीक है।

नूर मुहम्मद कवि ने बड़े मनोमय प्रतीकों की कल्पना की है।

नायिका- ईश्वरीय ज्योति -

हिन्दी के सुफ़ी कवियों ने नायिका को 'परमज्योति' के प्रतीक रूप में चित्रित किया है।

गुनावती, पद्मावती, नकुलवती आदि के माध्यम से ईश्वरीय ज्योति और अलौकिक सौन्दर्य का प्रवर्णन किया है। फ़ारसी के कवियों हाफ़िज, रवी, मिर्जावी आदि ने भी नायिका के अनुपम सौन्दर्य को चित्रित करते हुए ईश्वरीय ज्योति की अभिव्यक्ति की है।

नायक- साधक-प्रेमी - आत्मा

सूफ़ी काव्यों के नायक रत्नसैन, राजकुंवर, मनोहर, सुजान आदि साधक, प्रेमी और आत्मा के प्रतीक रूप में चित्रित हुए हैं।

सूफ़ी कवियों की रहस्याभिव्यक्ति में प्रतीक-पद्धति बड़ी सहायक रही है।

हिन्दीके सूफ़ी कवियों ने तसव्वुफ़ की गूटिथियों को प्रतीकों के माध्यम से सुझाया है। प्रतीकों के प्रयोग के कारण इन कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट, आकर्षक और प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी सूफ़ी कवियों के काव्य में प्रतीकों की आधार भूमि प्रेम-प्रधान तसव्वुफ़ है। सफ़ियों का प्रतिपादित प्रेम है, इस दिव्य प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने अलौकिक सम्बन्धों के प्रतीकों की योजना की है।

लोक में प्रेमी और प्रेमिका के प्रेम में प्रेम-भाव की चरम परिणति होती है, पति और पत्नी का प्रेम भी अत्यन्त तीव्र होता है। पद्मावती प्रारम्भ में प्रेमिका है, बाद में पत्नी है और अन्त में सती बन जाती है। नायकी ने इस दाम्पत्य - प्रतीक को भी अपनाया है।

सूफ़ी कवियों ने ईश्वर और प्रेम के प्रतीक रूप में 'समुद्र' का प्रयोग भी किया है।

‘पाँच कोतवार’ का प्रतीक कई शरीर में स्थित पाँच देवता-
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश और सदाशिव हैं।

‘कलास’ या ‘कविलास’ स्था का प्रतीक है। ‘कल-सूर्य’, ‘गुलाब -
धार’, ‘चन्द्र - चकोर’, ‘दीपक-पतंग’, ‘चुम्बक- लोहा’ आदि प्रतीकों का
प्रयोग ‘जीव-परमात्मा’ के प्रेम के लिए किया गया है।

‘दफा’ ‘साधक’ के हृदय का प्रतीक है।^१

२०वें आरवरी ने फ़ारसी कवियों का अलिफ़, बे आदि सभी
वर्णों के प्रतीकों का जय स्पष्ट किया है। जैसे-

- अलिफ़ - सद्गुणों की प्राप्ति और दुष्टों के त्याग का प्रतीक।
बे- आत्मा की शीघ्र और छोछी सुखों के त्याग का प्रतीक।
एन- ईश्वर की अनुकम्पा का प्रतीक।
गैन - ईश्वर से प्रेम का प्रतीक।

नूर मुहम्मद कवि ने ‘अबूराग बांसुरी’ और ‘इन्द्राक्षी’ में निम्नलिखित
प्रतीकों को प्रयोग किया है -

- ज्योति-नूर - ईश्वरीय दीप्ति का प्रतीक है।
ठाकुर- परमात्मा का प्रतीक है।^२
त्रिवेणी- उला, फ़िला और सुण्डुना के मिलन-बिन्दु का प्रतीक है।^४

१- चित्रावली, पृष्ठ १०२

२- जायसी के परकीर्ण सफ़री कवि और काव्य, पृष्ठ २२५-२२६

३- जायसी गुंथावली, पृष्ठ २३६

४- -वही- पृष्ठ २२०

दिया -	ज्ञान का प्रतीक है । ^१
धूप-	सांसारिक दुःख और तप का प्रतीक है । ^२
नारद -	ज्ञान का प्रतीक । ^३
नेहर-	इस लोक का प्रतीक है। ^४
पत्नी-	जीव या साधक का प्रतीक है। ^५
पिंजड़ा -	शरीर का प्रतीक है। ^६
भांटा-	शरीर का प्रतीक है। ^७
माजीया-	सच्चे साधक का प्रतीक है। ^८
तन्त्रकार-	तन्त्रज्ञान का प्रतीक है। ^९
तन्त्रकूप-	संसार का प्रतीक है । ^{१०}

- १- जायसी ग्रंथावली, पृ० १७४
 २- -वही- पृ० ११, ३०६
 ३- -वही- पृ० ३२०, ३२१, ३२६
 ४- -वही- इन्द्रावती, पृ० ४१
 ५- जायसी ग्रंथावली, पृ० ११, २८, ४५
 ६- -वही- पृ० ३६
 ७- -वही- पृ० ३०६
 ८- -वही- पृ० १६
 १०- -वही- पृ० १७४

- कण्ठा - पिण्ड का प्रतीक है।^१
 कठफुली- सृष्टि और इसके जीवों का प्रतीक है।^२
 किरण- ज्ञान का प्रतीक है। जीवात्मा का प्रतीक है।^३
 मृग या कपोल- ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतीक है।^४
 कलक - ज्ञान-कण अन्धकार का प्रतीक है।^५
 तिल - स्थिरत्व-शक्तवर्ण हृन्म का प्रतीक है।^६

संदोष में हम कह सकते हैं कि सुफ़ी कवियों ने अपनी प्रतीक-योजना में निम्नलिखित रूपों को अपनाया है-

- १- कल प्रतीक इस्लामी और फ़ारसी काव्य परम्परा के हैं।
- २- मृग प्रतीक सुफ़ियों के अपने साधनापरक तसव्वुफ़ के हैं।
- ३- कल प्रतीक हज्जोग साधना के तथा भारतीय परम्परा के हैं।
- ४- मृग प्रतीक सुफ़ियों ने लोक जीवन से लिए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त प्रतीकों के प्रयोग से हिन्दी सुफ़ी काव्यों में अभिव्यक्ति तीव्र, सुस्पष्ट और प्रभाविष्ठा हो गयी है।

हां, इतना अवश्य है कि ईश्वर या ब्रह्माह से सम्बन्धित प्रतीक-योजना इस्लाम धर्म के विरुद्ध है, क्योंकि ब्रह्माह तो "हालिक - कायनात" है और

- १- नायसी ग्रंथावली , पृ० ३०४
- २- चित्रावली , पृ० ४
- ३- मधुसूतनी , पृ० ३७
- ४- चित्रावली, पृ० १०६
- ५- इन्द्रावली, पृ० ६०
- ६- -वही- पृ० ७०

उसके लिए किसी भी प्रकार की प्रतीक योजना एकदम कुरूप है। इस्लामी सिद्धान्त के विरुद्ध है। अलाह के नूर के जाने सब तब है। उसका किसी भी वस्तु का प्रतीक नहीं दिया जा सकता है क्योंकि उसी के द्वारा निम्न ही इंसान बनाने वाले के लिए किसी भी प्रकार की प्रतीक योजना की शुरुआत ही नहीं कर सकता। इस दृष्टि से सभी सूफ़ी कवि एक प्रकार सनातन मुसलमानों के विश्वासों के विपरित रचना करते हैं।

रस-योजना

रस तथा भाव

हिन्दी के सूफ़ी कवियों की रचनाओं का प्रधान विषय प्रेम-तत्त्व का निदर्शन है। सूफ़ियों ने विरह रस को अधिक महत्त्व दिया है।

विरह की दशा वस्तुतः वह मनः स्थिति है, जिसमें रसों समय अपने सम्पूर्ण जीवन को ही प्रेमपात्र के प्रति नितान्त एकनिष्ठ बना देना पड़ता है। संयोग में उतनी तीव्रता नहीं रह जाती और न इसी कारण उसमें किसी प्रकार की गति लक्षित होती है। विरह के भाव में एक विचित्र अन्तः प्रेरणा उपस्थित रहती है जो प्रेमी या प्रेमिका को कभी भी जेब की सांस नहीं लेने देती।

मौलाना दाऊद, जायसी, ख़ुजन आदि सूफ़ी कवियों ने 'भाव-व्यंजना' के क्षेत्र में बारम्बार और प्रकृति कवि को बहुत महत्त्व दिया है। इन कवियों के प्रसंग में सर्वत्र भारतीय वातावरण की ही अवतारणा की गयी है।

हिन्दी सूफ़ी कवियों में मुख्य रूप से पात्रों के द्वारा रति, शोक, क्रोध और युद्धोत्साह नामक स्थायी भावों के की व्यंजना कराई जाती है।

जायसी की भावव्यंजना में भावोत्कर्ष उनका प्रयोजन रहा है। उन्होंने कहीं भी अरुदस्ती विभाव, अनुभाव, संचारी आदि को ज़रूर की चेष्टा नहीं की है।

पद्मावत में यद्यपि "शृंगार" ही प्रधान है, पर उसके संयोग पदा में स्तम्भ, स्वेद, रोमांच नहीं मिलते । विद्योग में क्लृप्ता का वाच्य है। जायसी में भावों के भीतर संचारियों का सम्मिश्रण बहुत कम मिलता है ।

पद्मावत में "रति भाव" का प्राधान्य है, पर उसके अन्तर्गत भी लज्जा, गर्व आदि दो एक संचारियों को छोड़कर डीढ़ा, अवस्थित आदि अनेक भावों को बिल्कुल नहीं पाते । भावों के उत्कर्ष के क्षेत्र में जायसी बहुत बड़े-बड़े हैं, किन्तु यह उत्कर्ष मुख्यतः विप्लव में ही अधिक दिखाई देता है ।

पद्मावत मूलतः एक प्रेमकथा है। काः इस में "शृंगार रस" के संयोग और विद्योग पदा का समावेश विशद रीति से हुआ है। शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों जैसे कर्हना, वात्सल्य, वीर, शान्त, वीर्य आदि का समावेश तथा प्रसंगवश हुआ है।

शृंगार रस-

शृंगार रस के दोनों पदों का कर्ण हिन्दी सुफ़ी प्रेमस्थानों में उपलब्ध होता है । परन्तु प्रधानता विद्योग शृंगार की ही है। इसी के माध्यम से इन कवियों ने आत्मा और परमात्मा के विरह भाव की अभिव्यक्ति की है ।

संयोग पदा-

पूर्ववदन्तेऽन्तेऽन्तेऽन्ते सुफ़ी कवियों ने संयोग शृंगार के उद्दीप्त की दृष्टि से ही चाहतु कर्ण का आवेदन किया है। जायसी ने रत्नसेन-नायनती के संयोग का केवल एक दृश्य प्रस्तुत किया है -

कण्ठ लाइके नारि मनाई । बरी जो बेछि सींचि पछाई ॥^१

फारसी के कवियों ने संयोग पदा के अन्तर्गत कहीं-कहीं प्रेम के मांसल भावों का भी चित्रण किया है, किन्तु उनके काव्यों में संयोग चित्रण का अभाव है ।

पद्मावती झुंगार मण्डित होकर रत्नसेन के पास जाती है, उसी समय का एक मनोहारी चित्र दृष्टव्य है-

साजन लेह पठावा, आप सुवाह^१ न भेंट ।
तन मन जोवन छाजि के, देह चली ले भेंट ॥

मन का सजाना का उत्कण्ठा या अभिलाषा है ।

संयोग-झुंगार की रीति के अनुसार जायसी ने अभिसार का पूरा-पूरा वर्णन किया है । सर्वत्र जायसी ने प्रेम का भावात्मक रूप ही प्रधान रखा है। भोग-विलास के बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित दिखाई देता है। रत्नसेन और पद्मावती का प्रेम पूर्वापर प्रेम है ।

रतिभाव के अन्तर्गत जायसी ने कुछ मानसिक क्लेशों की व्यंजना भी की है-
जीन लो दिन जब फिर मिले, यह मन राता वासु ।
वह दुख दोहो मोर सब, लो दुख दोनों तासु ॥

“अभिलाषा” का भाव अत्यन्त सुन्दर प्रकृत रूप इस दोहे में देखने योग्य है-

तो लो रलौ भुरानी जो लहि आव लो कत ।
रहि फुल, रहि सेन्दर लोह लो उठे वसंत ॥

कवि उस्मान का संभोगावस्था का वर्णन जलीलता की सीमा पार कर गया है ।^१

मुर मुहम्मद ने भी इस संदर्भ में जलील रूपकों की योजना की है ।^२

संयोग वर्णन के संदर्भ में सुफ़ी कवियों ने चाँसर, नुसरत आदि लेखों और पहेली बुझाने की बात का भी उल्लेख किया है ।

दक्कितनी हिन्दी के कवि नुसरती ने सम्भोग चित्रण में जलीलता दिखाई है ।^३

कवही ने इस संदर्भ में अपनी "कुतुब-मुस्तरी" में संयम से काम लिया है ।^४

वियोग पदा

जब तक साधक वियोग की अग्नि में तपकर निरंतरता नहीं है तब तक उसका मिलन प्रिय से नहीं होता है ।

इसलिये संयोग भी तभी संभव है जब सांसारिक वासनाओं से ऊपर उठे ।

सुफ़ी काव्य-साधना की एक विशिष्ट पद्धति की दृष्टि से लिये गये हैं, इस कारण उनमें "विरह" को विशेष महत्त्व दिया गया है और विरह का विस्तृत चित्रण भी किया गया है ।

निजामी की मसनवी "लैला-मजनूं" का नायक जीवन भर लैला के विरह में तड़फता ही रहता है ।

१- चित्राकली, पृ० २२८

२- इन्दावती (उत्तरार्द्ध)

३- नुसरती-गुलशन-इरक, पृ० १६२-६४

४- कवही- कुतुब-मुस्तरी, पृ० ८५-८७

दूसरी मसनवी "गुसरो- हीरी" में फ़रहाद तड़फ़ तड़फ़ कर मर जाता है।

नामी की मसनवी "युद्ध कुंता" की नायिका जीवन भर विरह में व्यथित रहती है।

मलिक मुहम्मद जायसी के प्रभावान "पद्मावत" में वियोग कुंआर का विशद चित्रण किया गया है। इस काव्य में पद्मावती और नागमती, दोनों के विरह चित्रण मिलते हैं। दोनों कर्णों का भाव समान है। कवि प्रेमाश्रम में भेद नहीं करता, अतः इन दोनों कर्णों में भी कोई भेद नहीं है।

"पद्मावत" के ५७ तण्डों में से १५ तण्डों में जायसी ने विरह-चित्रण किया है। वास्तव में नागमती वियोग की वस्तु और भावव्यंजना हिन्दी काव्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। वेदना का इतना मार्मिक, गम्भीर, पवित्र और प्रभविष्णु कर्णों वास्तव में अन्यत्र दुर्लभ है-

सारस जोरी कौन हरि, नारि बियाया छीन्ह ।

भुरि भुरि हँ पीर भर, विरह काह मोहि दीन्ह ॥

तथा

जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह गारों ओ गव ।

कन्त पियारा बाहिरे, हम सुख भूछा सर्व ॥

तथा

परकत समुद्र जागम बिच, बीछु धन बन डाँठ ।

किमि के भेटों कन्त तुम्ह, ना मोहि पाव न पाँठ ॥

जायसी का एक-एक दोहा विरह का आश्रम सागर है। जायसी का विरहवर्णन कल्पित पूर्ण है। किन्तु वह कर्ण सौन्दर्यपूरित है। जायसी ने ऊहा-त्मक पद्धति का कम प्रयोग किया है। उन्होंने अधिकतर वेदनात्मक स्वरूप की कल्पित विशद व्यंजना की है।

नागमती ने जहाँ हेतुप्रेक्षा के माध्यम से विरह ताप की भावना का वाचिक सूचित करने के लिए ऊहात्मक या वस्तु व्यंगनात्मक पद्धति का सहारा लिया है, वहाँ विरह ताप को दृष्टि भर में व्यक्त देता है-

अस परवरा विरह कर गठा । मेघ साम भये धूसर उठा ॥
दादा राहु केतु गर दाधा । सूरज बरा चांद बरि जाधा ॥
जो सब नक्षत्र तराईं बरहीं । टूटहिं लक, धरति महं परहीं ॥
जरे जो धरती ठावहिं ठाऊं । दलकि फास जरे तेहि दाऊं ॥

(नागमती- सन्देश लण्ड, इन्द १२)

यहाँ मेघ का श्याम होना, राहु केतु का जलना, सूर्य का तपना, चांद का क्षीण होना, फास के फूलों का लाल होना आदि सत्य हैं। ये सब विरह ताप के कारण ऐसे हैं, यह बात काल्पनिक है ।

नागमती के विरह और रुदन से सारा संसार प्रभावित है-

कहुकि कहुकि अस कोइल रोई । रक्त आंसु घुंघुनी बन बोई ॥
जहं जहं ठाढ़ लौइ बनवासी । तहं तहं लौइ घुंघुनी के रासी ॥

नागमती का विरह कर्णमि हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है । नागमती उपवन के पेड़ों के नीचे रात भर रोती फिरती है, इस वृक्षा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव - जो कुछ भी सामने आ जाता है, उसे वह अपना दुःख सुनाती है। वह फुल्य वृक्षा धन्य है जिसमें ये सब अपने लगते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें दुःख सुनाने से भी हल्का होगा ।

नागमती का बारम्बार वेदना की प्रभविष्णुता, मायिकता, नीमलता, मधुरता, प्रकृति व्यापारों के साथ सहचारिता, कृत्रिमता, प्रांजलता और सर्वोपरि उक्त व्यंग्यता के दृष्टिकोणों हिन्दी साहित्य में एक बहुमूल्य निधि है । इसका प्रतिमान हिन्दी साहित्य में कहीं नहीं है। प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का

दिग्दर्शन और साथ ही दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना के माध्यम से नायसी ने एक सुन्दर संश्लिष्ट भाव प्रकण चित्र प्रस्तुत किया है। इसकी स्वाभाविक व्यञ्जनामयी मनस्पर्शिता के लिए निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं-

पुष्प नक्ष विर ऊपर जाया । हों दिन नाह मंदिर की दाया ॥

तथा

बारसे मेह चुके नैनाहा । ऊपर ऊपर होह रहि बिनु नाहा ।

तथा

जग कल झुड़ि बहं लगी ताकी । मोरि नाथ तेवक बिनु थाकी ॥

तथा

कातिक सरद चंद उजियारी । ज्य सीतल हो विरहे नारी ॥

इन स्थलों पर परिवर्तमान वस्तुओं और प्राकृतिक व्यापारों के साथ विरहिणी के कलहणा कातर हृदय का सामंजस्य स्थापित किया गया है।

विरह कर्णन के क्षेत्र में नायसी केमोड़ हैं। उनका बारम्बार हिन्दी काव्य में एक अन्यतम विरह काव्य है। सुकृती कवियों का प्रकृति चित्रण या तो सुदृढीपन रूप में है या रहस्यवादी भावों की व्यञ्जना के लिए। वस्तु कर्णन की दृष्टि से भी इन कवियों ने सरौवर, उद्यान, नार कल-झीड़ा आदि के कर्णन किये हैं।

गूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' प्रिय के विरह में 'जसन्त जो उजाड़' समझती है।

उस्मान की 'बे ब्राकली' को 'जसन्त में दूना शोक' होता है।

निसार की 'कुल्लु' को 'घर काटने को' 'दोहता' है।

मंजन की "मधुमालती" को भी "दिवारी नहीं भाती ।"

हेतु रहीम की "विरहिणी" के "नयनों में सावन की झड़ी लगी है।"

सूफ़ी कवियों में फ़लापावस्था का कर्णन कम उपलब्ध होता है। ग़्लानि, लंका, लूया, क़म, दीनता, गर्व आदि भावों का भी सूफ़ी काव्यों में उल्लेख हुआ है। जायसी क़ुबून आदि कवियों का लक्ष्य प्रकृति के माध्यम से उद्दीप्त वेदना के भावों की व्यंजना थी ।

दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने विरह की विभिन्न अवस्थाओं के चित्रण किये हैं । चिन्ता, श्रवण, स्मरण, उद्वेग, फ़लाप, उन्माद, व्याधि आदि की मार्मिक व्यंजना उनके काव्यों में मिलती है। इन कवियों ने भी विरह दशा के चित्रण के लिए प्रकृति का सहारा लिया है । परिकर्तनीय प्रकृति के माध्यम से इन कवियों ने विरहिणी की मनोदशाओं का सुन्दर चित्रण किया है ।

सूफ़ी साधक प्रेम-पीर या विरह में मग्न रहते हैं, कलह अथवा मिलन के लिए वे वियोग आवश्यक मानते हैं।

अन्य भाव - अन्य रस

करुणा रस-

शृंगार के बाद करुणा रस ही ऐसा है जिसकी ओर जायसी की सबसे अधिक आसक्ति है । उन्होंने वियोग अथवा विप्लवम शृंगार के संदर्भ में करुणा भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। पद्मावत में विशेष रूप से दो स्थलों पर करुणा रस की जायसी द्वारा सुन्दर अभिव्यक्ति की गयी है, वे दो स्थल हैं-

१- रत्नसेन के सिंहल जाने पर जायसी द्वारा प्रस्तुत चितोढ़ का दृश्य,^१ तथा

१- जायसी ग्रंथावली, पृ० ५२-५६

२- रत्नसेन की सिंछ से विदाई का दृश्य ।^१

रत्नसेन के जागी होकर घर से निकलने पर रानियां जो क्लिप्त करती हैं, उसमें पहले सुख के आधार के टूटने का उल्लेख है, फिर उससे उत्पन्न विषाद भाव की व्यंजना है-

रौबहिं रानी तजहिं पराना । नौबहिं बार करहिं सरिजाना ॥

चूहिं जिउ -अभरन उर हारा । अब कापर लज करव सिंजारा ॥

यहां करुणा रस की पूरी व्यंजना है ।

रत्नसेन की मृत्यु पर जायसी ने अत्यन्त प्रशान्त और गंभीर दृश्य वंक्षि वंक्षि किया है -

पद्मावति पुनि पहिरि फटौरी । कली साथ पिय के होइ जोरी ॥

सुरुज क्षिया रेनि लोइ गढ़ । पुनिउं ससि जनावत भई ॥

हुंटे केस, नोती छर कटीं । जानहु रेनि नखत सब टटीं ॥

सेन्धु परा जो सीस उधारी । जगि लागि वह जग बंधिहारी ॥

जायसी पद्मिनी और नागमती के सती होने का चित्र इन शब्दों में चित्रित करते हैं -

घोड़ सती चढ़ि नाट कटीं । जौं सिक्खलोक परातिन्ह दीठी ॥

तथा

जानु सूर दिन ज्यथा , जानु रेनि ससि बड़ ।

जानु नाचि जिउ दीजिय, जानु लागि हन्ह बड़ ॥

तथा

१- जायसी गुंथाकली, पृ० १७०

लक सरि ऊपर साट बिहाई । पाँड़ी दुजो कतार छाई ॥

लागी कूठ जागि छि होरी । बार भूँ बरि काँ न मोरी ॥

“इन्द्रावती” में भी नायक के निधन पर इस प्रकार के करुणा रस की योजना मिलती है-

सुनते मूरुहि पड़ी भूँ नारी । जानो स्वर्ग ते काठ पिटारी ॥

टूटा तन पिंवर जिव बूटा । उड़ा सो प्राण प्र गढ़ लूटा ॥

वात्सल्य रस-

“पद्मावत” में वात्सल्य रस के दर्शन, रत्नसेन के जाँगी होकर भिखने के अवसर पर बाँर बादल की युद्ध-यात्रा के अवसर पर होते हैं। इन दोनों स्थलों पर अभिव्यंजना माता के ही मूत्र द्वारा की गयी है। रत्नसेन की माता वात्सल्य मूत्र के अनिशेष्य द्वारा व्यक्त है बाँर बाद की माता की शंका संचारी द्वारा। जोड़ी-सी अवस्था में बादल युद्ध में जाने के लिए तैयार है, उस समय माता के वृक्ष में “शंका” का उदय स्वाभाविक है। यहाँ हम माँ के कोमल “मन” की भाँकी देखते हैं-

बादल राव मोर लु बारा । का जानसि कस होई बुझारा ॥

बरिबहिं सेल बान बन घोरा । धीरज धीर न बांधिहि तौर ॥

हिन्दी के अन्य सुफ़ी काव्यों में वात्सल्य रस का प्रयोग नहीं हुआ है।

वीर रस-

हिन्दी के सुफ़ी प्रेमास्थानों में कवियों ने नायकों को महान् घोषित करने के लिए युद्ध-कान भी किये हैं। नायक इन युद्धों में अपने शत्रुओं को परास्त करते हैं। अतः सभी हिन्दी मसनवियों अथवा प्रेमास्थानों में जंगल-प्रेम के साथ ही वीर रस का भी सुन्दर परिपाक मिलता है।

“चंदावन” में लोरिक द्वारा युद्धों के अनेक चित्र उपस्थित किए हैं। लोरिक की वीरता पर पुण्य होकर ही चंदा उस पर आसका होती है।

“पद्मावत” में वीर रस की व्यंजना बहुत अच्छे ढंग से हुई है। युद्ध से सम्बन्धित समस्त तैयारियों, घमासान युद्ध आदि का विस्तृत वर्णन जायसी ने वक्रांतापूर्वक किया है। गारा की वीरता का एक चित्र दृष्टव्य है—

सबे कटक मिलि गोरहिं देका । गुंजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥

बेहि पिसि उठे सोइ जनु जावा । फलटि सिंघोहि ठाँव न जावा ॥

तथा जायसी द्वारा प्रस्तुत “गोरा” के अन्तिम दायों का यह परस्परहीन चित्र प्रस्तुत है—

भाट कल भनि गोरा, तू भा रावन राव ।

जांति समेटि जांथि के, शूय केत है पांव ॥

“पद्मावत” में युद्ध के भयानक तथा वीर्यसम्पन्न रूप के दर्शन होते हैं।

“मधुसूतरी”, “प्रेम-रस” आदि सभी काव्यों में नायकों द्वारा किये गये युद्धों का चित्रण किया गया है।

“रौद्र रस” का सुन्दर परिपाक किसी भी सूफ़ी रचना में उपलब्ध नहीं होता है।

सूफ़ी काव्यों में “आर्य रस” का लगभग अभाव सा है।

संदेह में, हम देखते हैं कि सूफ़ी काव्यों मुख्यतः ज़ुंजार, वीर और करुणा रसों का ही सुन्दर परिपाक हुआ है। लौकिक और आध्यात्मिक भक्ति के लिए भक्ति-रस की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। अन्य रसों का प्रयोग इन कवियों

ने नहीं के बराबर किया है।

हिन्दी सूफ़ी काव्य में ज़ंकार योजना-

काव्य-रचना में ज़ंकार वही कार्य करते हैं जो साधुसंगत नारियों के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ाने के लिए करते हैं। ज़ंकार काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

ज़ंकार भावों एवं भावाभिव्यक्ति के सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होते हैं, क्योंकि एक ओर तो वे भावों को रमणीयता प्रदान किया करते हैं और दूसरी ओर अभिव्यक्ति को अधिकाधिक प्रांकट्य, प्रभावपूर्ण एवं सम्स्पृश बनाने में भी सहायता प्रदान करते हैं।

कुतुबन, जायसी, मंझन आदि हिन्दी सूफ़ी कवियों ने सादृश्यमूलक ज़ंकारों का अधिक प्रयोग किया है। उन्होंने रसात्मक संदर्भों में भावों के अनुरूप ही अनुरूपकारी अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना की है। उनके परम्परागत कानों में कवि समय सिद्ध उपमान ही अधिक उपलब्ध होते हैं।

फ़ारसी काव्य में विपुलम्भ ज़ंकार के अन्तर्गत वीभत्स दृश्य मिलते हैं वही प्रभाव वहीं- कहीं पर हिन्दी सूफ़ी काव्य में भी दिखाई देता है।

जायसी ने 'पद्मावत' में विविध प्रकार के ज़ंकारों का प्रयोग किया है। उन्होंने सादृश्यमूलक ज़ंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार किया है। जायसी ने उत्प्रेक्षा का बहुत ही कलात्मक प्रयोग किया है।

शब्दालंकार-

जहाँ काव्य-रचना में शब्दों के कारण चमत्कार हो, वहाँ शब्दालंकार होता है। कुछ शब्दालंकार वगणित, कुछ उद्भवत और कुछ वाच्यगत होते हैं। जायसी

ने अपने काव्य में निम्नलिखित लुप्तकारों का प्रयोग किया है-

लुप्त

इति नित नित नित नित नित ।^१

तथा

लुप्त लुप्त लुप्त लुप्त लुप्त ।^२

तथा

लुप्त लुप्त लुप्त लुप्त लुप्त ।^३

तथा

लुप्त लुप्त लुप्त लुप्त लुप्त ।^४

उपरोक्त पंक्तियों में "लुप्त" लुप्तकार का सत्य एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

"लुप्त" लुप्तकार का सुन्दर प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए-

लुप्त नदी नदी नदी नदी नदी ।^५

तथा

लुप्त नदी नदी नदी नदी नदी ।^६

१- पद्यमावत , ६।३

२- -वही- १०।१

३- -वही- ७।१

४- -वही- २६।५

५- -वही- २।२

६- -वही- ३।४

तथा

भोह धनुक धनि धानुक दुसर सरि न कराइ ।^१

यमक -

जायसी द्वारा प्रयुक्त "यमक" लंकार का अत्यन्त सजीव एवं सरस प्रयोग

देसिए-

जाति सूर जो लाली सूर ।^२

तथा

ने से पुनि मन पुनि न जासा ।^३

तथा

बोहि के बार जीवनहिं बारों ।^४

पुनरुक्ति-

भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिए जायसी ने पुनरुक्ति लंकार का प्रयोग किया है-

कीन्हैसि बरन बरन कवताक ।^५

तथा

फिउ फिउ लागे कौं पपीहा ।^६

तथा

सिन सिन रात पीत सिन छैता ।^७

१- पद्मावत १०२।८

२- -वही- १३।३

३- -वही- २०८।५

४- -वही- २१०।६

५- -वही- १।४

६- -वही- २६।४

७- -वही- ६७।३

श्लेष -

“पद्मावत” में अनेक व्यंजनों का विधान करने के लिए वायसी ने कई स्थानों पर श्लेष अंकार का सुन्दर प्रयोग किया है-

रतन चला का पा अधिवारा ।^१

तथा

कहाँ बूझि का रावन रामा ।^२

तथा

देवसि सूर पैसि हंसि सोली ।^३

श्लेष का चमत्कार वायसी ने विविध प्रकार के फूलों, पक्षियों, वृक्षों आदि का वर्णन करते हुए भी पर्याप्त मात्र में बिखलाया है। उदाहरणार्थ-

कोई चम्पा कोई कुंद सलेली । कोई सुखे करना रस जेली ॥

कोई सुलाल सुदसन राती । कोई बकौरी बकुन बिलखती ॥

कोई सुगोलसारे पुष्पावती । कोई जाहि बूझि सेवती ॥

कोई सौनवरद नेउं केसरि । कोई सिंगार लार नागेशरि ॥^४

उपरोक्त पंक्तियों में वायसी ने फूलों के नामों के साथ-साथ प्रत्येक शब्द का दूसरा अर्थ भी निहित किया है ।

अंकार

यहाँ अंकार द्वारा चमत्कार की दृष्टि होती है, यहाँ अंकार होता है। यह अंकार शब्दों के बदलने पर भी बराबर बना रहता है।

१- पद्मावत, १३३।१

२- -वही- ३१८।१

३- -वही- ३३७।१

४- -वही- ५६।३-६

“पद्मावत” में प्रायः सादृश्यार्थ व्यङ्ग्यकारों का अधिक प्रयोग हुआ है, जिनमें कहीं दो पदार्थों के सादृश्य के आधार पर तुलना की गयी है, कहीं उनका परस्पर आरोप किया गया है, कहीं विशेषण वैशिष्ट्य है और कहीं विशेषण और विशेष्य दोनों के वैशिष्ट्य का निरूपण हुआ है -

उपमा- चरित संह तपहँ जस भान ।^१

पूजापमा- सुभर समुंद जस नेन कुँ पापिक भरे तरंग ।^२

लुप्तोपमा- वरसन कोलिक दिया जस होरे भित्तारी पतंग ।^३

अन्वय- कोलिक सिंगार ओहि पे दावा ।^४

रूपक- भंवर जेस वह मालती रानी ।^५

सांगरूपक- नेन कोड़िया, छिय समुंद, गुरु सौ तेहि महँ जोति ।

मन मरगिया, न होई परे साथ न जावे मोती ।^६

पर्यावरित रूपक - लिया धार, कुच कंचन लाइ ।^७

संदेह - जनहुं कड़ी भंवरहि के पाती । बन्दन लाभ वास के मांती ॥

के कालिन्दी विरह सताई । कड़ी पयाग जरइल दिन जाई ॥^८

१- पद्मावत - १३।१

२- पद्मावत १०३।८

३- -वही- ६६।१

४- -वही- ६६।३

५- -वही- २६३।८

६- -वही- ११३।१

७- -वही- ११४।६

८- -वही- ६१।५

भूम-

भुलि बजोर दिखि तहं छावा । मेस घटा मह बांद दिखावा ।^१

वस्तुप्रेक्षा- मोहे ख्यान धनुक बनू तावा ।^२

हेतुप्रेक्षा- विहसत हंसत वसन तस कके पाहन उठे करविक ।
दासिं सरि को न के सका फाटेउ लिया दरजि ॥^३

फलोत्प्रेक्षा- पुरुष सुगंध करहिं सब जासा । मकु हिरगाह लेह ल पासा ॥^४

कृत्यवृत्ति - टट मने नव मोती फूटे मने कस कांव ।^५

वृत्तिवृत्ति- उन्ह बानन्ह कस को को न मारा । बेधिरहा ज्यारो संसारू ॥
गगन नखत बस जाहिं न गने । हैं सब जान जोहि के लो ॥^६

इपका वृत्तिवृत्ति- भानु नाउं सुनि कंठु किलासा ।
फिरि के भंवर लीन्ह मधु बासा ॥^७

दृष्टान्त- मुसद वारि परेम की जं भावे तैउं तेल ।
क तीलहिं फूलहिं संग जेउं लौर फूलारु तेल ॥^८

१- पदमावत - ६१/५

२- -वही- १०२/१

३- -वही- १०७/८

४- -वही- १०५/५

५- -वही- १३३/८

६- -वही- १०४/५

७- -वही- २५१/१

८- -वही- ६३/८

- अतिरिक्त -** का सरवरि तेहि केळ मयंकु । जंद कळंकी वर निळंकु ॥
 ओ चावहि पुनि राहु नरासा । वह किनु राहु सदा परगासा ॥^१
- समासोक्ति-** सूर परस सों भरु किरौरा । किरिन जामि उपना निरमरा ॥
 तेहि ते अधिक पदारथ करा । रतन जोग अपना निरमरा ॥^२
- अन्योक्ति-** भंवर जो पावा कंठ कहं मन चिन्ता बहु केलि ।
 आइ परा कोइ हस्ति तहं चूरि गरुड सब बेलि ॥^३
- विरोधाभास-** धनि सूती भर भादो माहा । जवहुं जाइ न सींचति नाहां ॥^४
- प्रतीप-** कैं रूप मूरति परगटी । पुनिउं ससि सो तीन होइ घटी ।
 घटतहिं घटत जाकस भई । दुइ दिन जाज नहि भुं गहं ॥^५

इस प्रकार जायसी ने उपर्युक्त विविध प्रकार के अंकारों का प्रयोग करके अपने भावों एवं अभिव्यक्ति को अधिकार्थक रोक, मनोरंजक एवं चित्ताकर्षक बनाने का सुन्दर प्रयास किया है ।

उपर्युक्त अंकारों के अतिरिक्त जायसी ने परिणाम, उल्लेख, अप-
 ह्नुति, दीपक, कारक-दीपक, निदर्शना, तीसरी निदर्शना, परिकर, परिकरांकुर,
 व्यंग्लेख, अपस्तुत प्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, पद्याधोक्ति, व्याजस्तुति, विनोक्ति
 विभावना, विशेषोक्ति, वसंतति, अधिक, प्रत्यनीक, तद्गुण, प्रशोत्तर, व्यापिनि
 स्वभावोक्ति, लोकीक्ति, विनादन, ऐकोक्ति, सूदन, उदात्त आदि अंकारों को
 भी बहुत सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है ।

१- पद्मावत - १०१/३-४

२- वही - ५२/६

३- वही - ४०५/८

४- वही - ३४६/७

५- वही - ५१/४-५

अन्य सूफ़ी कवियों ने उपयुक्त अंकारों को अपनी अपनी योग्य और सामर्थ्य के अनुसार अपने काव्यों में स्थान दिया है। कहीं-कहीं इन सूफ़ी कवियों ने फ़ारसी परम्परा से प्रभावित होकर फ़ारसी काव्य से उपमानों को लिया है। नूर मुहम्मद फ़ारसी काव्य और इस्लाम के अधिक जाग्रही रहे हैं। ईरानी प्रभाव के कारण अनेक नये उपमान भी हिन्दी साहित्य में जा गये हैं। इनमें से अनेक उपमान बहुत सशक्त और भाव व्यंजना में समर्थ हैं। ख़शी, कहकशा, नरगिस, चौर, सीनाग़ोर, तंजर, बटार आदि को उपमान के रूप में गृहीत किया गया है।

दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी कवियों का अंकार के प्रति कोई विशेष भुकाव नहीं दिखाई देता है। उनके काव्यों में केवल उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, व्युक्ति आदि अंकारों के उदाहरण मिलते हैं।

कुतुबन, मंफ़न, उस्मान, जायसी आदि उत्तरी हिन्दी सूफ़ी कवियों को अंकारों के प्रयोग में दक्षता थी। विशेष रूप से जायसी द्वारा प्रयुक्त अंकारों के कारण उन काव्यों में अधिकधिक सरसता, मार्मिकता, उगीकता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि हुई है। जायसी का अंकार-विधान काल्पनिक प्रधान होते हुए भी सरस एवं मार्मिक है।

प्रकृति चित्रण -

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। व्यावहारिक रूप से तो किसी मानवके दृष्टि है, उसी को ही प्रकृति की संज्ञा दी जाती है। परन्तु दार्शनिक दृष्टि से हमारा शरीर, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ- मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सत्त्व-तत्त्व प्रकृति के अन्तर्भूत हैं।

संसार के ज्ञाता सभी साहित्यकारों ने अपने साहित्यों में प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए उसका सुन्दर, सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने भी बड़ा सफल एवं सुन्दर "प्रकृति-चित्रण" अपने काव्यों में किया है।

कविवर जायसी तथा अन्य सूफ़ी कवियों ने प्रकृति की मनोरम दृष्टा को विविध कणों से सुसज्जित करके अपने काव्यों को सजाया है।

पद्मावत में प्रकृति कहीं सौन्दर्य चित्र अंकित करने के लिए अंकारों के रूप में लायी है, तो कहीं भावों को उद्दीप्त करने के लिए उद्दीपन रूप में अंकित हुई है, कहीं प्रकृति वातावरण का निर्माण कर रही है, तो कहीं हृष-विषाद की अभिव्यञ्जना में सहायता प्रदान कर रही है और कहीं उपदेश देकर मानवों को शिक्षा प्रदान कर रही है। इसी प्रकार जायसी ने बहुधा प्रकृति को विविध रूपों में अंकित किया है।

यद्यपि आलम्बन, उद्दीपन और अङ्कारण रूपों के ही अन्तर्गत प्रकृति-चित्रण कर रूप वैविध्य को समेटा जा सकता है, किन्तु इन सूफ़ी कवियों द्वारा किए गये प्रकृति-चित्रण को स्पष्ट रूप देने के लिए निम्नलिखित रूपों तथा विभागों के अन्तर्गत रस सकते हैं-

उपमान रूप में किया गया प्रकृति चित्रण -

जपनी भाषाभिव्यक्ति के अमोत्कर्ष के लिए प्रायः कवि प्रकृति के उपादानों को अङ्कार रूप में गृह्य करते हैं, ऐसा करके वे प्रकृति गृहीत उपमानों के माध्यम से सौन्दर्य को अधिक तीव्र, नाभिक और प्रभविष्णु अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए हैं।

जायसी के द्वारा प्रस्तुत विरह में सूखते और बिहलते हुए हृदय का सरोवर चित्र देखिए-

सरवर लिया छट नित जाई । टुक टुक ह्वे के विहराई ॥

बिहलत लिया करहु पिठ टेका । दीठ दकारा नेसहु रका ॥^१

सुकृती कवियों ने संस्कृत व्यंजन और फ़ारसी साहित्य में प्रयुक्त उपमानों के माध्यम से भी प्रकृति चित्रण किया है।

रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए जायसी ने पद्मावत में लौकिक और अलौकिक जायमानों की सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपमानों द्वारा मार्मिकता, सरसतायुक्त काव्यात्मकता का चरम उत्कर्ष प्रस्तुत किया है। जैसे-

सक किरिन जो सुरुज दिपाई । देखि छितार सोई शिपि जाई ॥^१

तथा

कंचन रस लौटी जसी । बनू बन मल्ल दामिनी परसी ॥^२

तथा

फूल पुपहरी जानों राता । फूल भरहिं ज्यों-ज्यों कह बाता ॥^३

हिन्दी प्रेमाख्यानों में नल-शित वर्णन मूलतः नल-नल वर्णन के रूप में है। इस संदर्भ में इन कवियों ने सर्वत्र उपमानों का आश्रय लेकर सौन्दर्य निरूपण किया है-

सुकृती कवियों ने केत के लिए नाग,^४ भ्रमर,^५ यमुना,^६

दीपक पर धूल खैरा,^७ कस्तूरी,^८ राहु,^९ अंधेरी रात या अमा निशा^{१०}

१-जायसी गुंथावली, पृ० ४२

६- पुहुपावती, पृ० ६०

२- -वही- पृ० ४१

१०- -वही- पृ० ६०

३- -वही- पृ० ४३

४- मधुनालती, पृ० ४७

५- पुहुपावती, पृ० ६०

६- जायसी गुंथावली, पृ० ४७

७- नलकनन पृ० ३७

८- जायसी गुंथावली, पृ० ४६

जादि उपमान प्रयुक्त किए हैं ।

इसी प्रकार अन्य जाँ के लिए भी जाँके उपमान प्रयुक्त किए गये हैं ।

दाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी, उस्मान, शेर नबी जादि सूफ़ी कवियों ने इन उपमानों को अपने काव्यों में गूँथा किया है ।

नायिका के नल-शिल के अतिरिक्त "पुहुपावती" में नायक के नल-शिल का भी निरूपण किया गया है । सूफ़ी कवियों के नल-शिल कर्णन प्रायः एक जैसे हैं ।

कुतुबन, जायसी, मंझन जादि कवि जाध्यात्मिक अभिव्यक्ति और ईश्वरीय वैभव के स्पष्टीकरण के लिए भी प्रकृति चित्रण करते हैं-

बहुँ जाँति जाँति जाँहि भई ।

वस्तुतः प्रकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे, धरती, पर्वत, वन, धूम, मेघ जादि सम्पूर्ण सृष्टि उसी ईश्वर की स्रचना है। सूफ़ी कवियों ने समूची प्रकृति को ईश्वर प्रेम जाणों से बिंधा हुआ चित्रित किया है-

धरती गगन बेधि सब रहली । साँची ठाढ़ देहि सब जाँची ॥

गगन नख्त जाँ जाँहि न गने । ये सब जान जाँहि के हने ॥

ये कवि प्रकृति की कण-कण में ईश्वर की सेवा का जाभास करते हैं ।

उपदेश और नीति के जाध्यान के रूप में प्रकृति-चित्रण -

मानव ने प्रकृति के कार्य-कलाप को जाँके रूपों में जादृशमानकर शक्ति, जाँन और सान्त्वना प्राप्त की है । सूफ़ी कवियों ने अपने काव्यों में प्रकृति चित्रण उपदेश और नीति के जाध्यान के रूप में भी किया है-

पीव पीव कर लाग पवीला । तुही तुही कर कर गहरी बीहा ॥

यहां पर शिंछ के फाँटी ईश्वर के नाम स्मरण का उपदेश व्यंजित कर रहे हैं ।

कहीं-कहीं दृष्टान्त के रूप में जायसी ने प्रकृति द्वारा उपदेश की अभिव्यक्ति की है-

गुहमद बाबी प्रेम के ज्यों भावें त्यों लेल ।

रिल फलहिं के संग ज्यों, लोय फुलायल लेल ॥

ऐसे कानों में कवि का उपदेशक रूप गूँजर ही उठता है, जो: इस प्रकार के प्रकृति कानों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ।

मानवीकरण से सम्बन्धित प्रकृति-चित्रण -

सूफ़ी काव्य में मानवीय सुख-दुःख की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रकृति-चित्रण हुआ है। प्रकृति पर केतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है ।

सूफ़ी कवियों ने मानव के सुख-दुःख के प्रभाव स्वरूप प्रकृति को संवेदनशील रूप में चित्रित किया है और साथ ही मानव मनोभावों की अभिव्यक्ति भी की है-

तेहि दुख भर परास नियाते । लोह बूढ़ि उठि लोह राते ॥

राते बिन्व भीजि तेहि लोह । परवर फाट फाट ह्वि गोह ॥^१

तथा

नकल सिंगार बनरूपति कीन्हा । सीस परासहिं सेन्दुर- दीन्हा ॥^२

तथा

१- जायसी गुंथावली, पृ० १५८

२- वही- पृ० १५६

बारसे मेघा झकोरि झकोरी । मोरी छु नेन चुबे जस जोरी ॥^१

कुतुबन, मंभन, जायसी, उस्मान आदि के काव्यों में विरह कर्णन और ञहस्तु कर्णन के संदर्भों में ऐसे बनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं ।

ञहस्तु कर्णन -

^२ परमावत और ^३ मुगावती में ञहस्तु कर्णन के जन्तगति संयोगावस्था की प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। इन कवियों ने प्रकृति के उपादानों द्वारा नव-वर्ष्पति के हर्ष और सुख विलास को उद्दीप्त करने के बहाने ञहस्तु कर्णन की योजना के द्वारा काव्य-सौन्दर्य का कर्णन किया है। प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों की कृत्रिम मनोरम भाँकियाँ दिखाकर सफ़ी कवियों ने नायक-नायिका के भावों के साथ उनका सामंजस्य स्थापित करते हुए प्रेम-व्यंजना की है ।

बारहमासा -

हिन्दी के सफ़ी कवियों ने बारहमासा कर्णन के संदर्भ में सुन्दर रूप में प्रकृति-चित्रण किया है । इन कवियों के बारहमासा कर्णन का उद्देश्य विरहिणी नायिका के विरह उद्दीपन एवं स्वाभाविक प्रकृति चित्रण द्वारा विरहजन्य वेदना का समतुल्य निरूपण है ।

जायसी का बारहमासा हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ बारहमासा माना जाता है। सफ़ी कवियों ने विरहिणियों के भावों और अनुभावों के साथ ही प्रकृति से तद्रूपता की भी स्थापना की है ।

१- जायसी गुंथावती, पृ० १६७

२- वही- पृ० १४८-४९

३- मुगावती, कदवक, पृ० ३५६-३५७

शूर मुहम्मद की रचना 'इन्द्रावती' का बारम्बार भी उच्च कौटि का है ।

संदीप में हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने विरवात्मा रूप प्रकृति के विविध रूपों का उत्पन्न मनोहर चित्रण किया है । उनके इस प्रकृति चित्रण में देशगत, कालगत एवं परम्परागत सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं ।

हिन्दी सूफ़ी काव्यों की कथानक कड़ियाँ -

प्रायः देखा जाता है कि प्राचीन कथानकों में कुछ ऐसे प्रसंगों, पदार्थों आदि का वर्णन मिलता है जिनका सम्बन्ध कवि समय से होता है। दूसरे शब्दों में जो परम्परागत मान्यताओं और कड़ियों से सम्बन्धित होते हैं वे-

लंब का नीर दारि विवैकी होना, कबूतर, ताँते, हंसादि का संदेश लेकर जाना, चन्द्रमा और चकोर का प्रेम सम्बन्ध होना आदि । ये सभी कड़िगत प्रसंग मान्य होते हैं ।

कथानक कड़ि से अभिप्राय कथा का वह लघुतम तत्त्व है जिस पर कथा का ताना-बाना बुना जाता है। हिन्दी सूफ़ी प्रेमास्थानों के कथा-संघटन एवं कथन पर विचार करते समय कथानक कड़ियों का विवेचन आवश्यक है।

'पद्मावत' में प्रयुक्त कथानक कड़ियाँ निम्नलिखित हैं-

- १- सिंहलद्वीप की रूप सुन्दरी सम्बन्धी कथानक कड़ि ।
- २- पक्षियों के पण्डित होने एवं संदेश ले जाने की कथानक कड़ि ।
- ३- सिद्धि प्राप्ति हेतु राजाओं के बोगी होने की कथानक कड़ि ।
- ४- स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, या रूप-दर्शन द्वारा प्रेमावस्था की कथानक कड़ि ।

- ५- सात-समुद्र सम्बन्धी कथानक इति ।
- ६- देवी-प्रकोप सम्बन्धी कथानक इति ।
- ७- पाक्री द्वारा परीक्षा देने से सम्बन्धित कथानक इति ।
- ८- महादेव जी द्वारा सिद्धि दान सम्बन्धी कथानक इति ।
- ९- जनन्य साधक की जन्य देवताओं द्वारा सहायता सम्बन्धी कथानक इति ।
- १०- समुद्र के द्राक्षणा वेश सम्बन्धी कथानक इति ।
- ११- समुद्रोत्पन्न रत्न सम्बन्धी कथानक इति ।
- १२- यक्षाणी-सिद्धि सम्बन्धी कथानक इति ।
- १३- सती सम्बन्धी कथानक इति ।

इस प्रकार जायसी ने उपर्युक्त कथानक इदियों को अपनाकर अपने 'पद्मावत' काव्य की कथा को सुसज्जित किया है। इससे न केवल कथा में चालाता एवं रमणीयता की दृष्टि हुई है, बल्कि उसमें स्त्रीवता एवं मादिकता की भी वृद्धि हुई है ।

हिन्दी सुफ़ी प्रेमाख्यान काव्य कथानक इति की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है ।

'चंदावन' में जो कथानक इदियाँ कवि ने प्रयुक्त की हैं, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

- १- ज्योतिषी की भविष्यवाणी सम्बन्धी कथानक इति ।
- २- बांजिर द्वारा चन्दा का रूप-सौन्दर्य वर्णन ।

- ३- रूप-गुण-वर्णनावन्य प्रेमोत्पत्ति ।
- ४- जांगी वेश और मिलन-स्थान मंदिर ।
- ५- क्लीष पति कोषो छोड़कर पर-पुरुष के साथ पलायन ।
- ६- स्वप्न में भविष्य की ओर संकेत ।
- ७- उड़ने वाले देव और सिद्ध ।
- ८- नायिका को जले छोड़कर नायक का जाना । नायिका-अपहरण ।
- ९- देवी सहायता ।
- १०- सतीत्व परीक्षा ।

“चंदायन” में मौलाना दाऊद ने और बनेक कहियों का वाक्य लिया है।

“पद्मावत” और “चंदायन” की ही भांति पद्मावती, पद्मावती, चित्रावती, ज्ञानवीथ, लक्ष्मीवती, इन्द्रावती, भागा-प्रेम-रस, कथा कुंवरावत, कुल मुहुरी, सेफुलमुलूक और बदीउल जाल कादि सूफ़ी प्रेमस्थानों में कथानक कहियों का प्रयोग हुआ है। इन सभी ग्रन्थों में कुछ कथानक कहियाँ तो ज़ाभा एक जैसी हैं, किन्तु कुछ मौलिक भी हैं।

संदोष में, सूफ़ी कहियों के काव्य संघटन में कथानक कहियों का बड़ा वाक्य लिया गया है। ये कथानक कहियाँ लोकाभिन्न और कवि कल्पित दोनों प्रकार की हैं। इनके प्रयोग से सूफ़ी कहियों ने अपने काव्य को अत्यधिक मनोरंजक, सुन्दर और मर्मस्पर्शी बनाया है।

हिन्दी सूफ़ी काव्य की भाषा -

अवधी-

पूर्वी हिन्दी की बोलियों के अन्तर्गत अवधी, बघेली और इपीसगढ़ी बोलियों को माना जाता है।

अवधी लखनऊ से ठेकर जौनपुर तक बोली जाती है। मिश्रित अवधी का विस्तार बिहार तक है। 'पद्मावत', 'चित्ररेखा', 'रामचरितमानस', 'कृष्णा-यन' आदि अवधी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

'पद्मावत' में मलिक मुहम्मद जायसी ने पूर्वी अवधी भाषा का प्रयोग किया है, इसके साथ ही 'पद्मावत' में पश्चिमी हिन्दी, अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी कुछ हुआ है।

हिन्दी सूफ़ी प्रेमालोकियों की भाषा प्रायः अवधी ही है। उस्मान और नसीर कवि पर धोड़ा-सा भोजपुरी का प्रभाव दिखाई देता है। नर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' में भोजपुरी और ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग हुआ है। अधिकतर सूफ़ी कवियों ने ठेठ अवधी का ही प्रयोग अधिक किया है।

मोलाना दाऊद के 'चन्दावन' की भाषा सीधी-सादी और तद्भव बहुत अवधी है। वैसे कुछ लोग इसकी भाषा को 'हिन्दवी' भी कहते हैं, किन्तु इसका यह काज्य नहीं कि यह अवधी नहीं है। मोलाना दाऊद कलमठ जिला रामबरेली के निवासी थे और वहाँ की भाषा अवधी है। अतः उन्होंने अपनी रचना भी अवधी में ही प्रस्तुत की है। इसमें अपभ्रंश के भी प्रयोग मिलते हैं किन्तु बाहुल्य अवधी का ही है।

कुरुवन की 'मृगावती' की भाषा भी अवधी है। इसमें देशज या ग्रामीण शब्दों का बहुत प्रयोग है। कुरुवन की भाषा ठेठ अवधी है। यही अवधी इस काल

की जन भाषा थी। कुरुजन ने संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। "गुना-
वती" की प्रमुख भाषा तो अवधी है किन्तु उस पर लोक बोलियों की शाय स्पष्ट
दृष्टिगोचर होती है।

जायसी की भाषा -

जायसी ने अपने ग्रन्थों में अवधी भाषा का प्रयोग किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "पद्मावत" की भाषा को पूरबी हिन्दी की
ठेठ अवधी बोलती बताया है, जिसमें बोलचाल का पूरा लक्ष अधिक है, जो कालिदास
अवधी है और जिसकी मिठास बेमेल है। इसीलिए शुक्ल जी ने लिखा है, "अवधी
की कालिदास और बेमेल मिठास के लिए "पद्मावत" का नाम बराबर लिया जावेगा।"

पंडित ज्योत्सनासिंह उपाध्याय "हरिबोध" का विचार है, "पद्मावत
में ग्रामीण भाषा का प्रयोग हुआ है। जायसी ने इतने ठेठ ग्रामीण शब्दों का
प्रयोग किया है जो किसी प्रकार बोध सुलभ नहीं, कहीं-कहीं उनकी भाषा बहुत
गंवार हो गयी है जिससे उनके पदों में क्लृप्ति उत्पन्न होती है।"

"हरिबोध" के ठीक विपरीत वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है, "जायसी
की अवधी भाषाशास्त्रियों के लिए स्वर्ण है, जहां उनकी रुचि की अपरिमित
सामग्री सुरक्षित है। मंथिली के लिए जो स्थान विद्यापति का है और मराठी के लिए
जो महत्त्व ज्ञानेश्वरी का है, वही महत्त्व अवधी के लिए जायसी की भाषा का
है।"

वास्तव में, "पद्मावत" की भाषा में अद्भुत शक्ति एवं दामता है। अपभ्रंश

१- जायसी ग्रंथावली की भूमिका, पृ० १६८

२- हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० १७२

३- पद्मावत - प्राक्खन (द्वितीय संस्करण) पृ० ४०

साहित्य की सद्बोध परम्परा जिस रूप में विकसित होकर हिन्दी को प्राप्त हुई थी, उसका पूरा स्वरूप जायसी में देखा जा सकता है। जायसी ने तत्सद् शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन तत्सद् शब्दों में संस्कृत, अवधी, फारसी के शब्द मुख्य हैं।

जायसी ने अपनी "प्रेम की पीर" की आत्मिक अभिव्यंजना के लिए और आत्मव्यक्ति के लिए अवध जनपद की ही बोली को चुना है। यह बोली पूर्वी अवध के गांवों में बोली जाती है। इस बोली का थोड़ा विकसित रूप आज भी इस प्रदेश में बोला जाता है।

"पद्मावत" का शब्दकोश, उसमें प्रयुक्त मुहावरों लोकोक्तियाँ आदि सामूहिक रूप से सोलहवीं शताब्दी में प्रचलित बोलचाल की अवधी भाषा है। जायसी के सभी काव्यों की भाषा अवधी है। बोलचाल की भाषा का इतना निरंतर रूप अन्यत्र दुर्लभ है। वह बहुत ही मधुर है, उसमें अवधी की मिठी मिठास है।

जायसी की अवधी भाषा सरल, सजीव, मधुर, सज्ज, शुद्ध और प्रवाहमयी है। उसमें सरलता, व्यंग्यता और प्रभावशालिता के गुण भरे हुए हैं। वास्तव में पद्मावत के और चित्रोत्तरा में तत्कालीन अवधी का जीवन्त रूप मिलता है। जायसी के इन काव्यों की भाषा अत्यन्त श्रुतिमधुर, व्यंग्यपूर्ण और सशक्त है।

मंझन की "मधुनालसी" की भाषा भी बोलचाल की सरल सुशोध अवधी है।

उस्मान ने "चित्राकली" में ठेठ अवधी का प्रयोग किया है। इस काव्य में कहीं-कहीं संस्कृत-अवधी-फारसी के शब्द भी मिलते हैं।

लक्ष्मी नन्दी के "ज्ञानदीप" की भाषा भी ठेठ अवधी ही है।

कासिमशाह के "लक्ष्मी जवाहर" की भाषा अवधी पर ब्रज भाषा और लड़ी बोली का प्रभाव है।

नूर मुहम्मद के ग्रन्थ "इन्द्राक्षी" की भाषा भी अवधी है किन्तु इसमें भोजपुरी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। नूर मुहम्मद की "अनुराग बांसुरी" भाषा की दृष्टि से एक प्रौढ़ रचना है। इसकी भाषा भी अवधी ही है।

लखन लाल की रचना "पुरुषाक्षी" की भाषा बोलचाल की अवधी है। उस पर ब्रजभाषा का भी प्रभाव पड़ा है।

लक्ष्मी नन्दी की "यमुना जलेश" में भी ठेठ अवधी का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा बड़ी प्रवाहमयी, व्यञ्जनापूर्ण और खीब है।

शारद नन्दी लखन लाल की रचना "प्रेम-विनारी" और श्यामा अलम की रचना "नूरुल्लह" की भाषा भी अवधी है।

कवि नसीर की रचना "प्रेम दर्पण" की भाषा बोलचाल की सीधी और सरल अवधी है। इस पर भोजपुरी का प्रभाव पड़ा है। नसीर ने मुहावरों का बुरा प्रयोग किया है।

लखन लाल की "कुंजरावत" भी ठेठ अवधी है।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करने के लिए लोक प्रचलित कथारं ली हैं और उन्हें लोकभाषा में निबद्ध किया। वे अपनी बात आम लोगों तक पहुंचाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने जनभाषा अवधी को अपने काव्यों की भाषा के लिए चुना। इन सूफ़ी कवियों की अवधी

शुक्तिमयूर, सरल, व्यवनायक, समर्थ और माधुर्यपूर्ण है। उसमें प्रवालयता, भावानुकूलता और लौकिकता के गुण हैं। सूफ़ी काव्यों की भाषा उच्चकोटि की मधुरता प्राप्त होती है।

हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी सूफ़ी काव्यों की रचना हुई है, जैसे-

पंजाबी भाषा में शेख फ़रीद शकर गंज, शाह ख़ान, ख़ली ख़ान, बुल्ले-शाह, क़रम ख़ली, करीम बख़्त आदि सूफ़ी कवियों ने रचनाएं प्रस्तुत की हैं।

सिन्धी भाषा में शाह अब्दुल ख़लीफ़, सच्च, तैल आदि का सूफ़ी काव्य लिखा गया।

गुजराती में शेख ख़ुद मुहम्मद, शाह ख़ली मुहम्मद, ज़मीन आदि सूफ़ी कवियों की रचनाएं मिलती हैं।

क़ांठा भाषा में दौलत क़ाज़ी, ज़ालाजोल, मुहम्मद सादिक, सावि-रिद ख़ान, मुहम्मद क़ज़ीर, हमज़ा आदि सूफ़ी कवियों की उत्कृष्ट रचनाएं उपलब्ध होती हैं।

उर्दू के सूफ़ी काव्य पर हम आगे विचार करेंगे।

दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी कवियों की भाषा

दक्खिनी हिन्दी 'सड़ी बोली' का पूर्वकाशीन रूप है, जिसे उर्दू वाले 'हिन्दवी' कहते हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इस भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का लुकर प्रयोग किया गया है।

दक्खिनी हिन्दी का सूफ़ी साहित्य सड़ी बोली हिन्दी की अपनी निधि है।

दक्खिनी के सूफ़ी कवियों में अरबी-फ़ारसी भाषाओं के अतिरिक्त संस्कृत, गुजराती, मराठी, कन्नड़ी आदि के शब्द भी मिलते हैं। वास्तव में, दक्खिनी हिन्दी भाषा का विकास उपर्युक्त अनेक भाषाओं के मेल से हुआ है।

दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी कवियों की भाषा प्रवाह्यता और सहजता से अपनी भाषा में मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों और सूक्तियों के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। उनकी भाषा में छायात्मक प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं।

औरंगजेब के समय में दक्खिनी हिन्दी का नाम दक्खिनी पड़ा था। इस भाषा की लगभग सभी खनास फ़ारसी लिपि में उपलब्ध होती हैं, क्योंकि उर्दू भाषा के कवियों ने 'दक्खिनी' के सम्पूर्ण साहित्य को 'उर्दू' के अन्तर्गत ले लिया है।

प्रायः 'दक्खिनी' के सभी कवियों ने अपनी भाषा को हिन्दवी, दक्खिनी, हिन्दी, दक्खिनी आदि नाम दिये हैं।

'दक्खिनी हिन्दी' के सूफ़ी कवियों ख्वाजा बन्दानबादुर, नैसुदराज़, मुहम्मद क़ुली क़ुतुब शाह, क़ली आफ़िलशाह द्वितीय, बबली, ग़वासी, नुसरती, इब्नेनिशाती आदि ने उच्च कोटि का सूफ़ी साहित्य सृजित किया है। दक्खिनी हिन्दी के अलंकार, मुहावरे, लोकोक्तियां आदि से पूर्ण इन कवियों की भाषा हिन्दी साहित्य की क़मूल्य निधि है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय सूफ़ी कवियों ने अपनी तथा दक्खिनी हिन्दी भाषाओं के अतिरिक्त गुजराती, पंजाबी, मराठी, सिन्धी, कन्नडा आदि भाषाओं में भी उच्चकोटि का प्रवाह्यता, मार्मिक सूफ़ी साहित्य प्रस्तुत किया है।

उर्दू के सृजनी कवि तथा उनका काव्य-

‘उर्दू’ भारत की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। हिन्दी के बाद भारत में उर्दू भाषा का ही सबसे अधिक प्रयोग होता है। यदि हम यह कहें कि आम हिन्दुस्तानी उर्दू ही बोलता है तो कोई कल्पित न होगी। क्योंकि यह सर्वविधित है कि साहित्यिक हिन्दी बोलचाल की भाषा नहीं है।

उर्दू के लिए रोज़ता दक्कनी हिन्दवी, हिन्दुस्तानी या हिन्दोस्तानी आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं। इस भाषा में अनेक भाषाओं के शब्दों को लिया गया है। प्रमुख रूप से उसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य है। यदि उर्दू में से अरबी-फ़ारसी के और हिन्दी में से संस्कृत के छिष्ट शब्दों को निकाल दिया जाय तो उर्दू-हिन्दी में लिपि के अतिरिक्त कोई भी अन्तर नहीं रह जायेगा। मेरा विश्वास है कि यदि भारतवासी साम्प्रदायिक भावनाओं को त्याग कर सभी भाषाओं का एक प्रचलित रूप निर्मित करें और उसे बोलचाल की भाषा बनाएं तो भारत में भावनात्मक एकता सच्चे अर्थों में हो सकती है। भाषा को किसी दशा में किसी एक धर्म, जाति, सम्प्रदाय और वर्ग विशेष से सम्बन्धित नहीं मानना चाहिए। ऐसा करने से भाषा विशेष का विकास कम अवरोध हो जाता है।

हिन्दी को हिन्दुओं का भाषा मानना और उर्दू को मुसलमानों की भाषा कहना एक अव्यय अपराध है। इन दोनों भाषाओं के साथ अन्याय है। अतः मेरे विचार से हिन्दी-उर्दू के साथ ही साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी भारतवासियों को सीखना चाहिए और उनके विकास में सहयोगी होना चाहिए। तभी हमारा भावनात्मक विकास होगा, हमें एकता की भावनाएं सशक्त होंगी।

उर्दू का साहित्यिक प्रारम्भ ‘कली’ दक्कनी और मुहम्मद कली कुतुब शाह की रचनाओं से हुआ। ‘कली’ उर्दू के सर्वप्रथम ‘शायर’ थे। उनकी रचनाओं

में शुद्ध साहित्यिक उर्दू की जाह "हिन्दवी" के ही दर्शन होते हैं। उर्दू के प्रारम्भिक साधक अथवा कवि अधिकतर "हिन्दवी" में ही रचना करते थे। उनकी रचनाओं में भी "तसव्वुफ़" का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जैसे-

बली-

और मेरे पास क्या है देने को, देकर तुझको रौ ही देता हूँ
क्योंकि सीरी हो हूँ तेरे, धूप जाने से पेट भरता हूँ ?

मुहम्मद कुली कुतुब शाह-

मुँज हरक तिरि जाग का एक चिकनी है सूरज ।
इस जाग के शोला का धुआँ सात गगन है ॥

तथा

बुझर रीत क्या और इस्लाम रीत, हर एक रीत में हरक का राज है
उनीचीं हैं मुँज नेन याद सेती, कहो कस में हैं कां की कुसारी ॥

काजी मुहम्मद बहरी-

रे रूप तेरा रती रती है, परवत परवत पती फती है ।
तू एक तूम तमान रंग तेरा ॥

शाह कली मुहम्मद जीव-

कहीं सौ मजनु हो बरे लावे, कहीं सौ छेला छु दिलावे ।
कहीं सौ बरौ शाह कहावे, कहीं सौ शीरी झोकर लावे ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू के प्रारम्भिक कवियों ने "तसव्वुफ़"

के प्रभाव को गृह्यता किया है और उतरोपर ज्यों ज्यों उर्दू का विकास होता गया उर्दू के साथ ही "तसव्वूफ़" के प्रभाव को स्वीकार करते गये, उसी के रंग में रंगते गये ।

इस कायनात (सृष्टि) में अनेक वस्तुएं दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु "सादिक" (साधक) को उनमें केवल "वहकत" के ही दर्शन होते हैं और उसे हर अस्तित्व "वही" (परमसत्ता) जैसा नज़र आता है-

अज़र मोहवी कहते हैं-

फिर मैं नज़र आया न तमाशा नज़र आया ।

तब तू नज़र आया मुझे तन्हा नज़र आया ॥

स्वाजा भीर "दर्द" कहते हैं-

माहिमतों को रोशन करता है नूर तेरा ।

जहाँ हैं मज़ाहिर ज़ाहिर ज़रूर तेरा ॥

फ़ातमी बदायूनी "वहकत" के सम्बन्ध में कहते हैं-

असरत में देखता जा तकरार-ए-कुन-ए-वहकत ।

मज़हूर-ए-यक नज़र जा, मुज़्तार-ए-सद नज़र जा ॥

मिर्ज़ा ग़ालिब इस सम्बन्ध में कहते हैं-

यह ग़ैब ग़ैब किसका समझते हल तल्लू ।

हैं स्वाज में हज़ू जो जागे हैं स्वाज में ॥

तसव्वूफ़ के अनुसार "वहकत" एक गहरा समुद्र है, अस्तित्व केवल "उसी" का है -

मिर्जा गालिब कहते हैं-

हे मुक्तमिष्ठ नमूद सरें पर बज्जद -र-बहर ।
यां क्या धरा हे क़तरा-ओ-माव-ओ कुआव में ॥

मुहम्मद रफ़ी सोदा कहते हैं-

में हूं नूद दरिया कले कोतः नज़र के सामने ।
जफ़-ओ-माव-ओ-क़तर : मेरे रुख़ का एक पदाँ लुआ ॥

किार मुरादाबादी इस सम्बन्ध में कहते हैं-

हुस्न नूद ज़ुबा हे, नूद इश्क़ हे नूद ज़ात-ओ-सिफ़ात ।
एक यही उफ़रुन लकीक़त हे कुछ जफ़सानों की ॥

तसव्वुफ़ के अनुसार हर बूंद नदी हे, हर क़ा सूर्य हे । इस बात को उर्दू के सूफ़ी कवियों ने इस प्रकार पेश किया हे-

फ़ानी बदायूनी कहते हैं-

में भी एक पर तब-र-हस्ती हूं मगर क्या कहि ।
क़ता दरिया सही, जिस क़तरे को दरिया कहि ॥

किार मुरादाबादी इसी बात को इस प्रकार कहते हैं-

हां ज़ारये हैं इस में भी सब वहीं मौंजें ।
मगर हे क़तरे पे फ़ज्र रक्तराम दरिया का ॥

मिर्जा गालिब क्यूँ यों कहते हैं-

क्षरता अपना भी लकीर में है दरिया डेकिन ।

हमको तक्लीद तुमक बफ़ी-र-मंसूर नहीं ॥

मंसूर इलाज ने कुछ हक़ कहा और ख़ुली पर चढ़ा दिये गये। उर्दू के साधारणों के अनुसार मंसूर को "बादा-र-वहक़" का पूरा नशा हुआ ही नहीं। इसी लिए उन्हें "हक़" के साथ "जना" कहने का होश बाकी रहा -

कब्र इलाहाबादी इसी बात को इस प्रकार कहते हैं-

हज़रत मंसूर जना भी कह रहे हैं हक़ के साथ ।

दार तक तक्लीफ़ फ़रमाएं जब इतना होश है ॥

इसी सम्बन्ध में यह बात भी विचारणीय है कि "वहक़" का तसव्वुर (कल्पना) नज़र में आने की वस्तु नहीं है, जो नज़र आये वह वहक़ नहीं। मंसूर यदि "वहक़" के "क़माल" पर होते तो लोगों की निगाहों से दिये हुए भी होते। कुछ हक़ के दावे के साथ नज़र जाना निरर्थक था, का: रास्ता ही ग़लत चुना गया, जिसकी सज़ा उनको भुगतनी पड़ी-

कब्र इलाहाबादी कहते हैं-

शिवे को दार पे मंसूर राह ही थी ग़लत ।

बुद्धा बने थे तो क़ुपना भी उनको लाज़िमा था ॥

तथा

जिन्हा ज़च्छा जिन्होंने दार पर मंसूर को सेंचा ।

कि छुद मंसूर को मुश्किल था जीना राज़दां होकर ॥

कायनात क़य्या सृष्टि की रचना हुई और वहक़ क़सरत में नज़र आने लगी, लेकिन क़सरत छुद देने वहक़ थी इसलिए कायनात की रचना के बाद भी "इलाह" ने अपनी ही सूरत देती -

जिगर मुरावावादी फुरनाते हैं-

कुन कहते ही जलवों की यह कसरत नज़र आई ।
खल्लाह को खल्लाह की सुरत नज़र आई ॥

नासिब इसी भाव को इन शब्दों में कहते हैं-

गफ़लत से अपना तालिब-ए-दीवार आप हूँ ।
मेरा चेहरा है जो निहाँ है नज़्म में ॥

फानी बदायूनी इसी बात को इस प्रकार कहते हैं-

कुन है ज़ात मेरी इश्क़ सिफ़त है मेरी ॥
हू तो मैं ज़मा जगर भेद है परवाने का ॥

सूफ़ी साधना के सिद्धान्त के अनुसार "नफ़्स" को "फ़ना" करना भी "तालिब" के लिए अनिवार्य है, इसी बात को उर्दू के शायरों ने कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

कव्वर ख़लावावादी-

मिट्टा दो रंग बहका में बूदी का रंग है कव्वर ।
कार साबित किया जा तो तुम अपना मुक़्तवर होना ॥

तथा

खल्लाह की खल्लाह जो जो हो भी जाइये ।
जो क़दर रहे हैं आप जो हो भी जाइये ॥

सफ़ता-

जो क़तरा हूँ कि मौज-ए-दरिया में गुम हुआ
जो साया हूँ कि मल्ल हुआ आफ़ताब में ॥

दर्द -

मौत क्या आके फूँकीरों से तुझे लेना है ।
मरने से आगे ही वे लोग तो मर जाते हैं ॥

जातिह-

मुझे जो पैसा मरने से वो लोग ।
कफ़न समझे क़बा-ए-ज़िन्दगानी ॥

सूफ़ियों के 'इश्क़-ए-मवाज़ि' और 'इश्क़-ए-तकीकी' कि भी ज़ुं
साधारणों ने खिया है-

बली-

पाया है का में है बली को गोहर-ए-मक़सूद कूं ।
जो इश्क़ के बाज़ार में मजनून नमन रुसवा हुआ ॥

मीर-

मा-सियत का फूँकीरों की सी इश्वान-ए-बर्ता से कर ।
कोई ग़ाज़ी भी दे तो कह भला भाई भला होगा ॥

ग़ाज़िब -

कित फ़िर तबाक़ कूर महामत को बाये है ।
पिन्दार का सनमक़दा वीरां किये छु ॥

लक़्खर -

लोग कहते हैं कि बदनामी से बचना चाहिए ।
कह दो वे इसके बदनामी का मज़ा मिछता नहीं ॥

जिगर -

कुत्त से है इश्क़ की रुसवाइयां ।
बाद: जब तक है फ़रौज़-ए-जाम है ॥

तथा

तर्क-ए-बुद्धी से नारुह-ए-फिन्दार हो गये ।

बाज़ाद होते होते गिरफ्तार हो गये ॥

उपयुक्त उर्दू के शायरों द्वारा प्रस्तुत "कंठवार" को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि उर्दू साहित्य पर भी तसव्वुफ़ का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। किन्तु एक बात दृष्टव्य है कि हिन्दी की भांति उर्दू के शायरों ने कोई प्रेमास्थान नहीं लिखा है। उन्होंने भावों को फुटकल क़तवार, नज़्म, गज़ल, रुबाई आदि के द्वारा ही प्रस्तुत किया है।

मसनवी भी लिखी है तो कोई बहुत बड़ी नहीं। किन्तु उर्दू शायरों ने जो कुछ भी तसव्वुफ़ पर लिखा है वह बहुत सूब है।

एक बात और ध्यान देने की है कि उर्दू शायर तसव्वुफ़ पर क़लम उठाते समय बहुत मोहतात "दिक्ताह" देते हैं। उर्दू के शायरों ने हिन्दी के सूफ़ियों की भांति इस्लामी सिद्धान्तों से जायब नहीं की है। उर्दू के शायरों ने इस्लामी सिद्धान्तों की सीमा में रहकर ही सूफ़ी वाद की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने कल्पित प्रेमगाथाओं को अपने काव्य का विषय नहीं बनाया है। न ही उन शायरों ने अपने काव्य में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन ही किया है।

उर्दू के शायरों ने उदार भाव अपनाते हुए हिन्दू और मुसलमान में एकता स्थापित करने की चेष्टा की है। उन्होंने अपने काव्य द्वारा बाइबु (उपदेशक) और शेर पर व्यंग्य किया है जो केवल उपदेश देना ही जानते हैं और कसलियत तक नहीं पहुँचते। किसी शायर ने क्या ठूब कहा है-

बाइबु शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर

या वो जाह बता दे जहाँ पर गुदा न हो ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबी, खुज्जराह, बहरी, अबी मुहम्मद, अलगर, बर्द, फ़रानी, ग़ाज़ि, भीर, साँदा, शेफ़ता, ज़ार, अज़र, नासिर, वासिर, झोकर, मोमिन, मुसलमानी, शाय, रिवाज़, रासिर, राज, ताबा, अलीर, दाग़, कायम, आरज़ु, भीर ख़ान, ख़ज़ीर, सिराज़ आदि उर्दू के शायरों ने तसल्लूफ़ पर आधारित उच्चकोटि की रचनाएं प्रस्तुत की हैं। एक बात विशेष रूप से उर्दू के शायरों के सम्बन्ध में ध्यान देने की है कि ये कवि तनिक भी साम्प्रदायिक भावनाओं से ग्रस्त नहीं थे। इनकी नज़रों में सभी धर्मों का सम्मान था। बल्कि उर्दू के शायरों ने अपनी शायरी से भारतवर्ष में भावनात्मक एकता को बल ही दिया है।

उर्दू के प्रसिद्ध चिन्तक, दार्शनिक और कवि डा० इल्वाज़ का कथन है-

मनुष्य नहीं सिखाता आपस में बैर रचना ।
हिन्दी है हम बतन है हिन्दोस्तां हमारा ॥

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

“इस्लाम के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी सूफ़ी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन” नाम कपो इस शोध-प्रबन्ध में मैंने चेष्टा की है कि इस्लाम, पैगम्बर मुहम्मद सात्व, तसव्वुफ़, प्रसिद्ध सूफ़ी, सूफ़ी सिद्धान्त एवं उद्य, सूफ़ी सिद्धि आदि के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हुए इस्लाम के उद्य को स्पष्ट करें ताकि वे लोग जिन्हें इस्लाम का सही ज्ञान नहीं है, इस्लाम से परिचित हो सकें और उसको समझने का प्रयास करें। इसके साथ ही मैंने यह भी प्रयास किया है कि इस्लाम से सम्बन्धित भ्रान्तियां भी दूर हों, जो किन्हीं कारणोंवश उत्पन्न हो गई हैं।

इसके साथ ही मैंने इस प्रबन्ध में भारत में जानेवाले मुसलमानों, सूफ़ियों, धर्म प्रचारकों, रचनाकारों के साथ ही साथ भारतीय सूफ़ी साधकों, उनके सम्प्रदायों, उनके द्वारा लिखे गये आन्दोलनों का वर्णन करते हुए भारतीय भक्ति आन्दोलन में सूफ़ियों के योगदान को वर्णित किया है। तत्परचातु भारतीय साहित्य, सभ्यता एवं संस्कृति का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए प्रेमाख्यानों का उल्लेख किया है और यहीं से वह महान् और विपुल हिन्दी सूफ़ी साहित्य सामने आता है जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी, मीराना दाऊद, सुह्रन, मंफन, उस्मान आदि कवियों ने इस्लाम, तसव्वुफ़ और भारतीय दर्शन का एक “गंगा-जमनी” साहित्य प्रस्तुत किया है।

“इस्लाम” के परिप्रेक्ष्य में इन हिन्दी सूफ़ी कवियों की रचनाओं की आलोचना प्रस्तुत करना कोई सरल कार्य न था। इसके लिए मुझे अरबी, फारसी, कोजी, उर्दू, संस्कृत, हिन्दी आदि के तत्सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन करना पड़ा, इस्लामी धर्म के मूल्य विधानों से साक्षात्कार करना पड़ा। तसव्वुफ़ के पारस्विकों

ते सम्बन्ध स्थापित करना पड़ा। इस्लामी धर्म के साथ ही साथ इसके तत्त्व-बोध-तमझुन को भी भाँति समझ कर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का गहन अध्ययन करते हुए मैंने दोनों सभ्यताओं का मिलान करके हिन्दी के सूफ़ी काव्यों को समझने का प्रयास किया है।

यदि मेरा विषय "तसव्वुफ़" के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी सूफ़ी काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन होता तो मुझे अधिक गंभीरतापूर्वक अध्ययन और भाग-दाँड़ की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि तसव्वुफ़ के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुत कुछ लिखा गया है और दूसरे हिन्दी का सम्पूर्ण सूफ़ी साहित्य पूर्णतः तसव्वुफ़ पर ही आधारित है। इस्लाम के सम्बन्धित कार्य हिन्दी में बिल्कुल भी प्राप्त नहीं है और बिन लोगों ने इस पर लेखनी चलाने का साहस भी किया है तो उन्होंने भी केवल स्थूल वर्णन तक ही अपनी सीमा रखी है।

हिन्दी सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमात्मियों में तसव्वुफ़ और भारतीय संस्कृति एवं दर्शन को अधिक महत्त्व दिया है और तसव्वुफ़ के मूल इस्लाम को अधिक महत्त्व प्रदान नहीं किया है और जो कुछ वर्णन किया भी है, वह वर्णन, अवास्तविक तथा इस्लामी सिद्धान्तों के विपरीत है। अतः मेरी समस्या बड़ी बटिख थी कि मैं किस प्रकार चिर-प्रचलित चली जा रही मान्यताओं को नकारते हुए "सच्चे इस्लाम" के आधार पर हिन्दी सूफ़ी द्वारा प्रस्तुत काव्य का आकलन करूं। क्योंकि हिन्दी के ग्रन्थों में कहीं भी किसी भी विद्वान् ने सूफ़ियों द्वारा प्रस्तुत साहित्य के सम्बन्ध में यह लिखने का साहस नहीं किया है कि इन सूफ़ी कवियों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए किस प्रकार "इस्लाम" के मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा करते हुए अपना साहित्य सृजित किया है। सूफ़ी कवियों ने कहीं-कहीं तो जति ही कर दी है। वे इस्लाम से बहुत दूर चले गये हैं। इस्लाम की मूलभूत मान्यताओं और विश्वासों का ही उन्होंने तिरस्कार कर दिया है। ऐसी दशा में मुझे इन सूफ़ियों

के द्वारा प्रस्तुत साहित्य की कटु आलोचना अब करनी पड़ी है क्योंकि कोई भी व्यक्तियों को क्लिप्तियों अथवा नावों में लान-लान पर रखकर क्वापि पार नहीं पहुँच सकता ।

जबकि यहाँ तो मानता तीन पदार्थों का है, इस्लाम, तसव्वुफ और भारतीय धर्म एवं दर्शन । इस्लाम और हिन्दू धर्म में उपासना तत्त्वों का विरोध है, इस्लाम निराकार ईश्वर की उपासना का हामी है और एकेश्वरवाद पर बल देता है जबकि हिन्दू धर्म मूर्ति पूजा अर्थात् साकारोपासना के साथ ही साथ अनेकेश्वरवाद व अवतारवाद का पदापाती है। इस्लाम के अनुसार अलाह या परमात्मा के साथ किसी को भी सम्मिलित नहीं किया जा सकता, जबकि हिन्दू ईश्वर ब्रह्म भी होता है, उसके माता-पिता, भाई-बहिन, फरवी, पुत्र-पुत्री आदि सभी होते हैं । दूसरी ओर तसव्वुफ में बहुत से सिद्धान्त ऐसे हैं जो इस्लाम का अनुमन करते हैं और अनेक ऐसे भी हैं जो इस्लाम के एकदम विपरीत, विरोधी और हिन्दू धर्म एवं दर्शन से मेल खाते हैं। सूफियों का अद्वैतवाद और रहस्यवाद, हिन्दू अद्वैतवाद और रहस्यवाद के एकदम निष्ठ बैठता है। इस्लाम में अद्वैतवादी और रहस्यवादी दृष्टिकोणों के होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

हिन्दी सूफी कवियों ने कदाचित् अपने मत के प्रचार एवं प्रसार हेतु ही तसव्वुफ और भारतीय दर्शन एवं विचारधारा का संगम अपने साहित्य में किया है ।

इस्लाम का प्रथम गृह ज़रब का एक भू-भाग था । वहीं से उठकर वह सम्पूर्ण जंगल में फैल गया । ज़रब में प्राचीन काल से ही अन्तराष्ट्रीय भ्रातृत्व भावना का सूत्रपात हो चुका था जिसका प्रसार इस्लाम के अनुयायियों द्वारा हुआ ।

फेमबर-ए-इस्लाम ख़ुरत-मुहम्मद साहब ने आशा व वृद्धा का बो नया फेमम दिया था वह ज़रब की भूमि से ही किया था । इस्लाम स्वयं को कोई

नया धर्म नहीं कहता, वरन् उसका तो यह दावा है कि फौम्बर मुहम्मद से पूर्व बुदा के जो नेक एवं महान् बन्दे जिस सत्य की शिक्षा देते जाये हैं उस शिक्षा को वह (इस्लाम) 'पूर्ण सत्य' के रूप में प्रस्तुत करता है। इस 'पूर्णसत्य' का मतलब समझाने के लिए 'कुरआन शरीफ' ने 'दीन' और 'शरीकत' से काम लिया है।

'दीन' उस धार्मिक और नैतिक आत्मा का नाम है जो समस्त धर्मों में एक जैसी है। 'दीन' सदा से एक है और एक रहेगा, 'शरीकत' हर युग में और हर जाति के लिए जग-जग जाती रही हैं। 'दीन इस्लाम' सब धर्मों की वास्तविक एवं सत्य शिक्षा को स्वीकार करता है किन्तु 'इस्लामी शरीकत' पिछली शरीकतों को निरस्त करती है। 'शरीकत-ए-इस्लामी' का दावा है वह अन्य शरीकतों की भांति किसी युग-विशेष या किसी जाति विशेष के लिए नहीं है। बल्कि उसने मानव-प्रकृति के ऊपर और अन्तराष्ट्रीय नियमों को दृष्टि में रखे हुए व्यक्ति और समाज के जीवन के लिए ऐसे सिद्धान्त बना दिये हैं जो सदैव काम करें।

इस्लाम की वास्तविक शिक्षा का मूल 'कुरआन शरीफ' है जो रसूल-उल्लाह पर नाज़िल (उतरा) हुआ। फौम्बर मुहम्मद सात्व के कथनों के संग्रह को 'हदीस' कहते हैं, मुसलमानों के लिए बहुत महत्त्व रखते हैं।

कुरआन शरीफ बिना दो मूलभूत धार्मिक ंधों की शिक्षा देता है, वे हैं-

- १- बुदा की कल्पना जिसके सिलसिले में कायनात की कल्पना भी जाती है।
- २- इंसान और बुदा का सम्बन्ध जिसके सिलसिले में इंसानों के प्रारम्भिक सम्बन्धों और उनके व्यक्तित्व तथा सामाजिक अधिकार और कर्तव्य भी जा जाते हैं।

इस कायनात (सृष्टि) पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने के पश्चात् मानव को इसके भीतर एक अनुशासन और क्रम का जग बाभास होता है और उसके हृदय में एक

ऐसे घुंटा की कल्पना उत्पन्न होती है जिसने जात एक उद्देश्य और एक व्यक्ति के अन्तर्गत उत्पन्न किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस कायनात को पैदा करनेवाला, इसका संभारनेवाला, इसकी अच्छाई-भलाई का सामान अथवा रक्षा-निर्देशी भी है।

उपर्युक्त बात के आधार पर ही 'तुवा' को मलान् शक्ति-सम्पन्न और सर्वोच्च माना जाता है। रसूलुल्लाह और उनके प्रथम चार उत्तराधिकारियों क़ुरत अबूबक़्क़ सिद्दीक़, क़ुरत उस्मान ग़नी, क़ुरत उमर फ़ाज़्क़, क़ुरत अली जादि ने चालीस वर्षों की भीतर जो इस्लामी व सभ्यता एवं संस्कृति से सम्बन्धित नियम निर्धारित किये उनके ही आधार पर आगे चलकर 'इस्लामी संस्कृति' का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे इस्लाम के अनुयायियों ने अरब से बाहर भी इस्लाम का प्रचार करना आरम्भ किया और धीरे-धीरे इस्लाम स्पेन से लेकर मलेशिया तक फैल गया।

भारतवर्ष में सबसे पहले तो मुसलमान दक्षिणी भारत में व्यापारियों के रूप में आये थे और फिर उत्तरी भारत में वे अरब आक्रमणकारियों के रूप में सन् ७१२ ई० सिन्ध में आये। धीरे-धीरे वे भारतवर्ष में ही आबाद होते चले गये। उन्होंने अपना एक समाज स्थापित कर लिया। उस समय का प्रत्येक मुसलमान एक प्रचारक होता था और अपने धर्म का तन, मन, धन सब प्रकार से प्रचार करता था। मुसलमान शासकों में विजय-प्राप्ति के साथ ही उन लोगों द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार कार्य शान्तिपूर्वक आरम्भ हो जाता था। कभी-कभी तो वे सम्पूर्ण आबादी को ही मुसलमान कर लेते थे।

यहां पर मैं एक प्रान्ति दूर कर देना चाहता हूं और वह यह कि कुछ लोगों का विचार है कि इस्लाम तलवार के जोर पर फैला, यह बात एकदम ग़लत है, क्योंकि इस्लाम इस बात का सबसे बड़ा विरोधी है कि अपने मत को शक्ति के बल पर मनवाया जाये। इस्लाम तो एक शान्तिप्रिय धर्म है। इसलिए इस्लाम के

प्रचारकों ने प्रेम, विश्वास, ब्रह्मा और शान्ति के आधार पर ही इस्लाम का प्रचार करना अपना परम कर्तव्य माना है। यह बात यों भी सिद्ध होती है कि यदि जबरन लोगों पर इस्लाम को थोपा गया होता तो आज भारतवर्ष में एक मुसलमान का भी अस्तित्व न होता क्योंकि जो कार्य जबरदस्ती किया जाता है, उसका प्रभाव हृदयों पर चिरस्थायी नहीं होता ।

इस्लाम के प्रचार का कार्य सुफिया-ए-कराम ने हाथ में लिया, किन्तु उनके मार्ग में बड़ी कठिनाइयाँ थीं । सुफियों ने इन कठिनाइयों का वीरतापूर्वक सामना करते हुए कठिन परिस्थितियों में, राज्य सरकारों की सहायता के बिना ही केवल अपने "बोश-ए-इमानी" से तबलीग (प्रचार) के मैदान में आश्चर्यजनक कार्य किया और सफलता प्राप्त की । लाखों करोड़ों व्यक्ति, जिनमें ऊँचे वर्गों के लोग भी सम्मिलित थे, मुसलमान हो गये । वहाँ पर एक बात और विशेष ध्यान देने की है और वह है इस्लाम की "मसावात", जिसके अर्थ होते हैं "सबको समान सम्मानना" किसी भी प्रकार की भेदादृष्टि न मानना और किसी को ऊँचा या नीचा न सम्मानना । "इस्लामी मसावात" का भारतवर्ष के उन लोगों पर विशेष प्रभाव पड़ा जिनको वहाँ के ऊँचे वर्ग के लोग नीच और अधृत मानते थे । उन लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक इस्लाम धर्म को गले लगा लिया क्योंकि इस धर्म में उनको पक्की चार बराबरी का दर्जा प्राप्त हुआ ।

भारतवर्ष के सुफ़ी शान्ति प्रिय और एकान्तप्रिय थे । उन्होंने कभी भी शासन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं किया । इन लोगों ने राजनीति के हाथों से दूर रहकर भक्ति और प्रचार का कार्य ही किया । उन्होंने इस्लाम को फारस या सीन्ध और मुस्लिमों तक पहुँचाने में, मुसलमानों में गहरी मजबूती डल, दूर दृष्टि, उदारता और इंसानी हृदय की उत्पन्न करने में, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच

की आई एक छद तक पाटने में जो मक्खी साधना की है उसे इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णिम किरानों में लंकित किया जायेगा ।

✓ सुफ़ियों के प्रयास से ही हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के समीप आए । दोनों ने एक-दूसरे को समझने की चेष्टा की और उस में किसी छद तक सफल भी हुए ।

सुफ़ियों के इस्लाम के "क़दीवा-ए-ताहीद" को हिन्दुओं के सम्मुख "वहकतुल वहुद" के रंग में प्रस्तुत किया । इस क़दीवे क़य़ा विश्वास में हिन्दुओं को अपने वेदान्त के दर्शन की फलक नज़र आई और उसने उनके दिलों को अपनी ओर आकर्षित किया और इससे भी अधिक आकर्षण उनके लिए इस्लाम का सामाजिक रूप था जो "मसावात" की नींव पर निर्मित हुआ था।

भक्ति आन्दोलन का भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है ४- हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे के समीप लाने का। इस भक्ति-आन्दोलन के अग्रदूत थे रामानुजाचार्य और इसका प्रचार एवं प्रसार का कार्य किया स्वामी रामानन्द और बल्लभाचार्य ने । स्वामी रामानन्द की प्रेरणा से ही कबीर और तुलसी जैसे भक्तों ने सच्चे हृदय से मानवता की सेवा करने का प्रण लिया ।

✍ मकारिफ़त के नवीन राग द्वारा कबीर ने साधारण हिन्दुओं और मुसलमानों के गहरे इशानी क़य़ात क़य़ा भावनाओं को अपने काव्य में समेट लिया। कबीर के काव्य में इंसान को संवेत किया गया है, काह्याहन्कर का विरोध किया गया है और हिन्दू-मुसलमानों को दोस्ती का पाठ पढ़ाया गया है। उसी युग में गुरु नानक हुए । उन्होंने भी कबीर की भांति हिन्दू धर्म और इस्लाम के जाति-रिक्त विश्वासों को एकत्र करके एक नये धर्म की नींव डाली । नानक के ईश्वर

का रूप इस्लामी "तोहीद" के विश्वास के अधिक निकट है। उन्होंने भी आपसी एकता के लिए कार्य किया।

उपयुक्त साधकों की यह चेष्टा थी कि धर्मों के वास्तविक ढांचों को छोड़कर ब्राह्मण कहानी कथना का ध्यात्मिक आधार पर एक ऐसे धर्म की स्थापना करें जिसमें हिन्दू धर्म की अन्तरात्मा और इस्लामी तत्त्वों का गोंद छुलकर एक हो जाये और सम्पूर्ण भारत धार्मिक एकता के रंग में रंग जाये। किन्तु ऐसा सम्भव न हो सका।

यह कार्य सुफियों द्वारा ही सम्भव हो सका। यह तो न हुआ कि समस्त भारतवासियों का एक ही धर्म हो, किन्तु सुफियों के प्रयासों से आपसी मतभेद दूर हुए, घृणा की दीवारें ढल गईं और इस देश के रहने वाले एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये। आपस में भाई-भारत व बन्धुत्व की भावना का विकास हुआ।

सुफियों के चिरती, सुहरावदी, खीजी, तफूरी, कर्षी, सत्ती, बुनेदी, काज्जी, सुसी, फिरदोसी, क्कमी, खुरी आदि सिलसिलों में दीक्षित सुफियों ने वास्तव में इन्सानियत के लिए अभूतपूर्व कार्य किए।

इन सुफियों में खाना गरीब नवाज मुहम्मद उद्दीन चिरती, क़ुतुबुद्दीन बख्तियार काली, शेख फ़रीदुद्दीन गसूद, मिर्जामुद्दीन बोलिया, अलाउद्दीन अली बहमद साबिर, शेख सलीम, बहाउद्दीन तबरेज़ी, संयद अलालुद्दीन-मसूद तबरेज़ी, संयद अलालुद्दीन-मसूद-बहानिया, बुरहानुद्दीन क़ुतुब-ए-कालम, मीरान मुहम्मद शाह, हाफ़िज मुहम्मद इस्माइल लाल सात्व बाज, रसूल शाह, मोहम्मद ग़ास, खाना बाली बिल्लाह, बहमद फ़ाज्जी, शेख अब्दुल्लाह ख़वारी, शाह

मदार बदीउद्दीन, अब्दुल क़ुस, संयद मुहम्मद जॉनपुरी प्रमुख हैं जिन्होंने चिश्ती, सुहरावर्दी, कादरी, नज़्जबन्दी, ज़दारी, मदारी आदि सिलसिलों के अन्तर्गत इस्लाम के प्रचार के साथ ही साथ अन्य भारतीयों के साथ प्रेम-व्यवहार किया। उपर्युक्त सुफ़ियों के प्रयासों के द्वारा ही भारत में हिन्दू-मुस्लिम एक-दूसरे के इतने निकट आ गये कि एक ही समाज बन गया। दोनों संस्कृतियों में एकीकरण हो गया। केवल बाह्य आवरण का अन्तर है। आत्मा तो एक ही है।

सुफ़ियों का प्रभाव अपनी सरल ईश्वरोन्मुखी भावना के कारण जन-समुदाय में विशेष रूप से पड़ता रहा और समाज के निम्न धरातल के लोग इन सुफ़ी सिलसिलों में दीक्षित होते रहे।

दूसरी ओर बादशाह और सुल्तान भी इन सुफ़ियों का बहुत आदर सम्मान करते थे, वे इन सुफ़ियों को अपना गुरु मानते थे। इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि अकबर और जहाँगीर जैसे महान् एवं प्रतापी मुग़ल सम्राटों के सुफ़ी पीर थे और अपने पीर की आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं करते थे।

सम्राट शाहजहाँ का पुत्र दारा शिकोह तो स्वयं मुस्लिम और हिन्दू रहस्य ज्ञान का बहुत बड़ा विद्वान् था, उसने दोनों मतों की विवेचना करते हुए सिद्ध किया था कि इन दोनों में कोई भेद नहीं है, दोनों मतों की आत्मा एक ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में तसव्वुफ़ का उत्थान १४वीं शताब्दी इसवी से १७ वीं शताब्दी इसवी तक खूब हुआ और एक प्रकार से संपूर्ण भारतवर्ष में तसव्वुफ़ ही आ गया।

मुसलमान तो पीरों, तैयों, मुहिदों जैसा गुरुओं को सम्मान देते ही थे, किन्तु हिन्दू तथा अन्य जातों के लोग भी इन पीरों के प्रति अद्वा रखते थे। उनका सम्मान करते थे। इन सूफ़ी पीरों, दरवेशों और फ़कीरों ने आम जनता के हृदय में अपने लिए एक विशेष स्थान बना लिया। यह कार्य उन्होंने प्रेम और सेवा द्वारा किया।

ये मुस्लिम सूफ़ी भारतीय जनता में इतने सम्माननीय थे कि इनके मरणो-परान्त जहाँ ये दफ़नाये गए वहाँ पर बड़ी-बड़ी दरगाहें, वास्ताने बना दिये गये और आज भी आम जनता के अतिरिक्त उच्च जातों के लोग राज्याधिकारी, नेता आदि उनकी दरगाहों पर मन्त्र मानने और हाज़िरी देने उपस्थित होते हैं। इन दरगाहों पर वाणिज्यिक 'उर्स' हुला करते हैं, क़व्वालियां होती हैं, इन 'उर्सों' के अवसरों पर उन दरगाहों पर न केवल भारतवर्ष के हिन्दू मुसलमान अपितु विदेशों के भी लाखों अद्वालुवन आते हैं और अपने अद्वा सुमन अर्पित करते हैं।

इन सूफ़ियों ने भारतीय भाव जगत् में एक अद्वय स्थान प्राप्त कर लिया है। जब यहाँ पर एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है और वह है कि कुछ प्रष्ट या प्रम्त देशी-विदेशी इतिहासकार हिन्दू-मुसलमानों में भेद-भाव और गुलतफ़ुहमी बनाये रखने के लिए यह कहते हैं कि हिन्दूओं ने मुसलमानों का प्रभुत्व एवं शासन तलवार के भय से स्वीकार किया था। आज तो तलवार का भय नहीं है फिर क्या कारण है कि सूफ़ियों की दरगाहों पर, स्वाज़ा मुहम्मदीन चिरंजी के अग़मर के वास्ताने पर हिन्दू-मुसलमानों से कहीं अधिक बड़ी संस्था में जाते हैं।

किसी के प्रति हृदय में अद्वा तलवार के जोर से पैदा नहीं की जा सकती। अद्वा तो स्वतः ही किसी व्यक्ति द्वारा किये गये सत्कर्मों के प्रति होती है।

सूफियों ने इस्लाम का प्रचार तो अवश्य किया किन्तु उन्होंने सेवा सम्पूर्ण मानवता की की। यही कारण है कि वे आज भी इतना बड़ा समय बीत जाने के बावजूद भारतवासियों के ज़ेदा एवं सम्मान के पात्र बने हुए हैं।

सूफ़ी संतों जैसा जीवन व्यतीत करते थे, वे अल्लाह के पक्के भक्त थे। वे अल्लाह की इबादत में लीन रहते थे। उनका जीवन विरक्तों जैसा था, वे ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा करते रहते थे। वे अन्य धर्मों का भी बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। सूफ़ी अत्यधिक अध्ययनशील, चिन्तकशील, मननशील व्यक्ति हुआ करते थे। इन सूफ़ियों के लिए प्रेम, ईश्वरीय विरह की अनुभूति और ज्ञान का बहुत ही अधिक महत्त्व था। कभी-कभी वे सूफ़ी चमत्कार प्रदर्शन द्वारा करामातें भी दिखावा करते थे जिनको आम लोग का बाद समझते थे। इन चमत्कारों तथा करामातों के द्वारा सूफ़ियों की ख्याति देश के कोने-कोने में फैल गई थी।

यहां पर एक बात ध्यान देने की है कि ये सूफ़ी साधक इस्लाम के सिद्धान्तों के आधार पर ही अपने मत का प्रचार करते थे। ख्वाजा मुनिद्वीन चिश्ती, निजामुद्दीन, गोलिया, ख़ुबुद्दीन बख़्तियार काकी आदि की जीवनी पढ़ने पर ज्ञात होता है कि ये सभी इस्लामी शरीक़त के पाबन्द थे। 'साँन-जो-सलात' अथवा रोज़ा, नमाज़ आदि का विधिवत् पालन करते थे। दूसरे शब्दों में ये समस्त सूफ़ी साधक सच्चे ईश्वर भक्त और सच्चे मुसलमान थे।

केवल अन्तर यह था कि वे कट्टरपंथी नहीं थे। वे उदार अधिक थे। उनके हृदय में सम्पूर्ण मानवता के लिए साथ प्रेम था और वे चाहते थे कि प्रत्येक मानव 'प्रेम' का व्यवहार करते हुए ही जीवन व्यतीत करे। यहां तक कि वे 'भक्ति' में भी 'प्रेम' का महत्त्व मानते थे और 'इश्क़-ए-इलाही' में लीन रहते थे।

इसी प्रेम और 'इश्क़-ए-इलाही' वाली मान्यता को हिन्दी के सूफ़ी

कवियों ने इतना अधिक महत्त्व दिया कि शेष बातें पीछे रह गईं और सर्वत्र साहित्य में केवल "प्रेम" के ही दर्शन होने लगे ।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने फ़ारसी की "मसनवी" शैली के आधार पर अत्यधिक उच्छकोटि के प्रबन्धों एवं प्रेमास्थानों का सृजन किया । साहित्यिक दृष्टि से सूफ़ी प्रेमास्थानों का बहुत महत्त्व है। यदि हिन्दी साहित्य में से "सूफ़ी साहित्य" को निकाल दिया जाये तो हिन्दी साहित्य का सुन्दर शरीर तो हमारे सम्मुख रहेगा किन्तु वह ऐसा होगा जैसे उसमें आत्मा न हो । सूफ़ी साहित्य रहित हिन्दी साहित्य ऐसा ही प्रतीत होगा मानो एक सुन्दर गुलाब का फूल हमारी आँखों के सामने हो किन्तु उसमें सुगन्धि न हो ।

आज सूफ़ी काव्य और हिन्दी साहित्य एक-दूसरे के लिए "लाज़िम-ओ-मलजूम" बन चुके हैं । ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एक के बिना दूसरा अपूर्ण है । हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने जो काव्य रचना की है वह अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। इन सूफ़ी कवियों में उदारता और विमलता के गुण विद्यमान थे । इन कवियों ने इस्लामीय अकेश्वरवाद के एक सर्वव्यापी द्रष्टृ की कल्पना की जो जग-जग में व्याप्त है और इस प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु ही ईश्वर-स्वरूप है। सूफ़ी कवियों ने प्रेम की "पीर" को महत्त्व देते हुए ईश्वर के प्रेम किया है। उनके लिए इस नश्वर संसार में इशक याद प्रेम से अधिक महत्त्व कोई अन्य वस्तु नहीं थी । हिन्दी के सूफ़ी कवियों के अनुसार ईश्वर की प्राप्ति यदि हो सकती है तो केवल एक माध्यम से और वह माध्यम है - प्रेम ।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने अपने सर्वव्यापी द्रष्टृ के साथ ही भारतीय अद्वैतवाद को भी अपना लिया और इस प्रकार "अनलक्षण" और "अहं ब्रह्मास्मि"

रक हो गए । हिन्दी सूफ़ी कवियों ने निर्णोपासना और सणोपासना का एक समन्वित रूप प्रस्तुत किया । तसव्वुफ़ वास्तव में ज्ञान, भक्ति और प्रेम का मिश्रित रूप लिये हुए था । जब तसव्वुफ़ का भारतीय भक्ति पद्धति से संपर्क हुआ तो इसमें अनेक भारतीय बातें भी आ गयीं वही मिला-जुला रूप हमें हिन्दी सूफ़ी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। इन सूफ़ी कवियों ने सिद्धों और योगियों का प्रभाव भी ग्रहण किया था ।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों की एक लम्बी सूची है जिसका पूर्ण विवरण मैंने अपने प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में प्रस्तुत किया है। हिन्दी के सूफ़ी कवियों में अधिक प्रमुख हैं- मोलाना दाऊद, कुब्रन, मंफ़न, मलिक मुहम्मद जायसी, बालन कवि, उस्मान, कासिमशाह, नूर मुहम्मद आदि तथा इन कवियों द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ क्रमशः चन्दावन, मृगावती, पद्मावत, आशिरी क़लाम, चित्ररेखा, कलरावट, मधुमालती, चित्रावली, हंस बवाशिर, इन्द्रावती, कुराग-बांसुरी आदि । ये सभी ग्रन्थ प्रेमाख्यान हैं।

सूफ़ियों ने सूफ़ी साधना के जो तत्त्व प्रस्तुत किये थे, हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने उनके ही आधार पर अपने प्रेमाख्यानों की रचना की थी । बालन कवि ने अनेक काव्य लिये जिनके द्वारा उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों में समन्वय की स्थापना की सफल चेष्टा की । हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में इन कवियों ने इला नियत अवका आध्यात्मिकता को बहुत अधिक महत्त्व दिया । इन कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक या दिव्य प्रेम की रचना की अथवा सूफ़ी शब्दावली में उन्होंने 'इरक-ए-मजाज़ी' के द्वारा 'इरक-ए-हकीकी' को प्रकट किया है ।

इन हिन्दी सूफ़ी कवियों ने पौराणिक तथा लोककथाओं के आधार पर अपने प्रेमाख्यानो की रचना की है किन्तु इन रचनाओं में प्रारम्भ में अन्त तक रहस्यवादी अंतर्वादी सूफ़ी विचारधारा के ही दर्शन होते हैं। हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने फारसी मसनवी शैली के आधार पर अपनी न्या का आरम्भ किया है। न्या से पहले उन्होंने इश-स्तुति, मुहम्मद साहब की प्रशंसा, गुरु की प्रशंसा, शाह-ए-वज्ज की तारीफ़ और न्या के उद्देश का उल्लेख किया है। लगभग सभी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में यह रूप मिलता है।

तत्पश्चात् सूफ़ी कवियों ने किसी भारतीय लोककथा जैसे पद्मावती-रत्नसेन प्रेमकथा (पद्मावत), चन्दा-लोरिक प्रेमगाथा (चन्दावन) अथवा अरबी-फारसी लोक कथा जैसे यूसुफ़ कुंसा, छेला मजनुं आदि को अपने काव्य का विषय बनाया है।

उक्त न्याओं में उन्होंने नायक के हृदय में प्रेमोदय, चित्रदर्शन, स्वप्न-दर्शन, रूप गुण अथवा, द्वारा उत्पन्न किया है। रूप-कथान को सुनते ही नायक का सब कुछ त्यागकर जागी बन जाना और फिर प्रेयसी को लोभने के लिए निष्कल पहना तथा अनेक कथाओं, विपत्तियों और कठिन परिस्थितियों से गुज़र कर अन्ततोगत्वा प्रेयसी की प्राप्ति करना ही कर्ण विषय है। इन ग्रन्थों में से अधिकतर दुःखान्त हैं।

हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में 'सूफ़ी प्रतीक' का प्रयोग करते हुए नायिका को ब्रह्म, शुक को गुरु और नायक को साधक रूप प्रदान किया गया है। लगभग सभी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में सूफ़ी साधना के शरीक़त, तरीक़त, मवारिक़त लकीक़त चारों मुकामात का विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। 'नूर-ए-मुहम्मदी' और 'नूर-ए-इलाही' को भी चित्रित किया गया है। इन ग्रन्थों में जहाँ-जहाँ नायक ने नायिका के सम्बन्ध में कुछ सुना है अथवा जब कभी उसको देखा है तो वह मूचिर्षित

हो जाता है। यह बात सूदा के जुबे की ताव न लाने की है। इसी प्रकार इन कवियों ने सृष्टि के निर्माण के सम्बन्ध में भी हदीसों को आधार माना है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम "नूर-ए-मुहम्मदी" पैदा किया फिर उसी की प्रीति में इस सृष्टि का निर्माण किया।

इस प्रकार सम्पूर्ण सुफ़ी काव्य सुफ़ी-साधना एवं सिद्धान्तों पर आधारित है। इन सुफ़ी कवियों ने कहीं-कहीं पर इस्लामी सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया है, किन्तु प्रेम की पीर को व्यक्त करते हुए इन कवियों ने इस्लाम से इन्ति भी की और एक प्रकार से क़त्लाह के एक बिल्कुल अलग-थलग रूप को नकारते हुए ईश्वर के सर्वव्यापी रूप को स्वीकार किया है तथा मानव-प्रेम के द्वारा ईश्वर प्रेम को महान् दी अथवा दूसरे शब्दों में मानव अथवा जीवात्मा को ही परमात्मा को स्वयं प्रदान कर दिया। इस प्रकार यह बात इस्लाम के एकेश्वरवाद के एकदम विपरीत पड़ गई।

काव्य रूप के अन्तर्गत सुफ़ियों के प्रिय इन्द दोहा, चोपाई हैं, इनके अतिरिक्त सुफ़ियों ने कविता, संख्या, सौरठावादि इन्दों का भी प्रयोग किया है। रसों में सुफ़ियों का सबसे प्रिय शृंगार रस है और उसमें भी उन्होंने मिक्र विप्रलम्भ शृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। सुफ़ियों के अनुसार विरह और वियोग के बिना प्रिय की प्राप्ति में कोई आनन्द नहीं मिलता। अतः विरह जितना ही उच्चकोटि का हो उतना ही अच्छा है। जायसी द्वारा वर्णित नागमती का विरह इसका एक आदर्श उदाहरण है। सुफ़ियों ने शृंगार के अतिरिक्त करुणा और वीर रस का भी प्रयोग किया है। शेष रस गोष्ठा रूप में प्रयुक्त किये गये हैं।

सुफ़ी कवियों ने प्रकृति-चित्रण भी सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। उसके अन्तर्गत उन्होंने षड्वक्त्र वर्णन और बारहमासा वर्णन भी किया है।

सूफ़ी काव्य में इकानियत अथवा आध्यात्मिकता पर अधिक बल दिया गया है। यह समस्त जड़-चेतन जगत्, सम्पूर्ण सृष्टि ख़ुशर द्वारा निमित्त है, वह व्या-व्या में व्याप्त है। सूफ़ी शब्दों में ज़र्रे-ज़र्रे में खुदा का नर बलवागर होता है। ततः जब वह सब जगह सब स्थानों में व्याप्त है तो जीवात्मा भी उसी का एक अंग है। इसलिए जीवात्मा और परमात्मा में किसी प्रकार का लोह अन्तर नहीं है। जीवात्मा, साहिक या साधक को सूफ़ी मार्ग का अनुसरण करते हुए "परम-सत्य" की प्राप्ति कर सकती है। इन कवियों का आ आध्यात्मिक पदा पूर्णरूपेण प्रेमाश्रित है।

हिन्दी के अधिकतर सूफ़ी कवि उत्तरी भारत के उत्तरप्रदेश के पूर्वी दोब के निवासी थे। ततः उन्होंने वहीं की भाषा "ठेठ अवधी" का प्रयोग किया। अवधी उस समय पूर्वी से उत्तर प्रदेश की भाषा थी जो लखनऊ से लेकर बिहार के कुछ एक दोबों तक बोली जाती थी। सूफ़ी अच्छी तरह जानते थे कि यदि अपनी बात और अपना मत दूसरों तक पहुंचाना है, तो उनके लिए अपनी बात को उन ही की भाषा में कहना आवश्यक हो जाता है। सूफ़ियों द्वारा प्रयुक्त अवधी भाषा में संस्कृत, अरबी, फारसी के शब्दों का बहुत प्रयोग किया गया है। हिन्दी कवियों ने सूफ़ी काव्य में भाषा को जड़ित और सुन्दर बनाने के लिए शब्दालंकारों और अलंकारों के सुन्दर प्रयोग के साथ ही साथ मुहावरों, कहावतों और लोकोक्तियों का आवश्यकतानुसार यथास्थान सुन्दर प्रयोग किया है जिससे सूफ़ी काव्यों की तोभा में वृद्धि हुई है। इन कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों के कथानकों के चयन में कथानक कहियों का आश्रय लिया है। ये कथानक कहियाँ भारतीय भी हैं और अजातीय भी। इनमें कुछ बहुचर्चित लोकोक्ति कथानक कहियाँ हैं और कुछ कवियों द्वारा कल्पित हैं।

उत्तरी हिन्दी सूफ़ी काव्यों के अतिरिक्त दक्षिण में भी सूफ़ी साहित्य की रचना हुई जिसे दक्षिणी-सूफ़ी काव्य का नाम दिया जाता है। इस सूफ़ी साहित्य में जो सूफ़ी काव्य तथा प्रेमाख्यान कवियों द्वारा प्रस्तुत किया गया, वह पूर्णरूपेण फ़ारसी सूफ़ी काव्य पर आधारित है। फ़ारसी मसनवी शैली पर आधारित वहीं की कहानियां जैसे लैला मजनून, सुह्रां शीरीं, युसुफ़ जुलैका आदि को दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने गृह्य किया है।

इन दक्षिणी सूफ़ी कवियों की भाषा हिन्दवी या दक्षिणी है, जिसमें हिन्दी, अरबी, फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य है। इन कवियों ने भी प्रेम को ही अधिक महत्त्व दिया है। "इश्क़-ए-मज़ाबी" से "इश्क़-ए-हकीकी" की ओर क्रमशः जाने की भावना इनमें भी दृष्टिगोचर होती है।

दक्षिणी हिन्दी के सूफ़ी कवियों में प्रमुख हैं- निज़ामी (कदमराव पदमराव), वजही (कुल्ल मुरतरी), नुसरती (गुलशन-ए-इश्क़), बुन्देदी (माह पेहर, इब्ने-निशाती (फूल बन), सैयद मीरां हाशमी (युसुफ़ जुलैका) आदि।

हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं जैसे गुजराती, मराठी, कन्नडा, पंजाबी, उर्दू आदि में भी सूफ़ियों ने काव्य-रचना की। किन्तु इनमें से उर्दू के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में कोई विशेष उल्लेखनीय काव्य अथवा साहित्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

उर्दू साहित्य में कवियों को सूफ़ी काव्य एक प्रकार से विरासत में प्राप्त हुआ। उर्दू के कवियों ने गज़ल, रुबाई और मसनवी में सूफ़ी काव्य को सूफ़ी साधना के आधार पर प्रस्तुत किया। उर्दू सूफ़ी काव्य में फ़ारसी मसनवी

परम्परा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। उर्दू में अरबी, फारसी, तुर्की भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं पर हिन्दी के प्रचलित शब्दों को भी सुन्दर ढंग से प्रयुक्त किया गया है। उर्दू के प्रसिद्ध सुफ़ी कवि हैं- कली, सिराज, बाराज, दर्ग, मीर, गालिब, तातिल, ज़िार, दाग़, सौदा, ज़ोंक आदि। उर्दू में प्रबन्धात्मक काव्य की रचना न के बराबर है।

इस प्रकार का देखते हैं कि भारत में उगरी हिन्दी, दक्खिनी हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं में बहुत ही उच्चकोटि के सुफ़ी साहित्य की रचना हुई। यदि यह कहा जाये कि हिन्दी 'सुफ़ी काव्य' का व्यापक विशेषताओं एवं सुफ़ी साधना की अभिव्यक्ति तथा प्रेम के आध्यात्मिक पदों को प्रस्तुत करने में फ़ारसी के सुफ़ी काव्य से भी आगे निकल गया है तो कोई कल्पित न होगी।

परन्तु इस्लाम के परिप्रेक्ष्य में जब मैंने हिन्दी सुफ़ी काव्य का अध्ययन किया तो मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि हिन्दी सुफ़ी कवि इस्लाम तथा इस्लामी सिद्धान्तों से बहुत दूर हो गये हैं, वे इस्लाम के मूल सिद्धान्तों का विरोध करते प्रतीत होते हैं। इस्लाम के एकेश्वरवाद के स्थान पर उन्होंने अनेकेश्वरवाद, अवतारवाद, अद्वैतवादी एवं रहस्यवादी दृष्टिकोणों को अपनाया है। जबकि इस्लाम तथा क़ुरआन शरीफ़ सबसे पहले घोषणा करते हैं "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुररसूलुल्लाह"।

"इल्लाह एक है उसमें किसी को शरीक नहीं किया जा सकता है," जबकि सुफ़ी कवियों ने पद्मावती, भूमावती, चन्दन आदि नायिकाओं को परम सत्ता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। इस्लाम की नज़र में यह कुफ़्र है, शिर्क है, यह अनाध्य अपराध है।

निष्कर्ष यह निष्कृता है कि हिन्दी सूफ़ी काव्य, काव्य रूप की आध्यात्मिकता की ओर सूफ़ी साधना की दृष्टि से भले ही उल्लेखों का अतिरिक्त साहित्य हो । किन्तु इस्लामी दृष्टिकोण से वह इस्लामी सिद्धान्तों की उपेक्षा करता है। इस काव्य में सच्चे इस्लामी रूप के दर्शन नहीं होते ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

सहायक ग्रन्थों की सूची

(हिन्दी ग्रन्थ)

- १- अमराग बांसुरी - नूर मुहम्मद - सं० चन्द्रकली पाण्डेय
- २- कबीर कुराँ - भावनात्मक रक्ता के क्रावत - डा० मलिक मुहम्मद
- ३- कलब बानी (कलबाद) - डा० अतहर अक्बास
- ४- कली आ दिल शाह का काव्य संग्रह - सं० मुंशीराम शर्मा
- ५- इस्लामी काला साहित्य - सुकुमार सेन
- ६- इरान के सुफ़ी कवि - बालकविहारीलाल तथा कन्हैयालाल
- ७- उमर ग़ेयान की रुबाइयाँ - अ० भावत कयाल
- ८- कबीर और वायसी का रहस्यवाद-और तुलनात्मक अध्ययन- डा० गोविन्द कृष्णा-
यत
- ९- कबीर के काव्य रूप - डा० नज़ीर मुहम्मद
- १०- इहरानामा और मसलानामा- अमर बहादुर सिंह
- ११- काव्य सम्प्रदाय - अशोक कुमार सिंह
- १२- काव्य में रहस्यवाद- बच्चालाल अवस्थी
- १३- क़ुतुब मुस्तरी - बबरी, सं० किल्ला बाधे
- १४- क़ुतुब ज़तक और उनकी लिम्बु- डा० माताप्रसाद गुप्त
- १५- क़ुरआन मार- राहु साहूपायन
- १६- शालिक बारी - कबीर कुराँ, सं० श्रीराम शर्मा

- १७- सुस्रो की हिन्दी कविता- इब्रतदास
- १८- गुरु नानक और उनका काव्य- डा० महीपसिंह
- १९- चंदावन - मौलाना दाऊद, सं० विश्वनाथ प्रसाद
- २०- चंदावन- मौलाना दाऊद, सं० माताप्रसाद गुप्त
- २१- चित्ररेखा- सं० शिवसहाय पाठक
- २२- चित्राकली- सं० जगमोहन
- २३- जायसी का पद्मावत काव्य और दस्त - डा० गोविन्द श्रिणायक
- २४- जायसी की प्रेम-साधना - रामचन्द्र विलोरे
- २५- जायसी -ग्रंथाकली- सं० रामचन्द्र शुक्ल
- २६- जायसी-ग्रंथाकली - सं० माताप्रसाद गुप्त
- २७- जायसी-ग्रंथाकली- सं० जगमोहन गौतम
- २८- जायसी के परवर्ती सुफ़ी कवि और काव्य- डा० सरला शुक्ल
- २९- जायसी और उनका पद्मावत - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
- ३०- जायसी की बिम्ब योजना- सुधा सज्जेना
- ३१- जायसी-ग्रंथाकली : पद्मावत - डा० सिद्धनाथ पाण्डेय
- ३२- जायसी काव्य प्रतिभा और संरचना- हरिहर प्रसाद गुप्त
- ३३- जायसी : व्यक्तित्व एवं इतिवृत्त - राजलाल वर्मा तथा रामचन्द्र वर्मा

- ३४- जायसी : साहित्य और सिद्धान्त - यज्ञदत्त शर्मा
- ३५- तसव्युफ कावा सुफ़ी मत - चन्द्रशेखरी पाण्डेय
- ३६- तुलसीदासीन भारत - डा० बब্বास रिबुषी
- ३७- दक्षिणी हिन्दी का उद्भव और विकास- श्री राम शर्मा
- ३८- दक्षिणी हिन्दी का गण और पद्य - श्री राम शर्मा
- ३९- दक्षिणी हिन्दी का व्यथारा - राहु सांकृत्यायन
- ४०- दक्षिणी हिन्दी - बाबूराम सक्सेना
- ४१- दरिया गुंथाकली- सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
- ४२- दादू कयाल की बानी- सुधाकर द्विवेदी
- ४३- दादू कयाल गुंथाकली- सं० परशुराम चतुर्वेदी
- ४४- विगुण काव्य पर सुफ़ी प्रभाव - डा० रामपतिराय शर्मा
- ४५- नाथ-सम्प्रदाय और संत-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन- डा० नानेन्द्र उपाध्याय
- ४६- नूरुजहाँ - स्वाज्ञा अहमद
- ४७- पुरुषावती - लेखक ज्ञान कृती सं० गोपालचन्द्र सिन्हा
- ४८- पद्मावत में लोक-तत्त्व - डा० रवीन्द्र भार
- ४९- पद्मावत - सं० माताप्रसाद गुप्त
- ५०- पद्मावत : प्राक्खन - वासुदेवशरण अग्रवाल

- ६१- पद्मावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन - डा० दारिना प्रसाद
- ६२- फूल बन - इन्हें मिलाती, सं० देवीसिंह चौहान
- ६३- फ़ारसी साहित्य की इपरेखा- डा० कली बसुंगर सिक्मत
- ६४- बरार के सूफ़ी शायर - डा० नत्थुलाल गुप्त
- ६५- बुल्लो साहब का कव्वेदार-
- ६६- भक्तिवादीन आन्दोलन का सामाजिक विवेचन- डा० सुमन शर्मा
- ६७- भक्तिवादी हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव- डा० कसद कली
- ६८- भक्तिकाव्य में रहस्यवाद - डा० रामनारायण पाण्डेय
- ६९- भारत का इतिहास - डा० हरिवरी प्रसाद
- ७०- भारतीय संस्कृति और साधना- डा० गोपीनाथ
- ७१- भाषा - प्रेम-रस - शेख़ रहीम, सं० उदयशंकर शास्त्री
- ७२- मध्यकालीन धर्म-साधना- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
- ७३- मध्यकालीन निष्ठुर साधना- डा० हरचंदा लाल शर्मा
- ७४- मध्यकालीन प्रेम-साधना- परशुराम चतुर्वेदी
- ७५- मध्यकालीन संत-साहित्य - राम सितावन पाण्डेय
- ७६- मध्यकालीन प्रेम-साधना - परशुराम चतुर्वेदी
- ७७- मध्यकालीन हिन्दी प्रेम-वाक्यानों के कथानक का अध्ययन- डा० शम्भु बाली
- ७८- मध्यकालीन हिन्दी प्रेमवाक्यानों के कथानक काव्य में कथानक इदियां- सं० डा० केलाशचन्द्र शर्मा

- ७६- मध्यकालीन हिन्दी काव्य भाषा- रामरूप चतुर्वेदी
- ८०- मध्ययुगीन निगुण चेतना - डा० धर्मपाल
- ८१- मध्ययुगीन हिन्दी के सफ़ी इतर मुसलमान कवि - डा० उदयशंकर श्रीवास्तव
- ८२- मल्लदास की बानी -
- ८३- मंथन कृत मधुमालती- डा० शिवाजीपाल मिश्र
- ८४- मंथन का सौन्दर्य-दर्शन- लालता प्रसाद सक्सेना
- ८५- मधुमालती - सं० माताप्रसाद गुप्त
- ८६- माधवानलकामकंठला- प्रबन्ध - सं० राम०र०मकुसुमार
- ८७- मिरगावती - डा० परशुराम चतुर्वेदी
- ८८- मोलाना इम - जगदीशचन्द्र विद्यावाचस्पति
- ८९- रज्जव बानी- सं० इक्काल शर्मा
- ९०- रसूल इल्लाह के तीन सौ मौजड़े - अहमद सईद
- ९१- रक्तमवाद और उन्की कविता - कण्ठर सिंह
- ९२- वैदिक कहानियां - पं० बलदेव उपाध्याय
- ९३- विश्व के धर्म- प्रवर्तक - रघुनाथसिंह
- ९४- सवर्त्म दर्शन - हरबल्लाल शर्मा
- ९५- संक्षिप्त पद्मावत - डा० राजदेव सिंह तथा उषा मेन
- ९६- सफ़ी काव्य-संग्रह - परशुराम चतुर्वेदी

- ६७- सूफ़ी कवि जायसी का प्रेम निरूपण- निवायुद्दीन अंसारी
- ६८- महाकवि जायसी- डा० जयदेव कुलवैद्य
- ६९- कवि जायसी - डा० जयदेव
- १००-काव्य विमर्श- डा० श्याममनोहर पाण्डेय
- १०१-सूफ़ी कविता की पहचान - डा० यश गुलाठी
- १०२-सूफ़ी मत साधना और साहित्य - रामपूजन तिवारी
- १०३-सूफ़ी मत और हिन्दी साहित्य- डा० विमल कुमार जैन
- १०४-सूफ़ी महाकवि जायसी : वेदान्त और रहस्यवाद - डा० नारायणप्रसाद
- १०५-सूफ़ी मत और हिन्दी साहित्य - डा० विमल कुमार
- १०६- संत साहित्य का उद्भव और विकास- जयबहादुर ठाल
- १०७- संछुल मुलूक व बदीउल ज़मां - गुवासी सं० राजकिशोर पाठक
- १०८- सूफ़ी संत चरित्र -
- १०९- हिन्दी और सूफ़ी क़ारसी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन- श्रीनिवास
- ११०- हिन्दी काव्य विमर्श - डा० गुलाबराय
- १११- हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान - परशुराम चतुर्वेदी
- ११२- हिन्दी की निर्गुण काव्य-धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि- डा० गोविन्द त्रिगुणायत

- ११३- हिन्दी साहित्य - सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा
- ११४- हिन्दी काव्य में निष्ठुर सम्प्रदाय - डा० पीताम्बरदास बन्धुवाल
- ११५- हिन्दी साहित्य - सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा
- ११६- हिन्दी साहित्य- सं० डा० रामकुमार वर्मा
- ११७- हिन्दी-सूफ़ी काव्य का समग्र कण्ठीलन - शिवालय पाठक
- ११८- हिन्दी-सूफ़ी काव्य में प्रतीक योजना - सरौजिनी पाण्डेय
- ११९- हिन्दी-साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल
- १२०- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० रामकुमार वर्मा
- १२१- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सं० परशुराम चतुर्वेदी
- १२२- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सं० डा० हरचंदलाल शर्मा
- १२३- हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास- डा० खारीप्रसाद द्विवेदी
- १२४- हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा० खारीप्रसाद द्विवेदी
- १२५- हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० नगेन्द्र
- १२६- हिन्दी साहित्य का मध्यकाल - नित्यानंद शर्मा
- १२७- हिन्दी पर फ़ारसी का प्रभाव-
- १२८- हिन्दी प्रेमसाध्यात्मक काव्य - डा० कमल कुवैर
- १२९- हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य - डा० सरला शुक्ल

संस्कृत ग्रन्थ-

- १- अग्निपुराण
- २- ऋग्वेद संहिता
- ३- अभिज्ञान शाकुन्तलम्
- ४- ऋग्वेद संहिता
- ५- काव्यालंकार
- ६- काव्यालंकार
- ७- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति
- ८- काव्यादर्श
- ९- काव्य दर्पण
- १०-काव्य प्रकाश
- ११-काव्य मीमांसा
- १२-गीता रहस्य
- १३-भावकृतिता
- १४-मैषदूतम्
- १५-महाभारत
- १६-तैत्तिरीय उपनिषद्
- १७-ध्वन्यालोक
- १८-वृत्तकथा कोष
- १९-वृत्तारण्यकोपनिषद्
- २०-शिवसंहिता
- २१-हठयोग प्रदीपिका
- २२-हठयोग प्रदीपिका

- गीता प्रेस गोरखपुर
 सं० जयदेव शर्मा
 का लिदास
 सं० जयदेव शर्मा
 भामह
 रुद्रट
 वामन
 दण्डी
 विश्वनाथ
 मम्मट
 राजशेखर
 बालांगधर तिलक
 राधाकृष्णन
 का लिदास
 गीता प्रेस
 गीता प्रेस
 वानन्दवर्मा, सं० डा० गोन्द
 सं० राजकुमार शास्त्री
 गीता प्रेस
 हठयोग साधना का ग्रन्थ
 गीता प्रेस
 वायंगर
 दोमराव श्रीकृष्णादास

बरबी ग्रन्थ-

- १- अज़बार-उल-अज़बार
- २- अज़बार-उल-असफ़िया
- ३- अल-फ़तहरद्वानी
- ४- कश्फ़-उल-हक़ायक़
- ५- क़ु-र-आरिफ़ान
- ६- क़ुरआन शरीफ़
- ७- क़ुवारीक़ुसादिकीन
- ८- निरितया-र-बहिश्तिया
- ९- तौहफ़ाए-अम्बरशाही
- १०- तौफ़ा-र-सानी
- ११- तबक़ात-अल-सुफ़िया
- १२- नज़्कत-उल-तातिर
- १३- नफ़ाएकु मजासिर
- १४- मक़तबत
- १५- मनाज़िब-उल-आरिफ़ीन
- १६- मनाज़िब-र-क़ुरते-आह
- नियामतुल्लाह बली
- १७- मफ़ातिह-उल-म
- १८- मसाहिक़ु-आरिफ़ीन
- १९- मजारीक़ु-विलायत
- २०- मामूकीमा
- २१- मिन्हाकु-आरिफ़ीन
- २२- मिस्बाकु-आशिक़ीन
- २३- मीबरातु-असरार
- २४- रफ़ीक़ु-आरिफ़ीन
- २५- रिसाला-र-हदीस
- २६- रियायतुल-बालिया

अब्दुल क़ महरिस
 अब्दुल रहमान चिश्ती
 अब्दुल कादिर अल बीठानी
 अली हम्दानी
 बहमद अली
 मूक़ बरबी
 बहमद बिन साबिर
 अलाउद्दीन मुहम्मद
 अब्बासख़ान सरवानी
 अब्दुल नसर साम मिर्ज़ा
 अब्दुल इस्माइल
 अब्दुल हर् फ़िरंगमल्ली
 अलाउद्दीन सिमाना
 शेख़ अब्दुल क़दूस गंगोही
 शमसुद्दीन बहमद अफ़लाकी
 अब्दुल बबीज

अबु अब्दुल्लाह
 गुज़दवानी
 अब्दुल्लाह ख़ैशगी क़ुरी
 सं० अलाउद्दीन
 अली हम्दानी
 बहाउद्दीन मक़सूद
 अब्दुल रहमान चिश्ती
 फरीद बिन सातार
 अली हम्दानी

फारसी ग्रन्थ-

- १- अल-गुज़ाली
- २- अवारिफ़ुल-मुबारिफ़
- ३- अह्याउल-उलूम
- ४- आइना-ए-अकबरी
- ५- आइना-ए-मला रिफ़त
- ६- किताब-उल-हिन्द
- ७- मुजुनियतुल-असफ़िया
- ८- बुख़रो-गीरी
- ९- तजुल्लियतुल-अलिया
- १०-दीवान-ए-हाफ़िज़
- ११-फ़वायदुल-फ़वायद
- १२-मन्तवाते-बुसिया
- १३-मसबुतुल-अरार
- १४-यसुफ़-कुतबा
- १५-रात तुल-कुतब
- १६-उताएफ़े-कुदसी
- १७-उला-अो-मनू
- १८-शेरुल-अक़म
- १९-सना-ए-द अक़म
- २०-सियरुल-आरिफ़ीन
- २१-सियरुल अलिया
- २२-सीरतुल - नबी
- २३-सीरुल मजा लिस
- २४-इश्त - बहिश्त
- २५-असनातुल-आरिफ़ीन

- अल्लामा शिबली
शेख़ सहाबुद्दीन सुहरवदी
इमाम गुज़ाली
अब्दुल फ़ज़ल
सैयद रज़ाब हुसैन
अल-बेल्दी
मुफ़्ती ग़ुलाम सरवर
निजामी
शेख़ फ़रीदुद्दीन अज़ार
हाफ़िज़
निजामुद्दीन अलिया
शेख़ अब्दुल क़द
निजामी
अब्दुल रहमान बामी
निजामुद्दीन अलिया
शेख़ रुक्नउद्दीन
अमीर बुख़रो
अल्लामा शिबली
मेहदी हुसैन नासरी
कमाली
अमीर बुख़रो
अल्लामा शिबली
हमीद क़ुन्दर
अमीर बुख़रो
दाराशिकोह

उर्दू ग्रन्थ

- १-कल्लिरी - लिखायत - मौलवी फ़ारुद्दीन
- २-कलीदा-ए-इस्लामी - शेख़ मुहम्मद गुजाली
- ३-कल कौल्लु-जमील - शाह कली उल्लाह
- ४-कलतकरक़ु यांनी कलसक़ुफ़ - कसरफ़ कली
- ५-कवारिफ़ुल -मवारिफ़ - हलाबुद्दीन सुलखवी
- ६-कावे-ख्यात - मुहम्मद हुसैन आज़ाद
- ७-काइना-ए-कलाग़त - मुहम्मद
- ८-काइना-ए-मला रिफ़त - सेयद रजाज़ हुसैन
- ९-कावे-कासर - शेख़ मुहम्मद इकाराम
- १०-हरशावे - महबूब - मुस्लिम अहमद निज़ामी
- ११-इक़्बाल और तसक़ुफ़ - मोहम्मद फ़रमान
- १२-इस्लाम एक नज़र में- मौलवी सदरुद्दीन इस्लामी
- १३-इन्सान की दुनिया पर मुसलमानों के उक्बो-ज़वाल का कसर - सेयद अब्दुल हसन नदवी
- १४-उर्दू की इतिहास नख़्बो-नुमा में बुकिदार-कराम का काम- मौलवी अब्दुल क़दिर
- १५-उर्दू मसवी का इतिहास - ग़ुलाम सरवर ज़ादरी
- १६-उर्दू महनवियां - डा० गोपी चन्द नारंग

- १७- कसबुल -महबूब - सेल कली कुचेरी
- १८- जिताबुल -इमान- राशिद हुंन उस्मानी
- १९- कुरआन पाक क्या है? अब्दुल वहीद
- २०- कुरआनी किसे - अबु सलीम मुहम्मद
- २१- कुरआन और तसव्वुफ- मीर कलीउद्दीन
- २२- कौमी तहज़ीब का फसला- सेयद आबिद हुंन
- २३- गुलिस्तान - सेल सादी
- २४- गुलशने -राज - महबूब उबिस्तरी
- २५- तसव्वुफ और उर्द सायरी - सेयद सफ़ी हेंदर
- २६- तसव्वुफ-इस्लाम - अब्दुल माजिद दरियावादी
- २७- तसव्वुफ और सुन्नत- मीर कली उर्दीन
- २८- तसननीफ़-ए-इल्मपिया - सर सेयद अहमद ख़ान
- २९- तसव्वुफ की क़ीमत और उसका फ़लसफ़ा-ए-तारीक - कली
- ३०- तमबदुने हिन्द पर इस्लामी असरात - डा० ताराचन्द
- ३१- तजक़िरा-ए-इस्लामी - ख़्वाजा ख़ान
- ३२- तारीक़े-फ़ीरोज़ शाही- बरनी
- ३३- तारीक़े- दाक्ती- अज़मत - सं० अब्दुल ख़ान नदवी

- ३४- तारीखें -तसव्वुफे -इस्लाम - रइसे अहमद बाफूरी
- ३५- तारीखें-इस्लाम - बरीर अली
- ३६- तारीख मशायख विशत- खलीफ अहमद निजामी
- ३७- तारीख -इस्लाम - मुहीउद्दीन
- ३८- दारासात-दीनियां - फांकल्टी जाफ़ थियालोंवी
- ३९- दक्कन में उद्द- नसीरुद्दीन हासमी
- ४०- दाराशिकोह - काज़ी अब्दुल सतार
- ४१- नफ़ाख़ल-अंजिया - मुहम्मद तकी
- ४२- नुसरती - मालवी अब्दुल हक़
- ४३- निज़ामे-तलीमो- तरनियत - मनाज़िर अहमद
- ४४- फ़हरिस्ते मक़तूता-ए-शीरानी - बरीर हुसैन
- ४५- फूल बन - इब्न निशाती, सं० अब्दुल कादिर
- ४६- मसनवी गुलशने-इश्क - संवद मुहम्मद
- ४७- मुक़दमा-ए-शेरो-शायरी- अल्ताफ़ हुसैन हली
- ४८- मुक़ालाते- शिबली- अल्लामा शिबली
- ४९- महा मिक़ल-कुफ़ा - सं० हाफ़िज़ इस्लाम अहमद
- ५०- मुस्लिम मुमालिक में इस्लामियत और मगरनियत- अब्दुल हसन अली नदवी
- ५१-मुन्तख़बुलवारीत - अब्दुल कादिर बदायूनी

- ५२- मांजे-खाल - मुहम्मद मसऊद अहमद
- ५३-बजने-सुकिचा - बहाउद्दीन
- ५४-बांस्तां - शेख सादी
- ५५-सलातुनि- देहली के मवल्ली रुबहानात - क़लीक अहमद निवामी
- ५६-हिन्दी जवान और मुसलमानों का तक्क़ मिठान- मूरुल हसन
- ५७-हिन्दी के मुसलमान शोकरा - सैयद ख़िर हसन
- ५८-हिन्दुस्तानी मवाहरा अल्पे-वस्ता में- क़ुमर मुहम्मद
- ५९-हीर - सैयद परिस शाह

1. A Classical Dictionary of Hindu Mythology, J.A.Dowson
2. An Introduction to the History of Sufism, A.J.Arbery
3. An Introduction to Sufi Doctrine, T.Burckhardt
4. Al Chevalis Book of Fear and Hope, W. McKane
5. Al Chevalis the Mystic, Margret Smith
6. Allumafil Tasawwuf, R.A.Nicholson
7. A History of Indian Philosophy , Das Gupta
8. A History of Sufism in India, S.A.A.Rizvi
9. Annals of the Early Caliphate, R.A. Nicholson
10. A Short History of Muslim Rule in India, Dr. Ishwari Prasad
11. A Short History of the Revivalist Movement in Islam- A.A. Mandoodi
12. Aspects of Islam, D.B. Macdonald
13. A Sufi Martyr, A.J. Arbery
14. Aurangzeb , S.A. Jafar
15. Bhakti Renaissance, A.K. Majumdar
16. Bible Biblical Studies from a Muslim Perspective, S.Mufasir
17. Conception of Divinity in Islam and Unashad, Wahid Husein
18. Classical Persian Literature, A.J. Arbery
19. Creative Imagination in Sufism, H. Corbin
20. Dictionary of Islam, T.P. Hughes

21. Discourses of Rumi, A.J.Arbery
22. Encyclopedia of Islam, Zah-eruddin Ahmad
23. Evidence of Truth, A.A. Mandoodi
24. Finality of Prophethood, A.A.Mandoodi
25. Fundamentals of Islam, A.A.Mandoodi
26. Hindu Mysticism, S.N.Das Gupta
27. Hindu and Muslim Mysticism, R.C.Zachner
28. Hindu World, W. Walker
29. History of the Arabs, P.K.Hitti
30. Ideas and Realities of Islam, S.H. Nasr
31. Indian Culture, Zaheeruddin Ahmad
32. Indian Islam, Rites
33. Influence of Islam on Indian Culture, Tara Chand
34. Islam, B. Lewis
35. Islam at a Glance, S. Ilahi
36. Islam - Belief and Teachings, Ghulam Sarwar
37. Islamic Civilization, D.H. Richards
38. Islam in Focus, Iqbal Ali
39. Islam and Ignorance, A.A. Mandoodi
40. Islam in India, Zafer Sharif

41. Jesus in the Quran, S.Mufasssir
42. Literary History of Persia, M.W.Breirmann
43. Medieval India, Abdullah Yusuf Ali
44. Medieval Islam, G.E. Grunebaum
45. Medieval Mysticism of India, K.M. Sen
46. Mohammad the Prophet of Islam, K.S.R.Rao
47. Mohammad the Last Prophet, Hammudah Abdalati
48. Muslim Saints and Mystics, A.J. Arbery
49. Muslim Theology, Macdonald
50. Mysticism , E. Underhill
51. Mysticism in East and west , Ot o Rudolph
52. Mystics of Islam, R.A. Nicholson
53. Mysticism in Religion , Dean Inge
54. Outlines of Islamic Culture, A.M.A. Shastri
55. Padmavati, A.G.Sherief
56. Padumavati, Lakshmi Char
57. Political Theory of Islam, A.A.Mandoodi
58. Poets and Mystics, E.I. Walkin
59. Practical Mysticism, Underhill
60. Process of Islamic Revolution, A.A.Mandoodi

61. Punjabi Sufi Poet, L.R. Krishna
62. Rabi' the Mystic and her Fellow Saints in Islam, Margret Smit
63. ~~Relig~~ Religion and Philosophy of Vedas and Upanishads-
A.B. Keith
64. Sanskrit Romances, A.B. Keith
65. Science and Civilization in Islam, S.H. Nasr
66. Studies in Islamic Mysticism, R.A. Nicholson
67. Studies in Muslim Ethics, D.M. Donaldson
68. Studies in Islamic Culture in the Indian Environment,
Aziz Ahmad
69. Sufism, An Account of the Mystics of Islam, A.J. Arbery
70. Sufism, its Saints and Shrines
71. Tales of the Masnavi, A.J. Arbery
72. The Darveshes, Vaughn Rose
73. The Bible , The Quran and Science, Maurice Bucaille
74. The Economic Problem of Man and Its Islamic Solution-
A.A. Mandoodi
75. The Ethical View Point of Islam, A.A. Mandoodi
76. The Four Pillars of Islam, S.A. Nadvi
77. The Holy Quran, translated by A.A. Mandoodi
78. The Holy Quran, translated by A.J. Arbery
79. The Holy Quran, translated by M. Pickthall
80. The Holy Quran, translated by Yusuf Ali

81. The Knowledge of God and service of the God, Aviwan
82. The History of India, Alphinaton
83. The Influence of Islam, E.J.Bolus
84. The Islamic concept of Prophethood, S.A.Nadvi
85. The Life of Mohammed, A.H.Siddiqui
86. The Life and Works Amir Khusro, A.Wahid
87. The Life and Times of Shiekh Farid Shakarganj- K.A.Nizami
88. The Meccan Crucible , Zakaria Bashir
89. The Moghal Empire from Babar to Aurangzeb , S.A. Jafar
90. The Mission of Mohammed, S.Guth
91. The Mystics of Islam, R.A. Nicholson
92. The Preaching of Islam, T.W.Arnold
93. The Position of women in Islam, K.Ahmad
94. The Philosophy of Ibn-Arabi, L. Landon
95. The Quran and Wisdom, H. Abdaleti
96. The Religious Attitude and Life in Islam, D.B. Macdonald
97. The Religious Quest of Indian Islam, Murray and Titus
98. The Spirit of Islam, Ameer Ali
99. The Spiritual Background of Early Islam, M. Bravmann
100. The Social structure of Islam, R.Levy